UNIVERSAL LIBRARY

OU_182373

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 C43K   Accession No. PG H127

Author चगताई, मिर्जा अजीमबेग.

Title कोलतार. 1947.

This book should be returned on or before the date last marked below.

Hindi Seminar Library
OSMANIA UNIVERSITY
No. 926
Post Graduate Library
College of Arts & Commerce, O. U.

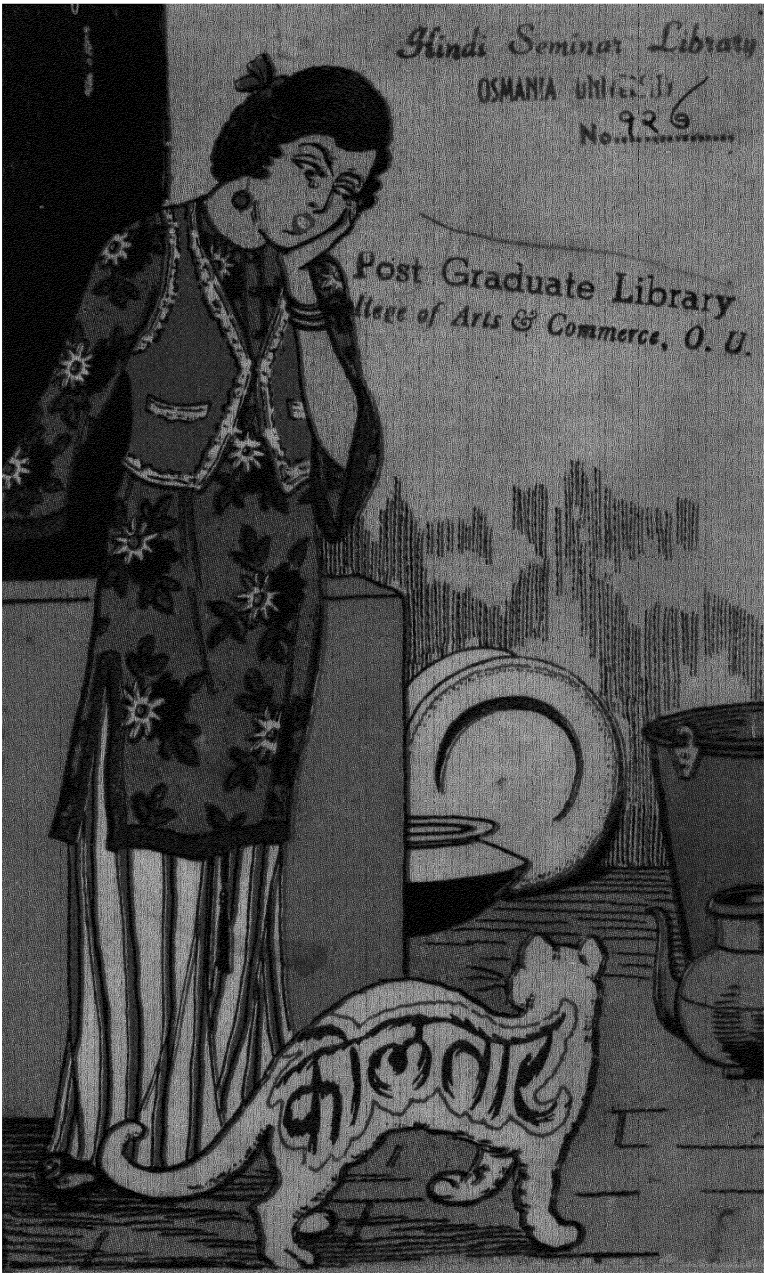

साहित्य-सरोजमाला संख्या—७

कोलतार

(हास्य-व्यंग-मिश्रित उच्च कोटि का रोचक उपन्यास)

Post Graduate Library
College of Arts & Commerce, O.

लेखक

स्वर्गीय मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताई

Hindi Seminar Library
OSMANIA UNIVERSITY
No. १२७

रूपान्तरकार

डाक्टर बृजबिहारीलाल बी० एस्-सी०, एम० बी०, बी० एस्०

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग

तृतीय संस्करण] जुलाई १९४७ [मूल्य २॥)

प्रकाशक

श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग

जयपुर के सोल एजेन्ट

प्रभात प्रकाशन, जयपुर

जोधपुर के सोल एजेन्ट

भारतीय पुस्तक भवन, जोधपुर

मुद्रक

सरयू प्रसाद पांडेय 'विशारद'

नागरी प्रेस, दारागञ्ज,

प्रयाग।

अवलोकन

हास्य स्थिति विशेष से उत्पन्न तात्कालिक आनन्द की अभिव्यक्ति है। जिस समय किसी विचित्र बात को सुनकर अथवा किसी की असाधारण भावभंगिमा देखकर हम हँस पड़ते हैं, उस समय मानों बिना कुछ कहे हम यह प्रकट करते हैं कि इन घड़ियों में हम अत्याधिक प्रसन्न हैं, हमको किसी से कोई शिकायत नहीं है, हमारे लिए संसार के समस्त अभाव मानों कुछ रह नहीं गये। साहित्य में जिस साधन के द्वारा इस प्रकार के आनन्द की सृष्टि की जाती है, उसका नाम हमारे आचार्यों ने हास्यरस रक्खा है।

विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है:—

उच्च हासे सकौतुके चिर प्राचीन गिरिर बुके
झरे पड़े चिरनूतन झरना।
नृत्य करे ताले-ताले प्राचीन बटेर डाले-डाले
नवीन पाता घन श्यामल वर्णा।
पुरानो सेइ शिवेर प्रेमे नूतन हये एलो नेमे
दक्ष सुता घरि उमार अंग।
एमनि करे सारा बेला चलचे लुको-चुरि खेला
नूतन पुरातनेर चिर संग।

अर्थात् "चिर प्राचीन पर्वत की देह से कौतुक-पूर्ण हँसी-हँसता हुआ चिरनवीन निर्झर झर पड़ता है; वृद्ध बरगद की डाल-डाल पर नवीन श्यामल पल्लव ताल दे-देकर नृत्य करते हैं। उन बृद्ध शंकर के प्रेम में जैसे नवीन होकर दक्ष-कुमारी उमा बनकर उतर आती हैं। इस प्रकार नवीन और पुरातन के साथ नित्य ही लुका-छिपा कर कौतुक-सा चला करता है।"

हास्य की सृष्टि कैसे होती है, इसका संकेत कवि ठाकुर के उपर्युक्त

छन्द में स्पष्ट हो गया है। पुरातन संस्कार जब नवीन से मिलना चाहेगा, तब दोनों के मिलन से जिस रस विशेष की सृष्टि होगी, वह होगा हास्य।

प्रायः हम देखते हैं कि नवजात गोल-मटोल शिशु, झूलन के खटोले पर पड़ा हुआ, किलकारी देकर हँस रहा है। हाथ पैर उसके अस्थिर हैं, मुख पर जैसे फूलों के दल आ पड़े हैं। और आनन्द के उभार से आँखें कभी-कभी सिकुड़ती और कभी फैल जाती हैं। कभी-कभी तो वे ताली भी बजा उठते हैं। बात यह होती है कि संसार की नाना भाँति की चिरस्थिर (पुरातन) वस्तुओं को देख-देखकर उसे एक प्रकार के वैचित्र्य का अनुभव होता है और तब वह उस आनन्द को प्रकट किये बिना रह नहीं पाता।

उर्दू भाषा के विख्यात कलाकार मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताई की कृतियों में भी हमें पुरातन संस्कारों के प्रति नवीन संस्कारों की लुका-छिपी, छेड़छाड़ और उछलकूद मिलती है; अत्यन्त सजीव और भावमयी। कोलतार एक बहुत ही कला-पूर्ण रचना है। अनुवाद-रूप में यह अपने मुख्यांश में 'विशाल भारत' में प्रकाशित हो चुकी है। मेरी धारणा है कि इस प्रकार की अतिशय मनोरंजक और सजीव हास्यपूर्ण कला-कृति हिन्दी में नहीं है। एक ओर जहाँ इसमें पुरातन संस्कृति में पली मुसलिम नारी का भोला हृदय बोलता है, वहाँ दूसरी ओर उसमें बदला लेने की भीम भावना का भयानक विस्फोट भी है। एक ओर उनके प्रेमी में जहाँ छेड़-छाड़-भरी निर्बन्ध चंचलता, अदम्य संयमहीनता और अशिष्टता है, वहाँ दूसरी ओर उनके हृदय में प्रेम का सागर-सा लहराता है! एक बार इस कथा को पढ़ जाने के बाद कोई भी पाठक उसके इस finishing tauch को भूल नहीं सकता—

इसके पूर्व कि मैं इस विशाल परिवर्तन पर गौर करूँ, फिर उस अत्यन्त प्रिय व्यक्ति ने कहा—अजी कोलतार साहब ..... मिज़ाज

शरीफ !·····वह बर्रों का छत्ता·····मेरे सारे मुँह पर लिपट गई थीं·····श्रीमान् कोलतार साहब·····अजी किराया ले जाइये !"

—पृष्ठ ५५

इस कलाकृति में एक विशेषता है। कई पात्र इसमें ऐसे हैं, जिनके पारस्परिक सम्बन्ध ऐसे मिल गये हैं जैसे वे एक ही परिवार के हों। यद्यपि उनकी कथाएँ अलग-अलग हैं, परन्तु वे हैं जैसे एक ही शृँखला से आबद्ध। और इस प्रकार यह एक कहानी-संग्रह भी है और उपन्यास भी। विश्व-वन्द्य कलाकार शरच्चन्द्र के 'श्रीकान्त' का-सा टेकनीक इसमें यत्र-तत्र झलकता है, यद्यपि वातावरण इसका उससे सर्वथा भिन्न है। इस कृति का मुख्य रस हास्य है और उसका रौद्र, शृंगार और करुणा। तुलना करना चाहें, तो कहीं-कहीं अन्नदा दीदी की झलक हम इसकी खातून में पाते हैं, यद्यपि अन्नदा का-सा चित्रांकण विश्व-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। खातून भी एक पति-परायण सती-साध्वी मुसलिम नारी का एक तपःपूत सफल चरित्रांकण है। बोध होता है, जैसे सेवा ही उसकी गति है, साधना ही उसका प्रेम। मैं तो ऐसी सुन्दर कृति को पढ़कर स्तम्भित हो उठा। पढ़ते-पढ़ते मैं अपने आँसुओं का संवरण कर ही नहीं सका !

चग़ताई साहब यद्यपि हास्य-रस के लेखक हैं, तथापि उन्हें करुण रस पर भी कम अधिकार प्राप्त नहीं है। खातून एक ऐसी ही सृष्टि है। जान पड़ता है, इस मुस्लिम रमणी में हिन्दू संस्कृति की पूर्ण छाप है। पर चग़ताई साहब की सबसे बड़ी विशेषता है, ऐसी अभिनव तथा अतिशय मनोरंजक उपमायें जो वस्तुस्थिति का एक सजीव चित्र खड़ा कर देती हैं। इस क्षेत्र में उर्दू की दुनिया में भी शायद ही कोई उनकी समानता कर सके। देखिये—

"मैंने जो मुड़कर देखा, तो उनके कन्धे के बाईं ओर सास जी का सर था और उन्हीं बड़ी बीबी की हिलती हुई ठोढ़ी थी, जो इस समय

सिंगर मशीन के शटल की तरह नाक के फुनङ्ग की ओर बराबर हिल रही थी !"

पृष्ठ ६०

"ईमान की बात है कि यदि किसी को मौत से बचने की खुशी हो सकती है, तो मुझको भी अपने विवाह की खुशी थी !"

पृष्ठ ५१

"यहाँ लड़कियों का यह हाल कि जैबुन चच्ची के जल्दी-जल्दी खाने पर, रिमार्क कस के, आपस में हँस रही थीं। एक ने कहा कि "बुढ़िया का कल्ला बोलने से अधिक खाने में चलता है।"

दूसरी बोली—बुढ़िया घर से चूरन खाके आई है !

तीसरी बोली—ओ बहन, देखो, दालमोट के फांके-के-फांके लगा रही है।

चौथी बोली—जैबुन चच्ची को देखो कि किस सफाई से खाने की जगह समूचा केक पी रही हैं !

पृष्ठ ७३

चित्रांकण में सजीवता चग़ताई साहब का एक विशिष्ट गुण है। ऐसा प्रतीत होने लगता है, मानों ये घटनाएँ लेखक के सामने घटित हुई हैं, उसने अपनी आँखों से देखी और अन्तरात्मा से अनुभव की है।

देखिये--

आगे-आगे चची और पीछे-पीछे शाहिदा, पञ्जों के बल नाचती-कूदती, थिरकती, चची की नकल करती चलीं।

पृष्ठ ७२

बात काट कर बड़ी बीबी, पान खाते हुए, नाक की फुनगी छूकर और सर मटकाकर बोलीं—बाप सुन लेगा तो निकाल देगा, लिख रक्खो बहन।

पृष्ठ ५८

"मैंने उन्हें ध्यान से देखा। गुलाबी साटन की शलवार और उसी रंग का सुन्दर गला खुला जम्पर पहने थीं। शकल-सूरत खूब चमकीली,

अच्छी गोरी चिट्टी चमकदार आँखें, हँसी में सर से पैर तक मानों बसी हुई थीं। आँखों से चपलता प्रकट होती थी और स्वास्थ्य ने चेहरे पर वह निखार पैदा किया था कि पान जो खाये हुए थीं, तो मालूम होता था चेहरा मानों दहक रहा है।

पृष्ट ६६

अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। पाठक स्वय पढ़कर निर्णय कर लेंगे।

खेद की बात है कि हिन्दी में अभी इस प्रकार के सजीव हास्य का अभाव-सा है। श्री जी० पी० श्रीवास्तव के बाद श्रीअवधपूर्णानन्द वर्मा तथा श्रीकृष्णदेव प्रसाद गौड़ जी ने इस दिशा में जो कुछ कार्य किया है, वह अभी पर्य्याप्त नहीं है। कला को प्राणमय करने में अभी वे पूर्ण कृतकार्य नहीं हुए। इधर 'तसलीम' लखनवी ने 'नवाबी मसनद' नामक एक सुन्दर कृति दी है। परन्तु इस दिशा में अभी हिन्दी में जो कुछ भी लिखा गया है, वह नहीं के बराबर है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

विषय-सूची

		पृष्ठ	से	पृष्ठ
१	टिकट चेकर	६	,,	२७
२	कोलतार	२७	,,	५५
३	परिवर्त्तन	५५	,,	६७
४	मीलाद शरीफ	६७	,,	७७
५	जिमवाली	७७	,,	१०३
६	हँड़िया में नमक फीका	१०३	,,	११२
७	गुलाब जामुन	११३	,,	१२६
८	नजमी	१२६	,,	१३६
९	आलू का भुरता	१३६	,,	१६१
१०	फीरोजा	१६१	,,	१६८
११	अल्टीमेटम	१६८	,,	१७६
१२	गुड़ के लड्डू	१७७	,,	१९५
१३	घृणा के परिणाम	१९६	,,	२२०
१४	शाहिदा का व्याह	२२०	,,	२२७
१५	?	२२७	,,	२४८

कोलतार

टिकट चेकर

एक मरतबे का जिक्र है कि कालिज में चार दिन की छुट्टी हुई। और लोग तो पहले ही दिन देहली सैर करने चल दिये, परन्तु भाग्यवश हमें मनीआर्डर वसूल करने के कारण एक दिन की देर कर देनी पड़ी। हमने अपने साथियों को विदा करते समय कहा कि चलो भाई, हम भी कल तक पहुँच जायँगे। बिना हमारे, मित्रों को दुःख तो अवश्य हुआ परन्तु लाचारी थी।

दूसरे दिन स्टेशन पर पहुँचे तो एक मित्र मिले। यह महाशय सदा से बेटिकट सफर करने के आदी थे। रोहतक के रहने वाले थे और पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर एक जरूरी काम से (शायद अपनी बहन की शादी में) घर जा रहे थे। यदि यह हमारे साथ बेटिकट सफर करें तो हमारा क्या नुकसान था। हमसे उन्होंने वादा ले लिया कि हम उन्हें अपना टिकट गाजियाबाद के स्टेशन पर दे देंगे ताकि बाहर जाकर वहाँ से रोहतक का टिकट ले लें।

गाजियाबाद के स्टेशन पर हमने अपना टिकट अपने मित्र को दे दिया और वह उसको लेकर बाहर टिकट खरीदने चले गये। हम अपनी जगह बैठे हुए सिगरेट के धुएँ के छल्ले बना

रहे थे कि एक साहब बहादुर ने हमारी नाक की ओर टिकट चेक करने की कैंची बढ़ाई। वह हमारे प्लेटफार्म पर थे और हम अन्दर। मेरे लिए उनकी सूरत ही एक सवाल थी। यह कहने की जरूरत ही न थी कि टिकट चाहिये! हमने जानबूझ कर कोई ध्यान न दिया; क्योंकि हमारा टिकट तो हमारे मित्र के पास था। वास्तव में यह साहब थे अंग्रेज, लेकिन रुपये में केवल दो ढाई आना भर।

हमने तो टिकट दिया नहीं, परन्तु दूसरे लोग उनकी खिदमत में टिकट पेश करने लगे। जब सबके टिकट वे देख चुके तो हमारी तरफ झुके। परन्तु जब उन्होंने देखा कि हम उनकी तरफ देखते भी नहीं, तो कुछ बुरा मानकर उन्होंने कहा—"टिकट।"

एक साधारण वैयाकरणी या साहित्यिक भी सहज ही जान सकता है कि व्याकरण और साहित्य की रू से संसार में किसी वस्तु विशेष का केवल नाम ले लेने से सम्पूर्ण वाक्य नहीं बन सकता और फिर हम ठहरे विद्यार्थी। इससे यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि इनको व्याकरण की कुछ शिक्षा दें। हमने इनको ऊपर से नीचे तक बड़े ध्यान से देखा और यह सोचकर कि यह महाशय अपूर्ण वाक्य बोलते हैं, हमने जरा जोर से उनसे कहा—"सोडावाटर।" वह कुछ बिगड़ कर बोले—"रेलवे कर्मचारियों से मजाक करते हो।" हमने कुछ तीखेपन से कहा—"मुसाफिरों को तकलीफ देते हो।" वह कुछ जोर देकर बोले—"हमारी ड्यूटी है·····हमारी यह ड्यूटी है कि हम टिकट चेक करें।" हमने कुछ नाराज होकर जवाब दिया—"हमारी भी यह ड्यूटी है कि हम उन्हें अपना टिकट दिखाएँ।" वह बोले—"तो फिर आखिर टिकट क्यों नहीं दिखाते?" मैंने

कहा—"हमने बिलकुल ठीक उत्तर दिया, परन्तु आपने हमसे अब तक टिकट नहीं माँगा।"

"मैंने माँगा।"

"आप झूठ बोल रहे हैं। आपने कदापि हमसे टिकट नहीं माँगा। आपने तो केवल "टिकट" कहा और इस अपूर्ण वाक्य से हम नहीं समझे कि आप क्या कहते हैं। क्योंकि व्याकरण की रू से यह अपूर्ण वाक्य है। आपको कहना था कि टिकट दिखाओ, ताकि हम चेक करें।

इस पर कुछ मुस्कराकर वह बोले कि एक साधारण बुद्धि का आदमी भी समझ सकता है कि टिकट शब्द कहने का अर्थ ही यह है, टिकट दिखाओ। हमने कहा—क्या रेलवे में कोई ऐसा नियम भी है जिसकी रू से ऐसे लोग सफर नहीं कर सकते जिनके पास साधारण बुद्धि भी न हो।"

तब बहुत खुश होकर और इस मजाक को पसन्द करके हँसते हुए बोले—"अच्छा, मैं बुद्धि नहीं चेक करता। टिकट दिखलाइये।"

दूसरे मुसाफिर भी हँसने लगे।

"टिकट हम थोड़ी देर बाद दिखायेंगे।"

"क्यों?"

वास्तव में बात यह है कि हमारे एक मित्र बेटिकट सफर कर रहे हैं और हमारा टिकट लेकर वह अपना टिकट खरीदने गये हैं, अभी आते होंगे। थोड़ी देर बाद आइयेगा। इस पर और मुसाफिर हँसने लगे और टिकट चेकर साहब ने कहा—"मैं मजाक नहीं करता।"

हमने कहा—"मेरा भी यही हाल है।"

लोगों ने कहकहा लगाया।

"मैं तुम्हें पुलीस में दे सकता हूँ।"

हम यह सुनकर बिगड़ खड़े हुए और केवल झगड़ा मोल लेने की नियत से गाड़ी में से उतर कर उनके सामने आ खड़े हुए। हमने कहा—"हम तुम्हारी रिपोर्ट कर देंगे।"

आश्चर्य नहीं कि बात बढ़ जाती कि इतने में हमारे मित्र टिकट लेकर आ गये और हमने उनसे अपना टिकट लेकर दिखाते हुए कहा—"देखिये, हम मजाक नहीं करते। यह अभी टिकट लेकर आ रहे हैं।"

पाठकों को शायद आश्चर्य होगा कि हमने अपने मित्र को इस तरह क्यों पकड़वा दिया। बात वास्तव में यह है कि हमारे इस कार्य से हमारी मित्रता में कोई अन्तर ही नहीं पड़ता। उनको हमसे पहले ही से ऐसी आशा थी और इन्साफ की बात तो यह है कि अगर कहीं पर कोई मनोरञ्जन पैदा हो सकने की आशा हो तो ऐसा अवश्य करना चाहिये। यह कोई बुरा मानने की बात नहीं।

हमारा टिकट चेक करने के बाद वह हमारे मित्र की ओर झुके और उन्होंने उनसे पूछा—"आप कहाँ जा रहे हैं?"

बड़ी ही गंभीरता से उन्होंने सच-सच कह दिया—"घर।"

"घर"

"घर"

"अर्थात ....."

बात काटकर "अर्थात् घर।"

जोर से कहकहा लगा। टिकट चेकर साहब बिगड़ खड़े हुए और बोले—"आखिर कौन सा स्टेशन है। घर तो सभी जा रहे हैं। आप स्टेशन बताइये।"

वह तनकर बोले—"मैं नहीं बताता। आप टिकट देख सकते हैं।" यह कहकर उन्होंने टिकट बढ़ाया। चेकर साहब ने टिकट देखा, जिस पर दरवाजे की चेकिङ्ग का निशान था।

टिकट गाजियाबाद से रोहतक का था। उन्होंने उलट पलटकर कहा—"आप कहाँ से आ रहे हैं ?"

"जहन्नुम से" उन्होंने जलकर कहा—"मुझे····· बेकार समय नष्ट न कीजिए।"

टिकट चेकर साहब बोले—"आप अलीगढ़ से आ रहे हैं और मैं आप से चार्ज करूँगा।"

"मैं कह चुका कि मैं·····"यह कह कर उन्होंने टिकट चेकर के हाथ से टिकट उचाक लिया और कूदकर वे डब्बा में आये। वह भी लपके। मगर यह हजरत लोटा लेकर पाखाने जा पहुँचे। रेल चल दी।

अब इसी बीच में एक महाशय से हमने अपना टिकट बदल लिया। वह टिकट कानपुर से देहली का था।

टिकट चेकर साहब यह कह कर बैठ गये कि देहली पर इनको मजा चखाऊँगा। पाखाने से हमारे मित्र जो निकले तो फिर वही बातें। टिकट दिखाने से इधर से इन्कार और उधर से इसरार।

फैसला इस बात पर हुआ कि देहली के स्टेशन पर देख लेंगे।

अब हमने बड़ी सफाई, से जिसमें टिकट चेकर देख न ले, अपने मित्र का टिकट लेकर अपना दूसरा टिकट उनको चुपके से दे दिया।

हमने रोहतक का टिकट लेकर, अब एक दूसरे महाशय से जो हमसे बहुत ज्यादा अक्लमन्द थे, उनका टिकट ले लिया जो टूण्डले से देहली तक का था। अब इतमीनान से दोनों देहली के मुन्तजिर थे।

देहली के स्टेशन पर इससे पहले कि टिकट चेकर साहब हमसे कुछ कहें, उल्टा हमने उनका हाथ पकड़ा कि आपको

स्टेशन मास्टर के पास चलना होगा। स्टेशन मास्टर तो मिला नहीं। डिप्टी स्टेशन मास्टर की तरह कोई अँगरेज मिला। हम दोनों पहुँचते ही जैसे बरस पड़े। हमने उनसे कहा कि ये टिकट चेकर साहब शायद शराब के नशे में हैं। इन्होंने हमें तङ्ग कर मारा है। टिकट चेकर साहब को बयान देने का मौका दिया गया और उन्होंने ठीक-ठीक हाल उस घटना का बयान किया। हमने बनकर कहा—"अरे! यह आप क्या कह रहे हैं?" सारी घटना से बिलकुल अनजान बनकर हमने कहा—"यह बिलकुल गलत कहते हैं। हम दोनों आपस में मित्र कैसे, हम तो एक दूसरे को जानते भी नहीं। और फिर इसके सिवाय चेकर साहब तो हमको यहाँ इस बात पर लाये कि हम उनसे लड़ते हैं और अब यह किस्सा।" और फिर उनका ध्यान आकर्षित करते हुए कहा।

"क्या आप अब भी नशे में हैं?"

हम दोनों ने अपने-अपने टिकट दिखाये। बहुत देर तक वाद-विवाद हुआ। टिकट चेकर साहब जब उस डब्बे में गवाह ढूँढ़ने गये तो एक भी न मिला। सारांश यह कि हम दोनों को वहाँ से छुटकारा मिला, क्योंकि हमारे सौभाग्य से यह टिकट चेकर महाशय कभी शराब पीकर मुसाफिरों से उलझ चुके थे। डिप्टी स्टेशन मास्टर ने भवें सिकोड़ कर उनसे कहा—"इस किस्म के किस्से मैं नहीं पसन्द करता।" और हम दोनों से कहा—"आप लोग जाइए।"

इस प्रकार इन टिकट चेकर साहब से हमारी पहली मुलाकात थी।

[२]

हमारे पास हमारे पूज्य पिता जी का पत्र इम्तहान के बाद ही आया था कि तुम 'वहाँ' होते हुए घर पर आना। हम स्वयं

घर पर थे और पिता जी नौकरी पर। परन्तु वास्तव में घर वह था जहाँ हम पढ़ रहे थे। इम्तहान के पर्चे तमाम चौपट हो गये और नतीजा छपने वाला ही था, अगर हम 'वहाँ' पहुँचते तो आशा थी कि साथ ही साथ 'वहाँ' हमारे फेल होने का समाचार भी पहुँचता। इस कारण 'वहाँ' का जाना इस शर्त पर तै रहा; 'यदि इम्तहान में पास हो गये।'

पास होने की खुशी का अन्दाजा लगाना है जरा मुश्किल। विशेषतः उस समय जब कि तमाम आशाएँ जाती रही हों और फिर थर्ड डिवीजन मार दिया जाय। हमारे एक मित्र का यह हाल हुआ कि बयान से बाहर। और वास्तव में अपने लिए तो हम कह सकते हैं कि खुशी के मारे मरते-मरते बचे। दो तीन सेकण्ड तक तो यह गुमान रहा कि मर रहे हैं। यही गनीमत है कि मारे खुशी के उस दिन कोई हत्या हमने नहीं कर डाली। तार देने के लिए डाकखाना गये तो बाबू को मारते-मारते छोड़ा। फिर उस रुपये को जिसका पाई-पाई का हिसाब हमें देना था, बड़े ही बेदर्दी से खर्च करने बाजार दौड़े मगर अब भला किसी की क्या मजाल थी कि इस रुपये में से कौड़ी भी ले ले। क्योंकि पास होने के घपले में उसका खर्च कर डालना सहल था। खूब जानते थे कि पास होने पर दो चार दिन तक क्या, बल्कि महीनों खर्फागियाँ पास नहीं आतीं। इस तरह रुपये जेब में और हम 'वहाँ' होते हुए घर जा रहे थे। लेकिन दो चार मूजी और थे। उन्होंने कहा कि अब 'वहाँ' होते हुए घर जाने के बजाय बेहतर है कि पहले लखनऊ और फिर 'वहाँ' और फिर पिता जी के पास जाओ। हम राजी हो गये। कई एक टाइयाँ और नई टोपी के सिवाय कई जोड़ी मोजे लिए और फिर यह सोचकर कि लोग समझें कि यह घर पर हमेशा सलेमशाही जूता पहनता है, अपना पम्प बोर्डिङ्ग के

बहरे के सर पर मारा और नया खरीदा। अब उम्मेदवार बनकर 'वर दिखावे' के लिए अपनी होने वाली ससुराल जाने के लिए तैयार थे।

बड़ी अच्छी साइत से हम मित्रों के साथ रवाना हुए थे; क्योंकि टूण्डले के स्टेशन पर हमारे दो और साथी मिल गये जो लखनऊ से भी आगे जा रहे थे। टूण्डले पर एक विद्यार्थी सरीखे महाशय हमारी गाड़ी में आ गये।

बेतकल्लुफी से उन्होंने सिगरेट खर्च करने के बाद मुस्करा कर कहा—"जरा टिकट चेकर को देखते रहिएगा। मैं बेटिकट हूँ।" हमने नोट कर लिया और हम उनकी आज्ञानुसार इधर उधर देखते रहे।

सौभाग्य पर सौभाग्य ऐसा कि हम अपने साथियों के साथ इतमीनान से बातें भी न करने पाये थे कि क्या देखते हैं कि प्लेटफार्म के उस पार वही टिकट चेकर साहब खड़े हैं जिनसे चार-पाँच मास पहले कभी गाजियाबाद के स्टेशन पर साक्षात-कार हुआ था। तुरन्त एक कुली से कहा कि जाकर साहब से कहो कि तुम्हारे एक बड़े पुराने दोस्त बुलाते हैं। थोड़ी ही देर में वह आ खड़े हुए और हमें न पहचान कर कुली से बोले—"कौन बुलाता है?"

हम—"हमने आपको बुलाया है।"

वह—"क्यों, किस वास्ते?"

हम—"इसलिए कि आपसे रुपये की रेजगारी लेना है। यदि हो तो कृपा कीजिये।"

हमने रुपया निकालकर दिखाया। पर बजाय खफा होने के चेकर साहब शायद अपने दिमाग पर जोर देकर हमें पह-चान गये। परन्तु याद न पड़ता था, इस कारण हमने उनकी सहायता की और बोल उठे—"गाजियाबाद।"

उनके चेहरे से पता चला कि वे हमें पहचान गये और उन्हें कुछ गुस्सा भी आया। मगर थे समझदार आदमी और कुछ न बोले। नहीं तो हमारे साथ उस समय कई शैतान साथी थे।

अब हमने उन बेटिकट महाशय की ओर संकेत करके कहा—"टिकट चेकर साहब, वास्तव में मैंने आपको बुलाया तो था इन महाशय के कारण क्योंकि इनकी आज्ञा थी कि हम आपको देखते रहें।" यह कहकर हमने अपना टिकट पेश किया और उन बेटिकट महाशय को पकड़वा दिया। प्रथम इसके कि वह हमारे डिब्बे के तमाम टिकट चेक करें, हमने पहला काम यह किया कि जहाँ तक हो सका, हर खोंचा वाले और कुली को......सारांश यह कि जो भी रेलवे से सम्बन्ध रखता था, कोशिश करके टिकट चेकर साहब के पास यह कह कर भेजा कि तुमको साहब बुलाते हैं।

कुछ समय तक इसका आनन्द रहा। परन्तु मनचाही सफलता न हुई। हम असफल लौट कर अपने स्थान पर जो आये तो देखा कि टिकट चेकर साहब दूसरी ओर की बेंच पर बैठे एक बाबू साहब से बातें कर रहे हैं। आप विश्वास करें कि हमें बातूनी होते हुए भी कुछ प्रकार की बातों से बड़ी उलझन होती है। जैसे जब कई पुलिस वाले बैठकर रपट, चलान और गवाहों के लगातार विषय छेड़ दें या फिर रेलवे कर्मचारी लोग आपस में बैठकर "टू डाउन अथवा फोर अप" कर रहे हों। उस समय यही हो रहा था और हमारी आत्मा हो तो जल उठी। टिकट चेकर साहब इन बाबूसाहब से, जो एक रेलवे कर्मचारी थे, यही बातें कर रहे थे।

तुरन्त हम अपनी गाड़ी में से उतर कर दूसरी गाड़ी में होकर उस ओर पहुँचे और वहाँ से आकर धीरे से अपनी गाड़ी के पावदान पर चढ़े और मौका देखकर हमने चेकर

साहब की दोनों आँखें अपने दोनों हाथों से एक दम से बन्द कर लीं। वह महाशय समझे कि कोई मित्र हैं और उन्होंने हमारे हाथ टटोल कर अपने मित्रों के नाम लेना शुरू किया। 'डेविड' 'पार्कर' 'मैकी' इत्यादि इत्यादि। मगर चूँकि हम इनमें से कोई न थे, इस कारण हाथों को जोर से दबाया ताकि उनको कष्ट हो और अवस्था यहाँ तक पहुँची कि हम उनकी आँखें फोड़े डाल रहे थे! उन्होंने हँसते हुए हमारे हाथ छुड़ाकर जो हमें देखा तो बस जल ही तो गये। मारे क्रोध से उन्होंने टिकट चेक करने की कैंची हमारे हाथ पर इस जोर से मारी कि हम बिलबिला उठे। उन्होंने दूसरा आक्रमण किया। लेकिन हमने उनकी कैंची पकड़ ली और खींचा-तानी करके उसे छीनकर कूद कर हम भाग खड़े हुए। गाड़ी तुरन्त चल दी और हमने एक तीसरे दर्जे के डिब्बे में घुस कर टिकट चेक करना शुरू कर दिया।

जैसे ही दूसरा स्टेशन आया, हम तुरन्त उतर पड़े। हमें अब केवल अपने ही डिब्बे में शरण मिल सकती थी; क्योंकि हम अच्छी तरह जानते थे कि टिकट चेकर साहब हमारा डिब्बा छोड़कर हमारी तलाश में निकलेंगे। हम जल्दी से उतर कर पीछे की तरफ से अपनी जगह आ बैठे। आशा के अनुसार मालूम हुआ कि टिकट चेकर साहब और वह बाबू जो उनसे बातें कर रहे थे और हमें टिकट चेकर साहब का पुराना मित्र समझकर उनकी आँखें फुड़वाया किये और कुछ न बोले। पूछने पर पता चला कि हमारी तलाश में गये हैं। हमें अपने साथियों से मालूम हुआ कि वह हमें पुलिस में देने को कहते हैं। हमने दिल में कहा कि कुछ परवाह नहीं। पास तो हो ही गये हैं। बहुत होगा 'वर दिखावे' को न पहुँच सकेंगे, इससे अधिक हानि असम्भव है। छुट्टियाँ अब की जेल ही में काटेंगे। सबसे पहिले हमने

यह काम किया कि टिकट चेक करने की कैंची टिकट चेकर साहब की गद्दी के नीचे खिड़की के समीप ही रख दी, और अपने स्थान पर आकर इतमीनान से बैठ गये। हमारे साथियों ने पूछा, "अब वह आता होगा, क्या करोगे ?" तो हमने कहा कि हमारी उँगली पर जो कैंची मारी है उसका बदला लेंगे। हम उन महाशय से, जिन्होंने हमसे कहा था कि टिकट चेकर को देखते रहना और जिन्हें हमने बेटिकट होने के कारण पकड़वा दिया था, इस गलती के लिए क्षमा माँग ही रहे थे कि टिकट चेकर साहब आ धमके। हमने जान बूझकर उनकी तरफ से नजर फेर ली।

परन्तु उन्होंने हमारा हाथ बड़े जोरों से पकड़ लिया। हमने डपट कर उनसे कहा—"तुमने हमारी उँगली में अपनी कैंची क्यों मारी ?"

"मैं तुम्हें पुलिस में दे दूँगा। नहीं तो तुम मेरा निपर (टिकट चेक करने की कैंची) लाओ।" 'नहीं देते' हमने बनकर कहा—'तुमने मुझे क्यों मारा ?"

यह कहकर हमने अपनी अँगुली उनकी चोंच की ओर एकदम से बढ़ाकर कहा—'यह देखो।'

इतने में वह दूसरे बाबू साहब जो उनसे बातें कर रहे थे, बोले—'बाबू साहब, आपने अपराध किया है।'

'अरे' हमने कहा 'भई लेना जरा इनके नाल ठोंकना।'

वह जलकर बोले—'अजी बाबू साहब, जरा होश.....।'

हमने बात काटकर कहा 'तुम्हारे बाबू साहब कहीं झक मार रहे होंगे। अब की बार अगर तुमने हमें बाबू वाबू कहा तो याद रखिये कि आप बाबू से आदमी बना दिये जायँगे।'

गरज बहुत जल्द शुक्का-फजीहत होने लगी और लड़ाई की सूरत पैदा होने ही वाली थी कि हमारे एक नालायक साथ

ने दो एक मुसाफिरों की सहायता से बीच में पड़कर टिकट चेकर साहब से कहा—"लड़ने से कोई लाभ नहीं है, जब स्टेशन आ जाय तब इनसे समझ लीजियेगा।"

गाड़ी चल रही थी और हम दोनों अपनी-अपनी जगह बैठ गये, मगर फिर साहब से और हमसे झाँव-झाँव होने लगी और हमने अब बेहतर समझा कि इन्हें दूसरी तरह तंग करें। इस कारण हमने और हमारे साथियों ने सारा विवाद छोड़ कर उनसे रुपसे के पैसे माँगना शुरू किये। एक कहता कि उन्हें न दीजिएगा, मुझे दीजिएगा और दूसरा कहता कि मुझे दीजिएगा, इनका रुपया खोटा है, तो तीसरा कहता—मुझे एक पैसा कम दीजिएगा। गरज, कोई हाथ जोड़ता, तो कोई खुशामद करता कि रुपये के पैसे मुझे ही दीजियेगा। सारा विवाद इस तरह समाप्त हुआ और अब अगर खफा हों तो उसका भी यही जवाब कि 'रुपये के पैसे लाओ।' जब्त से जब उन्होंने काम लिया तो हम लोग जगह छोड़ कर पैसे माँगने पर तुल गये और फिर लड़ाई होने लगी, मगर अब लड़ाई की सूरत ही और थी।

हमारी ढाल और तलवार केवल एक यही वाक्य था कि रुपये के पैसे दे दीजिये!

इतने में गाड़ी की चाल धीमी हुई और हमने अपने साथियों से कहा कि स्टेशन आ रहा है, तुम लोग खिड़की पर आकर ऐसे जमा हो जाना कि हम ज्यों गाड़ी रुकते ही निकल जायँ और टिकट चेकर साहब एक क्षण भर के लिए रुक जायँ।

ऐसा ही किया गया। हम गाड़ी रुकते ही निकल भागे और हमारे साथी खिड़की में ऐसे अड़ गये कि हमें इसके लिए काफी समय मिल गया। टिकट चेकर साहब को खिड़की से निकलने

के लिए जोर लगाता छोड़ कर हम भागे और दौड़ कर एक तीसरे दर्जे में घुस कर पाखाने में किलाबन्दी हो गये।

हमें कुछ पता नहीं कि टिकट चेकर साहब ने हमारे पता लगाने की क्या कोशिश की। जब रेल चली तो हम अपने किले से निकले। हम बहुत घबराये, क्योंकि वह नामाकूल एक कान-स्टेबुल को लिए हमारी इन्तजारी ही में था।

हम निकले ही थे कि टिकट चेकर साहब ने कानिस्टेबुल को हमारी ओर शिकारी कुत्ते की तरह दौड़ा दिया। लाचार होकर हमने अपने को इस शर्त पर कानिस्टेबुल की हिरासत में दे दिया कि टिकट चेकर साहब अलग खामोश बैठे रहें और हमें हाथ न लगाया जाय। अब हम यह सोच रहे थे कि क्या होगा, कहीं सचमुच कैद-वैद न हो जायँ। इतने में एक आदमी ने बढ़ कर कहा—"मियाँ सलाम" कहाँ जा रहे हो? क्या मामला है?

हमने सिर ऊपर करके अपने चचा साहब के नौकर को देखा। मालूम हुआ कि चची साहिबा भी इसी गाड़ी में सफर कर रही हैं और गुरु शिष्य के चक्कर में रुपया नष्ट करने लखनऊ जा रही हैं। दिल में हम सोचने लगे कि अगर गिरफ्तारी से बच गये तो पान और नाश्ते का ठीक हो ही गया।

[३]

स्टेशन आया और हम उतर गये। एक भयानक आकार प्रकार के स्टेशन मास्टर के सामने हमारी पेशी हुई। हमारे साथी भी उतर आये। तुरन्त ही इस झगड़े से हमारी छुट्टी हो गई क्योंकि यदि देखा जाय तो घटना ही क्या थी, केवल इतना ही तो था कि एक मित्र के धोखे में टिकट चेकर साहब की आँखें हमने पीछे से बन्द कर ली थी। टिकट चेक करने की कैंची, जहाँ पर वे बैठे थे, मौजूद ही थी और रुपया के

पैसों की हमें बेहद जरूरत थी—और हम एक पैसा कम लेने को भी तैयार दे।

यह सब कुछ था, मगर नरमी से काम चला और बाजाब्ता खुशामद करनी पड़ी। साथ ही अपनी गलतियों के लिए माफी भी माँगनी पड़ी। लेकिन माफी माँगने के बाद हम फिर भी न माने और कहा कि 'अब तो रुपए के पैसे दे दीजिये।' चूँकि यह दूसरे ढङ्ग से कहा था इसलिए टिकट चेकर साहब हँस दिये और किस्सा खतम।

ये टिकट चेकर साहब अब भी जब कभी मिल जाते हैं तो उनसे साहब सलामत हो जाती है। पर वे अब हमसे कभी टिकट नहीं माँगते।

[५]

इस गड़बड़ी से जब आगे के लिए छुट्टी हो गई तो हम चची साहिबा की मिजाजपुरसी के लिए दूसरे स्टेशन पर पहुँचे। एक साहब कोई और भी खड़े अपने घर की स्त्रियों से बातें कर रहे थे। थोड़ी देर तक बातें करते रहे कि उनमें से एक स्त्री ने उनको एक लिफाफा दिया कि वह उस लेटर बक्स में डाल दे जो जनाना दर्जे के सामने था। चची साहिबा को भी याद आ गयी कि एक कार्ड उनके पास भी डालने से रह गया है। उन्होंने उसे निकाल कर दिया और हमसे कहा कि इसे डाल दो। ये महाशय लेकर बक्स में लिफाफा डाल कर चले गये और गाड़ी ने सीटी दी। हम भी लपक कर कार्ड डालने पहुँचे। देखते क्या हैं कि लेटर बक्स के मुँह में एक लिफाफा अड़ा हुआ है। यह वही लिफाफा था, जिसको वही महाशय अभी लेटर बक्स के अन्दर डाल कर गये थे। हमने इस नियत से उसको निकाला कि अपना कार्ड डाल कर उसको भी डाल दें। स्वभावतः लिफाफा के पते पर नजर पड़ी। एक

दम से हमारे मुँह से किनला, 'अरे' और रेल ने सीटी दी। हमने कार्ड को तो डाल दिया मगर लिफाफा जेब में रख कर हम अपने दर्जा में भाग कर चढ़ गये।

अब आप स्वयं सोच सकते हैं कि हम इस लिफाफे पर अपना अधिकार क्यों न करते। इस पर एक लड़की का पता लिखा था और लड़की भी वही जो हमारे साथ ब्याहने के लिए चुनी गई थी।

जरा अपने साथियों से एक तरफ अलाहिदा होकर हमने पत्र जेब से निकाला और अपने सांसारिक अपराधों की सूची में एक अपराध और बढ़ा कर उस पत्र को खोल डाला। हम इसको पढ़कर बड़े आश्चर्य में हो गये, क्योंकि पत्र का निम्न-लिखित विषय ही ऐसा था।

"मेरी प्यारी बहन जाहिदा,"

मैं किस तरह तुम्हें अपनी परेशानियों का हाल लिखूँ? अम्माजान के बचने की कोई उम्मीद नहीं। दिन-ब-दिन उनकी अवस्था खराब होती जा रही है। आज हम दिल्ली से शाम को चलेंगे। नहीं तो फिर कल सुबह की गाड़ी से जरूर ही चलेंगे। पन्द्रह बीस दिन इलाज रहा। मगर कोई फायदा नजर नहीं आता। डाक्टरी जाँच से मालूम हुआ कि अम्माजान को तपेदिक तो नहीं है मगर भय अवश्य है। हकीम साहब ने भी यही कहा। परन्तु वास्तव में उनकी अवस्था ही और है। उनके कारण मेरी भी अवस्था बहुत खराब हो रही है। आगे वे जायेंगी तो पीछे मैं जाऊँगी। परमात्मा जानता है कि जिन्दगी से अब जान तङ्ग है। यह खत जल्दी में लिख रही हूँ—पूरा हाल घर पहुँच कर लिखूँगी। कलकत्तावाली से केवल एक दिन दिल्ली में भेंट हुई थी।"

यह तो पत्र का असली मजमून था। मगर पत्र के किनारे

पर जो बातें लिखी थीं, वह एक पहेली थी। लिखा था "यह पत्र अब रेल में से डलवा रही हूँ। दिल्ली में भूल गई थी। इस समय हमारा दिल बेहद परेशान है, क्योंकि अभी-अभी मैंने अपने और अम्माजान के कातिल को देखा है जो अपनी चाची से बातें कर रहा था। मुझे उसकी सूरत से घृणा है और दिल में धड़कन पैदा हो गई।"

पाठक स्वयं विचारें कि हमें उस बात से क्यों कर दिल-चस्पी न होती। अव्वल तो लिखनेवाली हमारी होनेवाली बीबी और फिर उस पर यह किनारे की इबारत। हम बहुत चकराये क्योंकि जब यह पत्र डाला गया था तो हम भी अपनी चाची से बातें कर रहे थे। लेकिन यह समझ में न आया कि आखिर वह कातिल कौन है, क्योंकि हमने कोई कतल वतल कभी न किया था। बहुत सोचा लेकिन कुछ मामला समझ में न आया। हमने अब यह तै कर लिया कि हर स्टेशन पर उतर कर अपनी चची के पास जायेंगे ताकि अपने सिवाय किसी और चचा के भतीजे को ढूँढ़ने का अवसर मिले। हमे विश्वास था कि हम जरूर इस पहेली को हल कर लेंगे। हम सोच रहे थे किसी न किसी स्टेशन पर तो वह भतीजा अपनी चची से हमारी तरह बातें करने आखिर को आयेगा ही।

हम हर स्टेशन पर चची के पास जाते और साथ ही यह भी कोशिश करते कि पत्र लिखनेवाली की एक झलक देख लें। मगर अव्वल तो वह बुरका ओढ़े, मुँह छिपाये, खिड़की की आड़ में और चची सामने थी। होते-होते कानपुर का स्टेशन आगया और हमारे बहुत कोशिश करने पर भी हमें उन भतीजे का पता न चल सका, जिसकी हमें तलाश थी। रह-रह कर हम अपने ही को अकेला भतीजा पाते थे। भतीजा तो

भतीजा कोई भतीजानुमा शख्स तक जनाना दरजे के पास न फटका।

कानपुर के स्टेशन पर हमने अपना और अपनी चची साहिबा का असबाब आसानी के वास्ते मिला लिया; क्योंकि हमारे साथ हमारे तीन और साथियों का भी असबाब था। यहाँ हमें लखनऊ जाने के लिए स्टेशन बदलना था। एक ही ठेले पर सब असबाब लदवा दिया गया और हम दूसरे प्लेट-फार्म पर पहुँचे।

कानपुर से लखनऊ पहुँच गये। मगर उन भतीजे साहब का पता न चला। लखनऊ के स्टेशन पर ही हम चची साहिबा से विदा हुए; क्योंकि वह सीधे अपने गुरु के यहाँ जा रही थीं।

[६]

हम अपने मित्र के यहाँ ठहरे। घर पहुँचकर हमने अपना काला सूटकेस सरीखा ट्रंक जो खोला तो हमारे आश्चर्य की कोई सीमा न रही, क्योंकि हमारे सामान की जगह जानना कपड़े और शृङ्गार की वस्तुएँ थीं। हम बहुत घबड़ाये और ऊपर नीचे चारों तरफ से ट्रंक को देखा। यह किसी दूसरे का था और बदल गया था। हमारा बक्स भी काला था। वह भी नया था और यह भी नया इसमें भी ऊपर का ताला न था और उसमें भी कोई ऊपरी ताला न पड़ा था। यह तो निश्चय था कि चची साहिबा के सामान में हमारा सामान मिल गया और उसी में बदल गया है, मगर चची साहिबा का यह बक्स हो ही नहीं सकता था, क्योंकि यह तो किसी फैशनेबुल छोकरी का सामान मालूम होता था। हमने तुरन्त इस बक्स की तलाशी ली तो हमें उसमें कई पत्र और कागज मिले। इन पत्रों के पते पढ़ कर हम चौंके। पत्र एक-एक करके हमने सब पढ़े। वह

सब पत्र जाहिदा के थे। अर्थात् उस लड़की के जिससे हमारा ब्याह होना सोचा जा रहा था। इन पत्रों के अतिरिक्त एक लम्बे-चौड़े पत्र का मसौदा मिला, जो जाहिदा को लिखा गया था। उसको हमने आदि से अन्त तक पढ़ा। हम पढ़ते जाते थे और सन्नाटे में आते जाते थे। पत्र पढ़ चुकने के बाद हम अपना सर पकड़ कर बैठ गये; क्योंकि अब सारा भेद खुल गया था। वास्तव में बात यह थी कि वह कातिल भतीजा जिसका जिक्र इस पत्र के मसौदे में था, मेरे सिवाय कोई न था। 'या अल्लाह अब क्या करूँ' हमने आह खींच कर और परेशान होकर कहा। हम एक विचित्र चिन्ता में पड़ गये। बेशक हमारा ही अपराध था। मगर उस अपराध के कारण हमें कातिल कहना कहाँ तक ठीक था। इसका अनुमान हम चुप बैठे हुए लगा रहे थे। क्योंकि जो बात समझ में आई यदि वह सत्य थी (और वास्तव में सत्य थी ही) तो अवश्य यह भयानक कातिल शब्द हमारे लिए उपयुक्त था।

हमारे पास अब इसका क्या इलाज था। जो हम अपनी शरारतों के सिलसिले में कर गुजरे थे।

बहुत कुछ सोचा—परन्तु कोई इलाज नजर न आया, तुरन्त हमने दिल में कुछ ठान लिया। 'वहाँ' जाना स्थगित किया गया और जा भी कैसे सकते थे; क्योंकि हमारे अच्छे सूट और टाई कालर हमारे उस ट्रंक में थे, जो बदल गया था। हमने अब 'वर दिखावे' को तो स्थगित किया और घर अर्थात् पिता जी के पास सीधे जाने की ठानी।

यहाँ यह कहने की जरूरत नहीं कि पत्र और बक्स असबाब सहित हमने जब्त कर लिया और किसी प्रकार का भी उद्योग न किया कि इस बक्स को लेकर अपना बक्स लौटाया

लौं। सौभाग्य से हमारे बक्स में हमारी कोई ऐसी चीज न थी जिससे हमारा पता चल सकता।

हमने क्या अपराध किया था और हमारे साथ शरारत क्या हुई थी और हमने क्या कमीनापन किया था और वास्तव में क्या मामला था और फिर हमने अपने अपराध की क्षमा किस तरह चाही यह सब बातें वास्तव में बिल्कुल प्राइवेट हैं और पाठकों को नहीं बताई जा सकतीं। आशा है कि पाठक भलमनसाहत से काम लेते हुए इस शिकायत का ख्याल भी दिल में न लायेंगे कि विषय अधूरा और अपूर्ण रह गया, फकत।

नोट—यह किस्सा तो यहीं समाप्त हुआ और यदि कोई अपने प्राइवेट मामलात छिपना चाहता है तो कोई मुजायका नहीं और हमें आशा है कि आप भी भलमनसाहत से काम लेते हुए इस शिकायत का ख्याल भी दिल में न लायेंगे कि विषय अधूरा और अपूर्ण रह गया। अगले अध्याय में हम इस सिलसिले में एक श्रीमती जी की आत्म-कथा, स्वयं उन्हीं की जबानी पेश करते हैं, जिससे इन घटनाओं पर काफी प्रकाश पड़ सकेगा। 'सुनिए'।

कोलतार

एक दिन का जिक्र है। दोपहर का समय था। घर में बिलकुल सन्नाटा था। रसोइदारिन रसोई पका कर जा चुकी थी और अम्मा भी एक जगह चली गई थीं। वे उस समय खर्च के लिए परेशान थीं। किराएदारों से किराया न मिला था, इसलिए रुपये पैसे की तङ्गी थी। घर में हम दो माँ-बेटियों के सिवा कोई न था, और जब अम्मा भी चली गईं, तो मैंने मकान

का दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया, और समय काटने के लिए अपनी बिल्ली के बच्चों का घर बनाने लगी।

अम्मा को गये हुए मुश्किल से घंटा भर हुआ होगा कि किसी ने जोर से दरवाजा खटखटाया। "दरवाजा खोलो" की आवाज के साथ कोई जोर से दरवाजा पीटने लगा। दरवाजे की तरफ गई तो फिर वही आवाज आई। मैंने दिल में कहा कि या खुदा यह कौन है, जो जोर-जोर दरवाजा पीट रहा और चिल्ला रहा है। दबे पाँव धीरे-धीरे दरवाजे के पास पहुँची। दरवाजे में से कुछ दिखाई न दे सकता था। मैंने दरवाजे से कान लगाये, और बातों से फौरन मालूम कर लिया कि ये हमारे किरायेदार लड़के हैं, और शायद किराया देने आये हैं। इतने में फिर दरवाजे को इस जोर से पीटा कि मैं चौंक-सी पड़ी। बाहर से किसी ने पुकारकर कहा—"किराया ले लीजिए···दरवाजा खोलो···कोई है?" मैं चुप रही। वे फिर आपस में बातें करने लगे। इतना मुझे मालूम ही था कि तीन लड़के थे, और इस वक्त भी शायद तीनों ही होंगे। अब मैं खड़ी सोच रही थी कि क्या करूँ? यह जानती ही थी कि अम्मा को रुपये की कितनी सख्त जरूरत है, और वे नौकरानी से कह भी चुकी थीं कि लड़कों से तकाजा करके किराया ले लेना नहीं तो, अगर मौका निकल गया, तो दूसरे महीने तक इन्तजार करना पड़ेगा। लड़कों का भी यह दस्तूर था कि अगर किराया रह जाता, तो वसूल न होता—सब खर्च कर डालते थे। मतलब यह कि अम्मा को रुपये की बड़ी जरूरत थी। मैं खड़ी दरवाजे के पास सोच रही थी।

इतने में एक लड़के ने कहा—"जब किराया लाओ, तो कोई लेता नहीं, और फिर शिकायत होती है कि वक्त पर नहीं देते" दूसरा बोला—"इसका इलाज यही है कि पन्द्रह दिन खूब तङ्ग

करके किराया दिया जाय।" तीसरे ने कहा—"बस यह ठीक है, अब चलो!"—दोनों ने कहा।

रुपये पैसे की जरूरत भी बुरी चीज है। मैंने यह सुना और देखा कि फिर किराया वसूल होना मुश्किल हो जायगा, तो मुझसे न रहा गया, और मैंने भी अन्दर से दरवाजे पर हाथ मारा। "साहब किराया ले लीजिये"—किसी ने बिगड़ कर गुस्से के सुर में कहा—"हम घंटे भर से किवाड़ पीट रहे हैं।"

अब मेरी समझ में न आया कि क्या करूँ। मैं चुप रही, और सोच रही थी कि उसी लड़के ने कहा—"अगर नौकरानी न हो, तो दरवाजे की आड़ से खुद ले लीजिए, वरना फिर आज हम लोग एक जगह जा रहे हैं, और इस महीने किराया न चुका सकेंगे।"

ऐसे मौके पर आप खुद सोचें कि मैं मजबूर हो गई। आड़ से रुपया लेने के लिए दरवाजा खोलने ही को थी कि फिर रुक गई। "तो फिर हम जाते हैं।" उस लड़के ने कहा, बाकी दोनों चुप थे।

मुझे चाहिये था कि जबान से काम लेती, और कह देती—"रुपया पड़ोसिन को दे दो, और जाते हो, तो जाओ।' मगर फिर खयाल आया कि एक छोड़ तीन लड़के हैं, दिन का वक्त है, और चलती सड़क है, मैं ही आड़ से ले लूँ, तो कोई नुकसान नहीं। इतने में फिर उन्होंने कहा—"उँह चलो भी। मैंने यह सुनकर फौरन कुण्डी खोल दी। उसकी आवाज सुनकर उसी लड़के ने कहा—"लीजिए।" मैंने किवाड़ को जरा-सा आड़ से खोला, और इसका इन्तजार करने लगी कि कोई रुपया दे कि मेरी बेखबरी में उस लड़के ने किवाड़ों में एकाएकी ऐसा धक्का दिया कि दोनों किवाड़ एकदम खुल गये, और मैं तीनों के सामने हक्का-बक्का खड़ी रह गई। जब तक होश सँभालने न

थी कि आमना-सामना होते ही सबसे आगे वाले लड़के ने झपट कर कहा—"कोलतार!" क्या बताऊँ कि मेरे कैसे होश उड़ गये, और मैं कैसी बदहवास होकर गिरती-पड़ती बेतहाशा भागी कि एक पुराने कोयले के कनिस्टर में उलझ कर गिरी। मेरे गिरने पर फिर उसने कहा—"कोलतार!" मैं सँभल कर पगली की तरह भागी, और मैंने ड्योढ़ी के दूसरे दरवाजे को जल्दी से बन्द कर लिया। मेरे होश-हवास ऐसे गुम हो गये थे कि मैं शिथिल हो गई। बदन-भर कँपकँपी दौड़ रही थी, दिल धड़क रहा था, और मैं पसीने-पसीने हो रही थी। वहीं दरवाजे से सिर टिका कर बैठ गई। लड़के जा चुके थे। कुछ देर बाद जब दिल की धड़कन जरा कम हुई, होश ठीक हुए तो उठी। लड़कों की इस कमीनी हरकत पर बड़ा गुस्सा आ रहा था। लड़कों ने पहले कभी इस तरह की बात न की थी। मैं बड़े ताज्जुब में थी, और उनकी असाधारण शरारत की वजह जानना चाहती थी, अतः मैं सीधे छत पर जा पहुँची।

[२]

मेरे पिता की जिन्दगी में ऊपर के दोनों कमरे एक थे, लेकिन उनके मरने के बाद बीच की दरवाजा ईंटों से चुनवाकर बराबर वाली कमरा अलग कर दिया गया था, और इन लड़कों को किराये पर दे दिया गया था। लेकिन अब भी दोनों कमरों के आगे सड़क की तरफ वाली छज्जा एक ही था। एक टीन खड़ी करके उसे नाम मात्र के लिए अलाहिदा कर दिया गया था। मोटे तौर पर यह काफी था कि इधर का आदमी उधर आ जा न सके। लेकिन देखा जाय, तो यह आड़ नाम मात्र की ही थी। क्योंकि लकड़ी के खम्भों को पकड़कर छज्जे के कटेहरे पर पैर रखकर कोई भी इधर-से-उधर आ-जा सकता था। हमारे छज्जे के सामने परदे के लिए चिकें पड़ी हुई थीं।

मैं दबे पाँव इस छज्जे पर पहुँची, और टीन के पास कान लगाकर लड़कों की बातें सुनने लगी।

लड़के खूब हँस रहे थे। मुझे बड़ा गुस्सा आया, जब मैंने सुना कि उन्होंने मेरा नाम 'कोलतार' नहीं बल्कि 'कोलतार साहब' रखा है। मैंने गौर से उनकी शरारत-भरी बातें सुनीं, तो मालूम हुआ कि ये बदमाश मेरी बोली सुनकर आपस में मेरी सूरत-शक्ल, रूप-रङ्ग का अन्दाज लगाया करते थे और आपस में बहस किया करते थे। इस बहस को खतम करने के लिए वे बहुत दिनों से किसी न किसी तरह मुझे देखने की फिक्र में थे। बातों से यह मालूम हुआ कि इन्हें मालूम हो गया था कि इस वक्त मैं घर में अकेली थी, इसलिए इन्होंने खास इसी वक्त किराया देने की चाल चली थी।

इतने में मालूम हुआ कि नौकर बर्फ लेकर आया। लोटा उठाने और बर्फ धोने की आवाज आई। मैंने सोचा कि अब जाऊँ, और जाने को ही थी कि एकदम से टीन के दीवार के पास वाली खिड़की खुली, और इसी शरीर लड़के ने अपना सिर डालकर झाँका। इसका मेरा फिर सामना हो गया और इस बार तो इतने पास से कि अगर मैं जरा भी और आगे को होती, तो सिर से सिर लड़ जाता, क्योंकि मैं सड़क की तरफ टीन से कान लगाये थी। सामना होते ही जोर से इसने कहा- "कोलतार!" सो भी इतने नजदीक से कि इसके मुँह की सांस मेरे मुँह पर लगी। मैं इस दूसरी शरारत के लिए बिलकुल तैयार न थी, और ऐसी बौखलाई कि गिरते-गिरते बची। फौरन अपने कमरे में घुस गई, और दरवाजा बंद करके बेदम होकर पलङ्ग पर गिर पड़ी। बराबर के कमरे से हँसने और तेजी से बातें करने की आवाजें आ रही थीं। जब जरा तबीयत ठिकाने

हुई, तो मैंने अब ईंटों से चुने हुए दरवाजे से कान लगाये। जब कुछ साफ सुनाई न दिया, तो मैंने दो ईंटों के बीच में एक बड़ी सी कील से आसानी से छेद कर लिया, क्योंकि दीवार एक ही ईंट की थी।

इस छोटे से सूराख से मैंने देखा कि दो लड़के कुरसियों पर बैठे हैं। तीसरा कुछ अलग था; उसकी सिर्फ टाँगें ही दिखाई देती थीं।

इन दोनों के हाथ में दूध के शरबत के गिलास थे। वे दोनों गिलासों में बर्फ बजा-बजाकर इतमीनान से बातें कर रहे थे, और शरबत पी रहे थे। अब मैंने भी इतमीनान से उनकी बातें सुनीं।

उसी शरीर लड़के ने बातों के सिलसिले में कहा—"लाहौल-विला कूवत! तुम भी अजीब आदमी हो।"

दूसरे ने कहा—"जी हाँ, जो वह अपनी मां से कह दे, तो क्या होगा?"

"होगा क्या?"—उस शरीर ने अपना गिलास मुँह से हटाते हुए कहा—"क्या होगा! यही कह देंगे कि साहब, हमने आवाज दी, और जब कुन्डी खुली, तो हमने यह जानकर कि नौकरानी है, दरवाजा खोल दिया। इसमें भला हमारा क्या कसूर? सड़क का मामला है। राहगीर चल रहे हैं। भला, ऐसे में कोई शरारत मुमकिन है? किसी को गुमान भी नहीं हो सकता।"

"खैर जनाब, यह कोई न मानेगा।"—उसने कहा।

"न मानने दो,"—उसने लापरवाही से कहा—"क्या मैंने उसे खा लिया?" फिर उसने हँसकर कहा—"मैं कहता न था कि आज खूब मौका है, और कोलतार साहब के सिवा घर में कोई नहीं है।"

इस पर तीसरा बोला—"भई, इन्साफ की बात तो यह है कि वह काली तो है नहीं, इसलिए 'कोलतार' नाम ठीक नहीं—कुछ जँचता नहीं।"

"यह कहिए!" उसने जोर से कहकहा लगाकर कहा—"तुम खुद ब्लैक जापान (चमकदार काला जापानी रङ्ग) हो," एक कहकहा और लगाकर—"इसलिए मेरा इरादा होता है कि तुम्हारे साथ उसके ब्याह का सन्देश भेज दिया जाय।" इतना कह कर उसने फिर कहकहा लगाया। इधर मेरा गुस्से से बुरा हाल था। मैं बहुत घृणा-भरे क्रोध से उसे देख रही थी। उसने फिर कहा—"हम सन्देश भेज देंगे, और साफ कह देंगे कि साहब, मिला लो। अगर हमारा लड़का तुम्हारी लड़की से कलौंच में कम हो, तो दाम वापस!' फिर जोर से कहकहा लगा।

ब्लैक जापान का खिताब पानेवाले ने हँसते हुए कहा—"भई, मैं तो काला हूँ, और मानता हूँ, मगर वह काली नहीं; हरगिज नहीं। अच्छा खुलता हुआ रङ्ग है, बल्कि……।"

"बल्कि खूब गोरी-चिट्टी, भभूका, मेम की नानी है।"—उसने ताने के साथ वाक्य पूरा कर दिया। इस पर फिर हँसी हुई।

उसी शरीर ने फिर कहा—"अरे यार, तुम तो अहमक हो। माना कि वह काली नहीं, गोरी है, मगर जरा यह नहीं देखते कि बेईमान निकली।

"वह कैसे?" ब्लैक जापान साहब ने पूछा।

उसने कहा—"वह ऐसे कि उसकी बोली सुन कर मुद्दत से हम लोगों ने उसके बारे में 'लो' कल्पना कर रखी थी, उसके बिलकुल विपरीत निकली। जरा सोचो तो कि हम तो यह सोच कर जायँ कि बड़ी सुन्दर, गोरी-चिट्टी, चाँद के टुकड़े-सी को

देखेंगे, मगर वहाँ मिले एक बहुत मामूली लड़की, तो तुम्हीं न्याय से कहो कि मुँह से कोलतार न निकले, तो क्या निकले ? जैसी हमने अपने मन में कल्पना कर रखी थी, उसकी तुलना में वह सचमुच ही कोलतार निकली, इसीलिए मेरे मुँह से 'कोलतार' निकला। हम लोगों के निश्चय किये हुए स्टैन्डर्ड से उसे गोरी कहना जुर्म है। और जुर्म भी कैसा·····पुलिस की दस्तन्दाजी के काबिल !"

ब्लैक जापान साहब बोले—"यह दूसरी बात है, मगर वह काली तो नहीं है।"

मेरी बिल्ली सामने कुरसी पर बैठी थी। उसने इन बातों को छोड़कर कहा—"भई, कोलतार साहब की बिल्ली को थोड़ा शरबत दो।" यह कह कर उसने एक प्याली बिल्ली के आगे रख दी, और तीनों ने थोड़ा-थोड़ा शरबत अपने गिलासों से बिल्ली को दिया। अब मैंने इस लड़के को देखा, जिसका नाम ब्लैक जापान था, क्योंकि अब तक वह आड़ में था। उसका रंग सचमुच साँवला था। बाकी दोनों अच्छी खासी सूरत-शक्ल के लड़के थे। जिसने यह सब शरारत की थी, और मेरा नाम कोलतार रखा था, उसका रंग कुछ ज्यादा साफ था। नाक-नक्शा भी अच्छा। मुझे मानना पड़ा कि उसका रंग मुझसे कहीं ज्यादा साफ था, मगर यह सब कुछ होने पर भी इस वक्त उसकी सूरत पर एक कमीनापन बरस रहा था।

अब दूसरी बातें होने लगीं, और कुछ खाने-पकाने की बात शुरू हुई। मैं जैसे चलने को हुई कि फिर रुक गई, उसी शरीर लड़के ने कहा—"क्यों भई, क्या राय है, आज कोलतार साहब की दावत रहे ?" उसके चेहरे पर शरारत बरस रही थी। आँखें चमक उठीं, जिससे मैं साफ समझ गई, फिर कोई नई शरारत सोच रहा है।

"वह कैसे ?"—दूसरे ने पूछा।

"वह ऐसे कि आज रात को खीर बने और कोलतार साहब को भी खिलाई जाय !

"शायद बुरा मानें और वापस कर दें।"

उसने कहा—"हमें ईद पर उन्होंने सिवइयाँ भेजी थीं, और अकसर कुछ-न-कुछ भेजा करती हैं। अगर उन्होंने खीर फेर दी, तो आगे हम भी उनके यहाँ की कोई चीज न लेंगे।"

अतः यह निश्चय हुआ कि रात को खीर के प्याले मेरे लिए भेजे जायँ। मैंने जलकर अपने दिल में कहा कि अगर याद न कराया, तो कोई काम न किया।

इसके बाद मैंने कमरा बन्द कर दिया, और मैं नीचे चली गई। वहाँ ड्योढ़ी का दरवाजा खोल दबे पाँव जाकर बाहर का बड़ा दरवाजा बन्द कर दिया।

अब मैं सोच रही थी कि आखिर इस शरारत की बात अम्मा से कहूँ, या न कहूँ ! मुझे वास्तव में इस बात पर सख्त गुस्सा आ रहा था कि इस शरीर ने मेरा नाम कोलतार रख दिया। आज तक किसी ने मुझे काला तो काला, साँवला तक न कहा था। लड़कों की बातों का ध्यान करके मैं सोचने लगी कि क्या मैं सचमुच में काली हूँ। शीशे के सामने जाकर खड़ी हुई। देर तक देखती रही और गौर करती रही। कुछ चुप-सी हो गई, इस कारण नहीं कि मेरा रूप-रंग कुछ काला या फीका था, बल्कि इस कारण कि शायद मुझे 'कोलतार' कहनेवाले का रंग मुझसे ज्यादा खुलता हुआ था। फिर भी मुझे रह-रहकर क्रोध आ रहा था कि मैं गोरी न सही, बिल्कुल काली सही, मगर यह कमबख्त मुझे कोलतार कहनेवाला कौन होता है।

शाम को नौकरानी आई, तो मैंने फौरन उसे किराया वसूल करने को भेजा। मैं वजू कर रही थी कि नौकरानी एक पर्चा

लेकर आई। पर्चा कभी न आता था। मैंने गीले हाथों से लेकर देखा, तो उस पर लिखा था—"मई महीने का किराया।" भला यह लिखने की क्या जरूरत थी? मैंने पर्चा फेंक दिया, मगर यह देखकर फिर उठा लिया कि उसकी पीठ पर कुछ लिखा है। मैं जल ही तो गई। मैंने देखा कि पीठ पर मोटे कलम से लिखा है—"कोलतार साहब!" मैंने जलकर पर्चा फेंक दिया, मगर फिर उठा लिया कि नौकरानी अम्मा से कहेगी कि किराया और एक पर्चा लाकर दिया था, सो बिना अम्मा को दिखलाये पर्चा फाड़ना न चाहिए।

नमाज से छुट्टी पाकर मैं रसोई घर में गई। बिल्ली चूल्हे के पास बैठी थी। गौर से देखा, तो उसके लाल साटन के पट्टे पर चारों तरफ 'कोलतार' का शब्द लिखा हुआ था। मैंने गुस्से से बिल्ली को पीट डाला कि कम्बख्त वहाँ जाकर क्यों मरती है। पकड़कर ले गई, और लाल रंग घोलकर कोसती जाती थी और लिखावट मिटाती जाती थी। मुझे बेहद गुस्सा आ रहा था। बिल्ली को छोड़ा ही था कि उसके सफेद पेट पर नजर पड़ी। स्याही से मोटे हरफों में बड़ी होशियारी से बाल इस तरह रंग गये थे कि साफ 'कोलतार' पढ़ा जाता था। खिसियानेपन और गुस्से के मारे मेरी आँखों से आँसू निकल आये। पहले तो बिल्ली को खूब पीटा, फिर पानी से रगड़-रगड़ कर बड़ी मुश्किल से अक्षर मिटाये। धब्बा फिर भी न गया। बड़ी देर तक मुझे इन कार्रवाइयों पर गुस्सा आता रहा, और मैं सोचती रही कि अम्मा से कह कर इस शरीर को निकलवाऊँगी।

शाम को अम्मा आ गईं। मैंने बहुत चाहा कि उनसे सब बातें कह दूं। बार-बार हिम्मत करके आती। एक बार तो

उन्हें सम्बोधित भी किया, मगर कहते-कहते रह गई। कुछ और बात कह कर टाल दिया।

रात में नौकरानी जाने वाली हुई कि किसी ने दरवाजे पर आवाज दी। मैंने आवाज पहचान ली। लड़कों का नौकर था। अब मुझे याद आया कि क्या देखती हूँ कि नौकरानी एक थाली लिए चली आ रही है। मैं समझ गई कि खीर है। कुछ बेचैन होकर मैं घबरा-सी गई, और वह केवल इस कारण से कि मैं जानती थी कि मुझे भेजी है। अम्मा से नौकरानी ने कहा कि लड़कों ने सलाम कहा है और खीर भेजा है। मैंने फौरन अम्मा को सलाह दी कि वापस कर दो, यह कैसा खीर। इस पर नौकरानी बोली, नौकर ने कहा है कि लड़कों ने किसी शहीद की नियाज दिलवाई (प्रसाद चढ़ाया) है। मैं फिर भी न मानी, और अम्मा से आग्रह करके कहा कि वापस कर दें। जब बहुत कहा, तो अम्मा ने प्रेम से कहा—'न बेटी, यह प्रसाद की चीज है। भला, वह भी कोई बात है कि कोई तो प्रेम से उपहार भेजे, और हम वापस कर दें। यह कोई भली बात नहीं।"

लेकिन मैंने फिर जिद की, और कहा—"परदेशियों का मुफ्त में क्यों एहसान लें ?"

अम्मा बोली "ऐसा ही है, तो तू भी कभी एहसान उतार देना।"

मैंने जल कर कहा—"इन कम्बख्तों का हम एहसान ही क्यों लें, जो उतारते फिरें ?"

इस पर अम्मा कुछ खफा होकर बोलीं—"ऐसा है, तो फेंक दे, मगर मैं वापस न करूँगी।"

मजबूर होकर मैं बड़बड़ाती हुई उठी और लालटेन लेकर प्याले को खाने की आलमारी में रखने लगी। प्यालों पर चाँदी

दिया। थोड़ी देर बाद मैंने छुरी से बिल्ली का पट्टा ही काट डाला कि कहीं फिर यही शरारत न हो।

कुछ देर बाद छत पर जो गई, तो क्या देखती हूँ कि दीवार के पास बहुत सी रद्दी कागज की मरोड़ियाँ पड़ी हैं। यह असाधारण बात देखकर मैंने उसमें से एक को उठाकर पढ़ा। वही शरारत थी—यानी उस पर 'कोलतार' लिखा हुआ था। दो तीन रद्दी के टुकड़े उठाकर देखे। सब पर यही लिखा था। यह कूड़ा मुझे केवल मुझे तंग करने के लिए ही दीवार के इस तरफ फेंका गया था। पहले तो दिल में आया कि फिर उसी तरफ फेंक दूँ, मगर कुछ सोचकर उन्हें बटोर कर कूड़े में फेंक दिया। मैं कमरे में पहुँची। सूराख से देखा, तो वह हजरत कोई किताब पढ़ रहे थे। इस वक्त मैंने उन्हें इतमीनान से देखा। मेरे बराबर या मुझसे कुछ कम उम्र थी। यद्यपि किताब पढ़ रहे थे, मगर चेहरे से साफ मालूम होता था कि लड़का क्या है शरारत की पुड़िया है। मैं कह नहीं सकती कि उससे मैं कितनी नफरत करने लगी थी और सब बातों का ध्यान करके मुझे कितना गुस्सा आ रहा था।

× × ×

इस शरीर ने दस-पन्द्रह दिन मेरी जान इस मुसीबत में रखी कि बयान नहीं कर सकता। अपने कमरे में जितनी रद्दी होती; उस पर 'कोलतार' शब्द लिख-लिखकर मेरी ओर फेंक देता। बिल्ली का पट्टा कट गया था, तो उसकी दम में डोरे से कागज बाँधकर उस पर बीसियों जगह कोलतार लिख दिया जाता। फिर इस पर ही संतोष नहीं किया, मेरे छज्जे पर आकर सारी की सारी दीवार पर 'कोलतार' लिख मारा। मैं कोसती जाती और मिटाती जाती। मेरे मिटाने पर और जिद हो गई। बार-बार मिटाती; और बार बार लिख जाता।

तुर्रा यह कि मैंने अपने कानों सुना कि उसके साथी इन हरकतों को मना करते, मगर वह भला काहे को किसी की सुनता ?

मुझको भी थोड़ी बहुत कुरेदनी सी हो गई थी कि देखूँ, ये लोग क्या बातें करते हैं ? अक्सर जा-जाकर उनकी बातें सुना करती थी। अकसर अपना जिक्र सुनती थी। एक दिन मैंने सुना कि वे हजरत मेरी प्रशंसा में एक कविता पढ़ रहे हैं। सारे शेरों में कोलतार का शब्द तरह-तरह से इस्तेमाल किया गया था, और सारी घटना को पद्यबद्ध करने की कोशिश की गई थी। बाज-बाज शेर तो वास्तव में ऐसे थे कि अत्यन्त क्रोध आने पर भी मुझे हँसी आ गई, मगर अधिकांश ऐसे थे कि मैं सुन-सुन कर लाल-सी हो रही थी। जब कविता खतम हुई तो मालूम हुआ कि यह पूरी कविता कल दोपहर को मेरे छज्जे की दीवार पर चिपकाई जायगी।

थोड़ी देर तक मैं उनकी मूर्खतापूर्ण बातें सुना की, फिर चली आई, और दिल में यह सोच रही थी कि छेड़-छाड़ का यह सिलसिला इस कारण से और भी है कि मैं छज्जे की दीवार की लिखावट मिटा देती हूँ। अब मैंने यह सोचा कि छज्जे पर जाऊँगी ही नहीं ! खुद थक कर चुप हो जायँगे। कमरा बन्द करके जाने ही को थी कि मैंने अपनी बिल्ली को बड़ी तेजी से पाखाने में जाते देखा। यह पाखाना काम में न आता था। मैं यह देखने गई कि बिल्ली दौड़ती हुई क्यों गई है। वहाँ मैंने देखा कि कदमचे पर बिल्ली बैठी है, और सामने आले को देख रही थी। यह आला रोशनदान की तरह आर-पार खुला हुआ था। मैंने जो उस तरफ देखा, तो फुरहरी-सी आ गई; क्योंकि आले के बीचो-बीच में पीली बर्रों का बड़ा सा छत्ता लटक रहा था। यह छत्ता बिलकुल गोल था, और उस पर इतनी बर्रे चिपकी हुई थीं कि बिलकुल पीला हो रहा

था। देखते-देखते मेरे विचार न मालूम कहाँ से कहाँ पहुँचे, और मैं कुछ सोचकर चली आई।

रात में चुपके से उठी, और एक बड़ा-सा टीन का डिब्बा लेकर पाखाने में पहुँची। अँधेरा कुछ ऐसा ज्यादा न था। आले में लटका हुआ छत्ता साफ दीख पड़ता था। मैं कुछ हिचकिचाई, मगर फिर हिम्मत करके आगे बढ़ी, और छत्ते को सफाई से डब्बे में लेकर अपनी तरफ तेजी से घसीटकर फौरन ढकने से बन्द कर दिया। अब पूरे का पूरा छत्तामय बर्रों के डब्बे में बन्द हो गया। कान लगा कर मैंने बर्रों की भनभनाहट सुनी। मेरे बदन के रोंगटे खड़े हो गये। ढकने को मजबूती से पकड़े हुई थी, क्योंकि यह ढकना इस डब्बे का न था, बल्कि दूसरे डब्बे का था। कमरे में आकर मैंने उस पर स्याही से बड़े-बड़े अक्षरों में कोलतार लिख दिया। आहिस्ता से दरवाजा खोलकर मैंने इस आफत के डब्बे को दीवार के पास ही रख दिया, और वापस चली आई।

× × ×

मैं जानती थी कि किस वक्त इन लोगों को फुरसत होती है। वास्तव में सारी शरारतें स्कूल से आकर खाना खाने से पहले ही करते थे, अतः दूसरे रोज मैं इस तमाशे को देखने के लिए कमरे में पहुँची। मेरा दिल धड़क रहा था। कई बार मैंने इरादा किया कि डब्बा हटा लूँ। मुझे ज्यादा इन्तजार न करना पड़ा। गली में सन्नाटा था। वह हजरत अब मौका पाकर छज्जे के इस तरफ दीवार पर कविता चिपकाने के लिए पहुँचे। टीन के इस तरफ आने की साफ आहट सुनाई दी, क्योंकि मैं कान लगाये हुये थी। चिक के गिरने की आवाज के साथ पैर की आहट भी सुनाई दी। अब मैं इन्तजार में थी कि देखूँ, क्या होता है। यह तो प्रकट है कि छज्जे पर आये थे तो अकल

अपने कमरे में ही छोड़ आये थे। एकाएक मैंने एक दबी हुई चीख और पैर पटकने की आवाज और उसके साथ ही दबी घुटी हुई आवाजें और मुँह पीटने की तड़ातड़, जैसे तमाचे पड़ रहे हों, सुनी। बौखलाकर साथियों को पुकारा। सारी दृढ़ता गायब हो गयी। एक हड़बोंग-सा मच गया। न मालूम उनके साथी क्या कर रहे थे। साथियों की दबी आवाज में खुद शोर मचा कर इनसे कहना कि गुल न मचाओ, और इनका अपनी आवाज को दबाना, कूदना और फड़फड़ाना! वास्तव में बेचारे बुरी तरह घिरे हुए थे। इधर तो बर्रें गुस्से से भरी हुई थीं, उधर छज्जे पर चिकें पड़ी हुई थीं। एक तरह से वे बर्रों के साथ बन्द थे। परेशान होकर छज्जे के इस सिरे का—मेरे कमरे का—दरवाजा पीटने लगे। पलक मारने में इस बुरी तरह दरवाजे को भड़भड़ाया कि मुझे आन्देशा होने लगा कि कहीं दरवाजा खुल न जाय, क्योंकि सिर्फ ऊपर की चटखनी लगी हुई थी, जो वैसे ही ढीली थी। नीचे की चटखनी बिगड़ी हुई थी, और लगती ही न थी। मेरी नजर चटखनी पर थी। मैं कमरा बन्द करके नीचे जाने को थी कि मुझे जान पड़ा कि चटखनी जरूर खुल जायगी। मैं पलट कर दरवाजे के पास पहुँची कि चटखनी को मजबूती से बन्द करके नीचे जाऊँ कि उधर से उन हजरत ने इस जोर का धक्का दिया कि किवाड़ खुल गये। इधर से मैं तेजी से पहुँची, उधर से वे बर्रों से बचने के लिए घुसे। बस, टक्कर होते-होते बची! मगर वाह री तबीयत! इस मुसीबत में भी शरारत न छोड़ी। मुझे देखते ही 'कोलतार' कहकर बुरी तरह झपटा। खैर हुई, उस शरीर ने मुझे पकड़ ही लिया होता। मैं किस मुश्किल से बचकर भागी, इसका अन्दाज लगाना कठिन है। नीचे पहुँच कर जब अम्मा को बदस्तूर सोते पाया, तब मैंने इतमीनान की साँस ली।

जब काफी देर हो गई, तो मैं फिर ऊपर पहुँची। कमरे को खाली पाकर अच्छी तरह बन्द किया। सूराख से झाँककर देखा, तो मेरी तबीयत बेहद खुश हुई। सारा मुँह सूजकर कुप्पा हो रहा था। कुछ दवा लगाई जा रही थी। दोनों साथी मजाक उड़ा रहे थे। आप हाथ में शीशा लिए कह रहे थे—"इसका बदला ऐसा लूँगा कि याद ही करेगी।" साथी कह रहे थे—"अब भूलकर भी उस तरफ रुख न करना।"

उस दिन के बाद से उनका सारा जोश ठंडा हो गया। मैंने भी मौन धारण कर लिया। कुछ दिन तक तो अपनी शरारत का लुत्फ उठाने की नियत से छेद से झाँकती भी थी। फिर यह भी धीरे-धीरे कम हो गया, और सारी बातें आई-गई हो गईं; लेकिन इतना जरूर था कि जब कभी सम्पूर्ण घटना का ध्यान आता, तो मन प्रसन्न हो जाता था कि मैंने भी खूब पाठ पढ़ाया। जैसा मैं कह चुकी हूँ कि सब बातें आई गई हो चुकी थीं। पाँच-छै महीने के बाद तो उनका विचार भी पुराना पड़ गया था कि एक नया गुल खिला।

दुर्भाग्य या सौभाग्य से मेरी शादी दो जगह लग कर छूट चुकी थी, और अब तीसरी जगह तै हुई थी। जिसके साथ तै हुई थी, वह अलीगढ़ में बी० ए० में पढ़ता था। अम्मा को जितनी फिक्र मेरी शादी की थी, उतनी शायद ही किसी की माँ को होगी। जब दो बार मेरी शादी तै होकर छूट गई थी, तो मैं देख चुकी थी कि उनका क्या हाल हुआ था। अब उनके रोने और परेशान होने से मुझे मालूम हुआ कि फिर कुछ दाल में काला है। दो बार वे सज्जन आये, जिनके द्वारा विवाह पक्का हो रहा था। बहुत देर तक बातें हुआ कीं। नतीजा भी बहुत जल्द साफ मालूम हो गया। नौकरानी के बड़बड़ाने से मुझे असलियत का ज्ञान हुआ। काम करते समय वह दबी जबान

लड़कों को बुरा-भला कहती जाती थी। लड़कों का जिक्र सुनकर मैं चौंक-सी पड़ी। मेरे विचार न मालूम कहाँ-से-कहाँ पहुँच गये। दिल बैठ सा गया और तबीयत ऐसी घबराई कि अपने कमरे में आकर, मुँह लपेटकर; खूब ही रोई; क्योंकि मैं समझ गई कि किस कारण से मेरा सम्बन्ध इस नई जगह से छूटा है। उस शरीर का गम्भीर-भाव से अपने साथियों से कहना कि मैं सख्त बदला लूँगा, इस तरह मेरे और लड़कों के कमरों का एक स्थान पर होना, और लड़कों की जबानें—ईश्वर उनकी शरारत से बचाये—सब बातें दिमाग में दौड़ गईं। शीघ्र ही लड़कों को कमरे से निकलवा दिया। इसी बीच नौकरानी ने बिना पूछे और बिना मुझे सम्बोधित किये हुए ही सब कुछ बता दिया। वास्तव में बात यह थी कि सब उन्हीं हजरत की कारस्तानी थी, जिन्हें मैंने बरेली से कटाया था। सौभाग्य या दुर्भाग्य से जिसके साथ मेरा सम्बन्ध पक्का हुआ था, वह कहीं इनके साथ बोर्डिङ्ग में रह चुका था। वह इनके पास आया या इनको कहीं मिला। इन्होंने मेरे बारे में उससे न मालूम क्या-क्या कह दिया। मेरी स्वच्छन्दता, निर्लज्जता और शरारत के काल्पनिक किस्से और न जाने क्या-क्या बातें कहीं, और इस तरह बरेली से कटाने का बदला लिया। उसने सब कुछ सुना होगा। क्या जाने वह मेरे नाम 'कोलतार' से भड़क गया हो। आखिर वह भी तो आदमी ही था। जब उसके मां-बाप ने बहुत जोर दिया, तब उसने साफ कह दिया कि बात यह है, और वह लड़की ठीक नहीं।

× × ×

मैं कह नहीं सकती कि इन सब बातों को सुनकर मेरा क्या हाल हुआ। मुझ पर इस लड़के ने व्यर्थ के लिए अन्याय किया था। इसका अन्दाज वही आसानी से लगा सकती है, जो

बेचारी असहाय हो, शरीफ हो, और रात दिन अपनी बेटी के विवाह की चिन्ता में रो-रोकर अपनी जान खो रही हो। अम्मा की यही दशा थी। रोते-रोते उनका बुरा हाल हो गया था। जब रोते रोते थक जाती थीं, तो ठंडी सांस लेकर कहती थीं—"ईश्वर की महिमा है कि मैंने अपने किरायेदारों को कोई कष्ट नहीं दिया। और उन्होंने मेरे साथ यह सलूक किया। शायद इसी दिन के लिए मेरा घर उजड़ा था।" यह कह कर फिर वे इस प्रकार रोती थीं कि घुट-घुट कर अपनी जान तबाह किये डालती थीं। मेरी यह दशा थी कि शर्म के मारे अम्मा से आँख न मिलाई जाती थी, यद्यपि वे जानती थीं कि मेरे ऊपर जो दोष लगाये गये हैं, वे बिलकुल झूठ हैं, और मैं बिलकुल निर्दोष हूँ। फिर भी मुझे लज्जा आती थी। अब मुझे और उन्हें—दोनों को यकीन हो गया कि अब मेरी शादी कहीं न हो सकेगी। मुझे वैसे अपनी शादी की रत्ती भर भी परवा न थी, लेकिन यह देख कर मेरा दिल फटा जाता था कि अम्मा इस शोक में अपने आपको बलिदान किये डालती हैं। बहुत शीघ्र ही घर नरक का नमूना बन गया। उधर वे दिन-रात रोती थीं और इधर मैं उनकी दुर्दशा देख देख कर रोती। दो दो वक्त खाना ही न पकता था। अम्मा से रसोई-दारिन पूछती कि क्या बनाऊँ, तो वे कह देतीं कि मुझे भूख नहीं, और मैं भी यही कह देती थी! इस प्रकार घर क्या था, स्थायी शोक-भवन सा बन रहा था, और उस पर भी भयंकर बात यह जान पड़ती थी कि अच्छाई के कोई लक्षण भी दिखाई न पड़ते थे।

मेरी सहेली या मिलने वाली कोई न थी सिवा एक जाहिदा के। वही मेरी दुख-दर्द बँटाने वाली और मन का भेद जानने वाली थी। दुर्भाग्य से वह भी उन दिनों दूसरे शहर में कोसों

दूर थी। अरसे से मैंने कोई चिट्ठी भी न लिखी थी। उसका एक पत्र आया था, जिसमें उसने मेरे विवाह की कुछ चर्चा की थी, और अपने विवाह की भी कुछ बात थी। उसके उत्तर में मैंने उसे एक लम्बा-चौड़ा दर्द भरा पत्र लिखा, जिसमें मैंने आदि से अन्त तक लड़कों की शरारत की कहानी विस्तार में लिख दी। अन्त में अपने दुःख का रोना रोया था किस तरह हमारे किरायेदार शरीर ने हम दोनों माँ बेटियों के जीवन को नरक बना दिया है। मेरी चिट्ठी मेरे शोक-भवन—घर—और शोकागार—हृदय—का प्रतिबिम्ब थी। मैंने उसे रो रोकर लिखा था, और लिख दिया था कि आँसू पोंछती जाती हूँ, और लिखती जाती हूँ।

इस बात को अधिक दिन न हुए थे कि अम्मा ने रो-रोकर अपने को बीमार डाल लिया। न खाती थीं; न पीती थीं। हरारत रहने लगी, तन सूख कर काँटा हो गया। चिन्ता और दुख में बीमारी ने यह हाल कर दिया कि जो देखता था, यही कहता था कि इन्हें तपेदिक हो गया। धीरे-धीरे बुखार ज्यादा रहने लगा। जब तबीयत अधिक खराब हुई, तो सबने दिल्ली जाने की सलाह दी। वे किसी तरह जाने को राजी नहीं थीं, मगर मेरे रोने-पीटने से वे राजी हो गईं। अपने एक रिश्ते के भाई को लेकर दिल्ली पहुँचीं। कुछ दिन तक दवा होती रही, मगर फायदा होने के बजाय हालत ज्यादा खराब होती गई। अब मुझे अम्मा कब्र में पैर लटकाये दीख पड़ती थीं। मैं यह भी जानती थी कि उनके बाद बहुत जल्द मेरा नम्बर आयेगा। एक ओर वे रोतीं, दूसरी ओर मैं। अब लज्जा भी उठ गई और मैं उनसे कहती कि आप नाहक मेरे लिए गम करती हैं; मगर यह सब व्यर्थ था। रह-रहकर वे उन्हीं हजरत को दुआएँ देती थीं, जिन्होंने मेरा लगा-लगाया विवाह छुड़ा दिया था। वे बार-बार कहतीं—"या अल्लाह!

चिट्ठी जाहिदा को लिखी थी—जिसका जिक्र पहले कर चुकी हूँ—उसकी नक़ल थी। मुझे बड़ा बुरा मालूम हो रहा था, क्योंकि मैं जानती, थी, जिसके हाथ मेरा बक्स लगेगा, वह सम्पूर्ण भेद, चित्र और पते तक से परिचित हो जायगा। मैं परेशान होकर रोने लगी। अम्मा भी मजबूर थीं। मामा जा चुके थे। लाचार होकर सब्र करना पड़ा।

[७]

बक्स का खोया जाना थोड़े दिन में पुरानी बात हो गई। न मालूम किसका था, जो मेरा पता जानकर भी फेरने और अपना वापस लेने नहीं आया! अम्मा की हालत बद से बदतर होती जाती थी। मामा ने डाक्टरों को दिखाया। उन्होंने यह निर्णय किया कि खाँसी नहीं है, यह खैरियत है। फिर भी तपेदिक होने का बड़ा खतरा है, इसलिए पहाड़ पर ले जाओ। बड़ी मुश्किल से अम्मा जाने को राजी हुईं; लेकिन असली बात यह है कि मुझे उनके बचने की बिलकुल उम्मेद न थी।

पहाड़ ऐसा सुन्दर स्थान भी हमको प्रसन्न न कर सका। सच है, जब दिल को चैन नहीं होता, तो दुनिया की कोई चीज अच्छी नहीं मालूम होती। अम्मा महीना भर में ही बिलकुल घबरा गईं। मैं रोके हुए थी नहीं तो कब की लौट आई होतीं। मगर दिल उचाट हो गया था, तबीयत खराब थी। मैं जानती थी कि बस, किसी दिन एक दम से अस्बाब बँधने लगेगा।

इसी बीच में एक विचित्र घटना हुई, जिससे सारी अवस्था एक दम बदल दी। बहुत संक्षेप में बयान करती हूँ। एक दिन मामा एक तार लाये। मैं खाना बना रही थी। मैंने तार देखा तो चूल्हा छोड़कर दौड़ी कि क्या मामला है। 'कैसा तार है?' मैंने दौड़ कर मामा से पूछा। अम्मा ने एक विचित्र सुर से कहा—"ऐ तुम जाओ, खाना देखो।' मैंने एक नजर अम्मा

चिट्ठी जाहिदा को लिखी थी—जिसका जिक्र पहले कर चुकी हूँ—उसकी नकल थी। मुझे बड़ा बुरा मालूम हो रहा था, क्योंकि मैं जानती थी, जिसके हाथ मेरा बक्स लगेगा, वह सम्पूर्ण भेद, चित्र और पते तक से परिचित हो जायगा। मैं परेशान होकर रोने लगी। अम्मा भी मजबूर थीं। मामा जा चुके थे। लाचार होकर सब्र करना पड़ा।

[७]

बक्स का खोया जाना थोड़े दिन में पुरानी बात हो गई। न मालूम किसका था, जो मेरा पता जानकर भी फेरने और अपना वापस लेने नहीं आया! अम्मा की हालत बद से बदतर होती जाती थी। मामा ने डाक्टरों को दिखाया। उन्होंने यह निर्णय किया कि खाँसी नहीं है, यह खैरियत है। फिर भी तपेदिक होने का बड़ा खतरा है, इसलिए पहाड़ पर ले जाओ। बड़ी मुश्किल से अम्मा जाने को राजी हुईं; लेकिन असली बात यह है कि मुझे उनके बचने की बिलकुल उम्मेद न थी।

पहाड़ ऐसा सुन्दर स्थान भी हमको प्रसन्न न कर सका। सच है, जब दिल को चैन नहीं होता, तो दुनिया की कोई चीज अच्छी नहीं मालूम होती। अम्मा महीना भर में ही बिलकुल घबरा गईं। मैं रोके हुए थी नहीं तो कब की लौट आई होतीं। मगर दिल उचाट हो गया था, तबीयत खराब थी। मैं जानती थी कि बस, किसी दिन एक दम से असबाब बंधने लगेगा।

इसी बीच में एक विचित्र घटना हुई, जिससे सारी अवस्था एक दम बदल दी। बहुत संक्षेप में बयान करती हूँ। एक दिन मामा एक तार लाये। मैं खाना बना रही थी। मैंने तार देखा तो चूल्हा छोड़कर दौड़ी कि क्या मामला है। 'क्या तार है?' मैंने दौड़ कर मामा से पूछा। अम्मा ने एक विचित्र सुर से कहा—"ऐ तुम जाओ, खाना देखो।' मैंने एक नजर अम्मा

को देखा, फिर मामा को। कुछ अजीब शुबहा-सा हुआ और लज्जित होकर चली आई। न मालूम क्या बातें हुईं। अम्मा खुश मालूम देती थीं। जल्दी से तार से तार का जवाब दिया गया। मैं चक्कर में थी कि क्या मामला है। क्या कहीं मगर तोबा कीजिये, कभी ऐसा खयाल भी नहीं आ सकता; मगर अम्मा का चेहरा ऐसा खुश था कि मुझे कुछ-कुछ यकीन-सा होने लगा, इसलिए शर्म के मारे उनसे कुछ पूछने की हिम्मत न पड़ी। कई तार दिये गये। दूसरे दिन भी कई तार आये गये। दूसरे ही दिन सब मामला मालूम हो गया। खुशी के मारे अम्मा मुझसे लिपट गईं और मुझे इस जोर से दबाया कि मैं घबरा गई। उनकी आँखें तर थीं, मेरा भी यही हाल था। "या अल्लाह! तेरा लाख-लाख शुक्र है। या अल्लाह! सब काम राजी-खुशी हो जाय।'—अम्मा ने आँसू पोंछते हुए कहा। मुझे मालूम हो गया कि मेरी शादी पक्की हो गई। असबाब बँधने लगा; लेकिन शादी किससे ते हुई है, उसका क्या नाम है, क्या करता है—यह सब बातें खुद अम्मा को भी नहीं मालूम थीं, मुझे क्या मालूम होतीं? बस, इतना ही मालूम था कि बरेली वाले चाचा के जरिये शादी ते हुई है, अतः यह निश्चित था कि उचित स्थान में ही हुई होगी।

अब मैं अम्मा को देखती थी और मन में कहती थी—'हे ईश्वर! यह क्या माजरा है! सिर्फ दो तीन तार आने-जाने से ही अम्मा की सारी मुर्दानी जाती रही।' वे मुझे लेकर घर के बजाय सीधे बरेली पहुँचीं। वहाँ मुझे अपनी चचेरी बहन से इतना मालूम हो सका कि जिससे मेरा विवाह निश्चित हुआ है, वह क्या करता है, कहाँ का रहने वाला है, किसका बेटा है। यह न मालूम हो सका कि विवाह एकाएक कैसे पक्का हो गया।

निश्चय हुआ कि विवाह यहीं चाचा के घर से और एक हफ्ते में ही हो जाय। यह चाचा मेरे पिता के चचेरे भाई थे, और बरेली में वकील थे। अम्मा का विचार था कि शादी फौरन हो जाय, क्योंकि उन्हें हरदम यही डर लगा रहता था कि कहीं गड़बड़ होकर फिर न छूट जाय, अतः यह तै हुआ कि यहीं से मेरी विदाई भी कर दी जाय। दहेज का कुछ प्रबन्ध करना ही न था, क्योंकि बँधे दहेज के स्थान में सब मकान, दूकानें आदि घर के सारे सामान सहित—यहाँ तक कि फूटे घड़े और झाड़ू से लेकर लोहे की तिजोरी तक—मेरे दहेज में शामिल थी। हाँ, विवाह का बहुत-सा सामान, जो बहुत दिनों से घर पर इकट्ठा कर रखा गया था, मामा के हाथ मँगवा लिया गया। अम्मा कहती थीं—'बस, एक ट्रङ्क और बिस्तर तो घर में मेरा है, बाकी सब कुछ मेरी बेटी का दहेज है।' शीघ्र ही मकान, दूकानें और घर के सामान की एक बड़ी सूची तैयार की गई, जिसमें सब चीजों का ब्यौरा था। वह यह सूची मेरे दहेज में देना निश्चित हुआ।

[८]

ईमान की बात यह है कि यदि किसी को मौत से बचने की खुशी हो सकती है, तो मुझको भी अपने विवाह की खुशी थी।

मुझे कोई बात न मालूम हो सकी, क्योंकि उस चचेरी बहन के सिवा घर में मेरी उम्र की कोई लड़की न थी, और वह चचेरी बहन मुझसे बहुत छोटी थी। सुना कि बारात बहुत सवेरे सी ही आई है। लेकिन ईश्वर जाने, कहाँ की स्त्रियाँ घर में फट पड़ीं। गाना-बजाना, गुल-गपाड़ा, उफ़! सक्षेप में यह कि चौथे दिन मेरा निकाह हो गया, और मैं विदा होकर दूल्हा वालों के यहाँ पहुँची।

रात का समय था। मुझे छत पर लाकर बिठाया गया

कपड़ों में लिपटी-लिपटाई बैठी थी। यद्यपि मौसम में थोड़ी ठंढक आ चुकी थी, मगर मुझे बड़ी गरमी लग रही थी। मैं नहीं कह सकती, कहाँ थी। चारों तरफ से स्त्रियाँ घेरे थीं, परन्तु वे अधिक न थीं। थोड़ी देर तक मेरी विचित्र हालत रही, क्योंकि स्त्रियाँ मेरा मुँह खोल-खोल कर देखती थीं, और तरह-तरह के रिमार्क पास करती थीं। इधर प्यास के मारे बुरा हाल था। ईश्वर को धन्यवाद है कि जल्दी-जल्दी में मैं विवाह की अनेक व्यर्थ रस्मों से बच गई, और यहाँ आकर तो मुझे किसी रस्म से पाला ही नहीं पड़ा। जब ज़रा हड़बोंग कम हुई, तो स्त्रियाँ एक-एक करके चली गईं। थोड़ी देर में सन्नाटा हो गया, और सिवा एक घर के नौकरानी के और कोई न रहा, तब मैंने अतिरिक्त चादरें अलग करके मुँह खोला।

मैं एक कमरे में थी। सामने के दरवाजे खुले थे। एक बाग दिखाई दे रहा था। बड़ी सुन्दर हवा आ रही थी। मैंने बिजली का पंखा बन्द कर दिया। नौकरानी ने ठण्डा पानी पिलाया। जी में थोड़ी ताजगी-सी आई। मैं एक दिन मसहरी पर बैठी थी। थकावट के कारण सिरहाने तकिया लगा लिया था। नौकरानी न जाने कहाँ-कहाँ की व्यर्थ की बातें कर रही थी, जिन्हें मैं सुन भी न रही थी। खाना आया, जिसे मैंने ज्यों का-त्यों फेर दिया। अब मैं निश्चिन्तता से तकिये के सहारे बैठ गई। आँखों के सामने बाग था, परन्तु विचार न जाने कहाँ थे। उस वक्त मुझे एक विचित्र प्रसन्नता हो रही थी। इस कारण नहीं कि मेरा विवाह हो गया, बल्कि इसलिए कि पिछले जीवन की सारी कटु घटनाएँ एक-एक करके सामने आ रही थीं, और अन्त में फल यह कि मैं यहाँ बैठी हूँ, जिसका मुझे या अम्मा को गुमान भी न था। कहाँ तो मौत सामने थी, कहाँ ईश्वर ने एकदम यह परिवर्तन कर दिया। मैं ईश्वर

की कृपा पर विचार कर रही थी कि किस प्रकार मेरा विवाह तीन जगह लगा और छूटा। होना था, तो इस प्रकार हुआ। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन विचारों की उधेड़ बुन में जब उन हजरत का ध्यान आता था, तो मेरी क्या दशा होती थी। घृणा के भाव सफलता से मिलकर एक विचित्र अवस्था उत्पन्न कर देते थे। ईश्वर को धन्यवाद है कि उसने उस शरीर को असफल और मुझे सफल किया।

मैं इन्हीं विचारों में मग्न थी कि ऊँघ गई। बहुत थोड़े समय में मैंने तरह-तरह के सपने देख डाले। कभी अपने आपको घर पर देखा; कभी देखा कि मैं छेद से उस दुष्ट को झाँक रही हूँ, कभी स्टेशन पर चिट्ठी डालने का दृश्य दिखाई दिया। रह-रहकर मैं यह देखती थी कि किस प्रकार ईश्वर ने मुझे सब विपत्तियों से छुड़ाया। एक-एक विपत्ति सामने आती थी, और प्रत्येक दृश्य के बाद उस दुष्ट के विरुद्ध, जिसने मेरा जीवन तबाह करने में कोई कसर न उठा रखी, घृणा बढ़ती जाती थी।

इसी सपने में देखते-देखते क्या देखती हूँ कि वही दुष्ट काली धारीदार सूट पहने खड़ा है, जैसा मैंने उसे आखिरी बार स्टेशन पर अपनी चाचा से बातें करते देखा था। एक दुष्टता-भरी मुसकराहट और तेज आँखों को, जो शरारत का कोई नई बात खोज रही थीं, मैंने दूर से देखा, और अत्यन्त घृणा के साथ मन-ही-मन कहा कि तुम मेरा कुछ न बिगाड़ सके। एकाएक क्या देखती हूँ कि ये शब्द उस शरीर ने सुन लिए, यद्यपि मैंने मन-ही-मन कहे थे। उसने मुझे बुरी तरह घूर कर कहा—"कोलतार, क्या कहा? क्या मैं कुछ नहीं कर सकता?"

"तुम कुछ नहीं कर सकते।"—मैंने कँपकँपाती हुई आवाज में बेहद गुस्से और घृणा से कहा—"तुम मेरा कुछ नहीं कर सकते!"

"ठहर तो जा, कोलतार!"—उसने अत्यन्त दुष्टता भरे स्वर में कहा। चेहरे से जान पड़ता था कि कोई शरारत दिमाग में है। मेरा यह हाल था कि यद्यपि यह सब स्वप्न की घटनाएँ थीं, लेकिन उस घृणा-योग्य शक्ल को देख कर मैं गुस्से से काँप रही थी।

इतने में नौकरानी ने मेरी बाँह पकड़ कर हिलाई, और न-जाने चुपके से क्या कहा। मैं चौंक-सी पड़ी, लेकिन समझ गई। झट से फिर उसी तरह ओढ़-लपेट कर घुटनों में मुँह छिपाकर बैठ गई।

मेरा दिल तेजी से धड़क रहा था। बड़ी देर तक इसी प्रकार बैठी रही। फिर मेरे दिमाग में वही विचार घिर आये और फिर वही घृणित मुह मेरे सामने था। रह रहकर मुझे इस व्यक्ति की काल्पनिक सूरत देखकर घृणा हो रही थी। उसकी प्रत्येक बात घृणित मालूम होती थी। उसने मेरी और अम्मा की जान लेने में कोई बात उठा न रखी थी, जब यह विचार आता, तो खून खौलने लगता।

मैं इन्हीं विचारों में थी कि किसी के कमरे में आने की आहट हुई। मैं मानों उछल पड़ी। फिर दिल धड़कने लगा। मैं समझ गई कि आनेवाला कौन है।

मैंने किसी की अपने पास आने की आहट सुनी। मेरा दिल बाँसों उछल रहा था और असह्य बेचैनी मालूम हुई। इतने में आगन्तुक ने मेरे कन्धे पर हाथ रखा..... कान के पास मुंह करके कहा—"कोलतार साहब, सला-मालेकुम!"

मेरे ऊपर बिजली-सी गिरी। मैं चौंक पड़ी। गनीमत हुई कि चीखी नहीं। सारे शरीर के रोंगटे खड़े हो गये और एक सनसनी-सी दौड़ गई।

जिस व्यक्ति के विचार मेरे मन में थे, जिसे अभी-अभी स्वप्नावस्था में देखा था और जिसके प्रति हद दरजे की घृणा के भाव मेरे सीने में उमड़ रहे थे, क्या यह वही नहीं है!… ………यह सुर, यह शरारत भरी आवाज मेरे लिए नई नहीं थी, मैं खूब जानती थी।

"क्या यह वही व्यक्ति है, जिसने मेरा और अम्मा का जीवन विष बना दिया था……हे ईश्वर! इससे तो अत्यन्त घृणा थी………! परन्तु अब!……… !"

पलक मारते ही उपर्युक्त विचार मेरे दिमाग में आये और गये। इसके पूर्व कि मैं इस विशाल परिवर्तन पर गौर करूँ, फिर उस अत्यन्त प्रिय व्यक्ति ने कहा—"अजी कोलतार साहब,……मिजाज शरीफ… वह बर्रों का छत्ता मेरे सारे मुँह पर लिपट गई थी……श्रीमान् कोलतार साहब,… अजी किराया ले जाइये……" गरज बहुत-कुछ कन्धा पकड़ कर मुझे हिलाया-डुलाया, परन्तु यहाँ जवाब नदारद।

परिवर्तन

ब्याह हर एक लड़की के लिए परिवर्तन है। परन्तु मेरे लिए तो वह एक विचित्र और महान् परिवर्तन साबित हुआ। वह मनुष्य जो मेरे ख्याल में मेरा जानी दुश्मन था और दुनियाँ में जिससे मुझे अधिक से अधिक घृणा हो सकती थी, पलक मारते मेरे लिए दुनिया में एक प्रियतम व्यक्ति हो जाय।

मुझे नहीं मालूम कि उससे इतनी हार्दिक घृणा कैसे आप ही आप जाती रही।

ससुराल के स्टेशन पर पहुँचते ही पहली बार एक कुली के मुँह से मौलाना शब्द सुनते ही मैं सन्नाटे में आ गई। स्टेशन से घर तक मोटर में मैं यही सोचती रही कि वास्तव में मैं क्या मुल्लानी हूँ। 'वल्लाह आलम' मैंने दिल में कहा, मौलवियों के घराने के खान्दानी मौलाना होंगे। मैं अपने कमरे में उतरी, चारों ओर मैंने देखा। मेरे आने के कारण कमरा जरूरत से ज्यादा सजाया गया था।

एक नजर से देखते ही मालूम होता था कि किसी विद्यार्थी का कमरा है। मैं इधर-उधर देख ही रही थी कि उस विचित्र मौलाना ने आकर और मेरा कन्धा हिलाकर मुस्कुराते हुए चुपके से मेरे कान में कहा "कोलतार साहब।"

मैंने सर उठा कर शायद प्रथम बार उनको अच्छी तरह देखा, मैंने गर्दन नीची कर ली कि फिर उन्होंने वही शब्द 'कोलतार साहब' दोहराया, जो पहले मेरे शरीर में आग सी लगा देता था और जिसने इस समय मुझको आनन्दमय कर दिया।

मैंने भी तुरन्त जैसे भी बन पड़ा उत्तर दिया—"मौलाना साहब।"

"यह कुछ नहीं" मौलाना ने कहा।

"वह भी कुछ नहीं" मैंने उत्तर दिया। परन्तु मौलाना का कहना ठीक था, क्योंकि मुझे बाद में तुरन्त ही मालूम हो गया कि हर एक मनुष्य जो सूट पर मुड़ा जूता या अचकन पर हैट लगाये या किताबें बगल में दबा कर कालिज की ओर मुँह करे, वह मौलाना पहले है और आदमी बाद में, इससे

कुछ बहस नहीं कि उसके डाढ़ी है या डाढ़ी-मूछों का सफाया किये है।

मेरा ब्याह मेरे लिए एक पहेली तो था ही; परन्तु वह पहेली अब हल हो चुकी थी। देहली से घर आने में रेल पर मेरा एक काला रङ्ग का सूट-केसनुमा ट्रंक बदल गया था। वह अब मिला। कमरे में एक तरफ के कोने की तरफ मौलाना ने उँगली उठा कर मुझे दिखाया। मैंने ज्योंही उसे खोला, तो अपनी सारी चीजें ज्यों की त्यों मौजूद पाई। हाँ, केवल तसवीर नदारद थी, जो अलबम में मिली। मौलाना की धरोहर अर्थात् उनके कपड़े इत्यादि मैं लखनऊ में किसी सन्दूक के कोने में छोड़ आई थी। साथ ही वह पत्र भी मिला, जो मैंने अपनी सखी ज़ाहिदा को मामा से रेल में से डलवाया था और जिसके किनारे पर लिख दिया था कि मेरा कातिल मेरे सामने खड़ा है। अब बुद्धि काम नहीं करती कि ज़ाहिदा को कैसे पत्र लिखूँ और वह क्या कहेगी कि मेरे होने वाले वर को इसने छीन लिया। मैंने इस पत्र को मौलाना से छीन कर फाड़ डाला।

तीसरे ही दिन का जिक्र है। मैं अपने कमरे में अकेली बैठी हुई था। मौलाना कालिज गये थे। मेरी समझ ही में न आता था कि मैं क्या करूँ। इतने में बराबर वाले कमरे से कुछ मनोरंजक वार्तालाप के शब्द सुनाई पड़े। मैंने दरवाजे ही में से चुपके से झांक के देखा कि एक बड़ी बीबी मेरी सास से कुछ रहस्यमयी बातें कर रही थीं:—

"..............दुलहिन जब ब्याह कर ससुराल आती है तो वहाँ वाले उसको एक अच्छा सा खिताब देते हैं। कहो, चाहे वह गरीब ही हो, परन्तु उसको बेगमाती खिताब देंगे परन्तु तुम्हारे यहाँ की रीत निराली है। दुलहिन ब्याह कर आई है तो इसे निगोड़ों ने 'धोकदार' का खिताब दिया। ना

बाबा, यह बातें तो हमने न कभी सुनी और न देखी। मुझे तो ख्याल सिर्फ इस बात का है कि संसार क्या कहेगा।'

मेरी सास ने कहा कि 'हाँ जी, मुझे भी ख्याल है कि संसार क्या कहेगा। खास कर उसके पिता माता सुनेंगे तो क्या कहेंगे और शायद सुन ही लिया होगा……।'

बात काट कर बड़ी बीबी पान खाते हुए नाक की फुनगी छूकर और सर मटका कर बोलीं—"बाप सुन लेगा तो निकाल देगा"……लिख रक्खो बहन। जो न निकाल दें तो मेरा नाम पलट कर रख देना। वह ऐसे ही हैं।" यह कह कर बड़ी बीबी ने आँखें निकाल कर ठोढ़ी से अपनी नाक फिर तेजी से छूकर चारपाई ही पर फिर इस तरह पैंतरा बदला कि जैसे वह खुद ही निकाल देंगी।

मेरी सास बड़ी बीबी के पैतरे पर निछावर होकर बोलीं—'यही तो मैं भी कहती हूँ। उसे न मेरी परवाह और न उस दादा का ख्याल और न यह आशङ्का कि कल को उसकी सास सुनेगी, तो क्या होगा। जब वह कहेंगी कि वाह बहन, मेरी समधिन ने एकलौती लड़की की खूब कद्र की है, तो भला मैं क्या मुँह दिखाऊँगी। यह मानती हूँ कि मेरी बहू का स्वभाव बहुत भला है। परन्तु बहन, यह कैसे सम्भव है कि वह मैके जाकर अपनी मां से यह न कहे कि ससुराल में मुझे कौलदार का खिताब मिला है।

बड़ी बीबी सर हिलाकर बोलीं—"बहू दिल में क्या कहती होगी? आखिर यह बात क्या है! वह कौलदार क्यों कहता है। क्या वह जोरू को पसन्द नहीं करता?"

सास जी ने मानो कुछ क्रोधित होकर कहा—'लो और सुनो। तुम्हें नहीं मालूम कि मैंने उसके ब्याह की बात एक बहुत बड़ी जगह भेजी थी। बातचीत तै हो चुकी थी। पर बर-

दिखावे में जाते-जाते वह लौट आया। फिर अपनी बड़ी चाची को बीच में डालकर ऐसा तूफान बरपा किया कि 'बस, चट मँगनी पट ब्याह।' पिता ने भी कहा कि ठीक है। उन्होंने तो छोड़ ही दिया है कि जो चाहे सो करे। बहन, मतलब यह है कि जब उसने अपने पसन्द की ब्याह किया है तब अब ना-पसन्दी काहे की·····।" सास जी बड़ी बीबी को ठोकर देकर धीरे से बोलीं—'बहन, देख लिया।' बड़ी बीबी ने यह सुनकर इस जोर से आँखें फाड़ी कि मैं तो यह समझी कि बस यह चलीं। उनका गोल-गोल मुख चूहे के बील की तरह निकल आया।

कुछ सम्हल कर बोलीं—"हैं! अपने पसन्द की जोरू! अपने पसन्द की जोरू! और तुमने कर लेने दी!!'· ···तुरन्त बात बदल कर बोलीं—"मगर बड़ी अच्छी और भोली लड़की है"·· ···मगर हाँ ·····तो अपने पसन्द की जोरू लाया तो फिर क्यों·····?"

सास जी बोलीं—"उँह" यह भी आजकल के लड़कों की अदा है कि जिसको चाहें, चोंचले में आकर उसी की गत बनावें और उल्टे सीधे नाम धरें। यही बात है और कोई वजह नहीं। सूरत-सकल तुमने देखी ही है। खासी अच्छी···गोरी चिट्टी··· चाँद का-सा टुकड़ा है।"

मेरी तारीफ में सास जी का यह रिमार्क मेरे लिए उनके प्रेम का एक अच्छा नमूना था। मैं तो इस काबिल न थी। कहाँ चाँद और कहाँ मैं। चाँद तो वास्तव में पृथ्वी से बहुत दूर है।

बड़ी बीबी ने एक विचित्र प्रकार से मानों रोते हुए कहा—"बड़ी प्यारी सूरत भोली-भाली बच्ची है।"

मैं इस वार्तालाप के सुनने में तन्मय थी कि 'कोलनार साहब' का शब्द सुनाई पड़ा। मैं एक दम से चौक-सी पड़ी।

मौलाना कालिज के बेवक्त आ गये थे। मैंने जो मुड़ कर देखा तो उन्होंने मेरी ओर एक पत्र फेंक कर कहा—'यह लो।'

पत्र मैंने हाथ में ले लिया। परन्तु उसको पढ़ने की जगह मैं कोलतार शब्द के उच्चारण की खूबसूरती पर गौर कर रही थी। कितना प्यारा शब्द है 'कोल···तार' मैंने दिल में कहा कि किस प्रकार यह शब्द सुनते ही दिल में गड़कर रह जाता है। क्या संसार के तमाम आनन्द-प्रद और सुन्दर गाने इस शब्द के अन्तर्गत नहीं हैं? अगर सितार के किसी तार को मिजराब से छेड़ा जाय, तो क्या यही शब्द झन्नाटे के साथ हवा में नहीं तैरता फिरेगा। अथवा हारमोनियम के हर पर्दा से यही शब्द 'कोलतार' क्या नहीं निकलता? कभी ध्यान दीजियेगा कि हारमोनियम के शब्द की अन्तिम स्वांस वास्तव में यही शब्द है 'कोल·····तार·····र र र र र।"

खैर यह तो बात की बात थी, अब किस्सा सुनिये। मैंने पत्र ले लिया और प्रथम इसके कि कुछ कहूँ, दादी अम्मा तुरंत दरवाजे से खटके के साथ भीतर आईं। मैंने मुड़ कर देखा तो उनके कन्धे के बाईं ओर सास जी का सर था और उससे पूर्व की ओर उन्हीं बड़ी बीबी की हिलती हुए ठोढ़ी थी, जो इस समय सिंगर मशीन के सटल की तरह नाक के फुनङ्ग की ओर बराबर हिल रही थी।

दादी अम्मा ने मौलाना की ओर हाथ उठाकर कहा—"यदि अब की मैंने यह सुना तो याद रखिये कि मारे तमाचों के मुँह तोड़ दूँगी।"

पोते साहब अपनी दादी को बहुत प्यारे थे और शायद इसी कारण जरूरत से ज्यादा गुस्ताखी से दादी को भी तख्तए मश्क बनाने से न चूकते थे। समझ गये कि दादी अम्मा ने

कोलतार का शब्द सुन लिया परन्तु बड़ी ही सरलता से उन्होंने पूछा—"क्या सुना ?"

दादी अम्मा ने हाथ झटक कर कहा—"यही यही ?"

मौलाना ने दादी अम्मा से पूछा—"क्या यही ?"

उनका मतलब था कि दादी अम्मा भी कोलतार शब्द को दुहराएँ।

दादी अम्मा ने कुछ सिटपिटा कर कहा—यही, जो तू कहता रहता है।

मौलाना ने जोर देकर पूछा—"आखिर क्या कहता रहता हूँ, मालूम तो हो, कुछ बताइये तो सही ?"

दादी अम्मा की अवस्था देखकर हँसी आती थी। उनको कुछ तो झुँझलाहट आई और कुछ आई हँसी। आव देखा न ताव, उनके ऊपर एकदम से आक्रमण किया। एक दो तीन हाथ ऐसे दिये कि वहाँ तो क्या चोट लगी होगी मगर स्वयम् अपना हाथ पकड़ कर बैठ गईं और इधर मौलाना ने फिर उनका पीछा किया कि 'आखिर कुछ तो बताइये कि वह कौन-सा शब्द है जो मैं न कहा करूँ।' परन्तु दादी अम्मा को न बताना था, न उन्होंने बताया।

मेरी सास जी शायद मुझे सुनाने को और अपनी पोजीशन साफ करने के लिए उन्हें बैठकर समझाने लगीं—"बेटा, यह बदतमीजी है ·····बदतहजीबी है·····नाम पड़ जायगा····· बहुत बुरी बात है·····बड़े शर्म की बात है·····जो सुनेगा, नाम धरेगा और·····फिर·····नाम पड़ जायगा·····गजब हो जायगा, इत्यादि-इत्यादि।"

दादी अम्मा ने बजाय लेक्चर देने के भला बुरा कहना शुरू किया। कहने लगीं, यदि अब की मैंने सुना तो जबान

काट लूँगी·····हूँ·····लो और सुनो·····आया वहाँ से··· बदतमीज·····कमीना कहीं का।'

बड़ी बीबी, जो अब तक चुप थीं और अपनी ठोढ़ी को तेजी से उठक-बैठक करा रही थीं, सर हिलाकर बोलीं—"ना बेटा, ·····बुरी बात है।" दादी अम्मा ने चलते-चलते मुझसे कहा —'अबकी जो यह कहे तो मुझसे कहना।' फिर मेरा कन्धा हिलाकर दुबारा कहा—'मुझसे कहना·····जरूर।'

मैंने लाचार होकर कहा—'बहुत अच्छा·····जरूर।'

जब कोई न रहा तो मैंने तन कर मौलाना से कहा— "खबरदार, जो तुमने मुझे अबको कोलतार-ओलतार कहा। ·····दादी अम्मा से कह दूँगी। यह आखिर तुमको हो क्या गया है? सब के सामने कहते हो·····आखिर इससे क्या लाभ? यह बातें हो ही रही थीं कि कुछ इस प्रकार के मेहमान आ गये कि मौलाना कमरे से निकल गये।

आने वाली बीबी मुझे देख-भालकर सास जी की ओर चली गईं। परन्तु अपनी बहू को छोड़ गईं और उनसे मेरी भेंट हुई। मुझसे बड़े प्रेम से मिली। सांवला रंग था। बहुत सुन्दर और चमकदार आँखें थीं। अति आकर्षक और शोषक दृष्टि थी और उनका चेहरा बड़ा नमकीन था। परन्तु चेहरे पर एक विचित्र प्रकार की उदासी छाई हुई थी। बातचीत के ढङ्ग में दर्द की एक कसक सी थी। बहुत स्वच्छ और पवित्र वस्त्र पहने हुए थीं। परन्तु एक ही नजर से मालूम होता था कि इनके दिल के अन्दर एक चोट लगी है। मेरी हमउमर थीं। शायद मुश्किल से दो चार साल बड़ी होंगी। वैसे तो घुलमिल के बातें कीं; परन्तु जहाँ उनके मियाँ का जिक्र आया और मैंने हाल-चाल पूछा, तो कुछ टाल सी गईं। पहली भेंट थी इस कारण मैंने भी कुछ अधिक न पूछा। इतने में उनकी सास

मेरी सास जी के साथ आ गईं। दो एक इधर-उधर की बातें करके मेरी सास ने उनके मियाँ का किस्सा छेड़ा और उनकी सास साहिबा से हाल पूछने लगीं।

उन्होंने कहा 'क्या बताऊँ, यही हाल है·····किसी तरह सीधे रास्ते पर नहीं आते।' यह कह कर खातून (उनकी बहू) की ओर देखा और जान बूझ कर दूसरा जिक्र छेड़ दिया। मेरी सास भी शायद समझ गईं, क्योंकि उन्होंने देखा कि खातून भी इन बातों में तन्मय हो गई।

भोजन का समय आया तो मैंने और खातून ने एक साथ भोजन किया। उस समय मेरी हिम्मत पड़ी और मैंने उनसे उनके मियाँ के बारे में पूछा। मेरे प्रश्न से वह एक दम से गुमसुम-सी हो गईं। मेरी ओर एक विचित्र भोलेपन से देखने लगीं। मुझे उन पर बड़ा तरस आया। कहने लगीं—क्या बताऊँ बहन, मेरा किस्सा खुदा किसी को न सुनवाए।" जब मैंने उनकी ओर आवश्यकता से ज्यादा सहानुभूति प्रकट की, तब उन्होंने सारांश में यह किस्सा सुनाया—

"मियाँ की लड़ाई से छुट्टी नहीं। रात-दिन बुरी बातों में रहते हैं। जब ब्याह करके ले गये थे, तब तो दो एक माह तक तो कुछ सुहाग रहा। फिर इसके बाद वह जिल्लत और वह गत बनाई कि खुदा की पनाह। बड़े मकान ही से मिला हुआ छोटा मकान है। उसी में अकेली पड़ी घुलती रहती हूँ। यही भाग्य में बदा मालूम होता है। मियाँ को घर में आने की कसम है। दिन रात बाहर ही रहते हैं। रसद नौकर अलहदा हैं। केवल खाना घर से मिलता है और जेब खर्च को २०) मासिक मिलते हैं, जिसमें से मुझे एक कौड़ी नहीं मिलती। माँ का यह हाल है कि बेटे को सैकड़ों क्या, हजारों रुपये चुपके से दे देती हैं। पाँच-पाँच हजार रुपये की गिन्नियाँ चुपके से चुका देती हैं।

दो ढाई सौ रुपये मासिक तो वेश्याएं ले जाती हैं। मेरे भाग्य में सुख न सास से लिखा है और न मियाँ से। कभी कभी घर में किसी काम से आये भी, तो तेजी से निकले चले गये। कुछ समय बीता, मेरे भाग का दस हजार नगद रुपये मेरे पिता जी ने बैङ्क में जमा कर दिया था, वह भी उन्होंने ले लिया·····।'

मैंने कहा—"अरे, वह कैसे ले लिया।"

वह मुस्कराकर बोलीं—"कैसे ले लिया। ले लिया कि लाओ।

मैंने कहा—"बैंक का रुपया तो तुम्हारे हस्ताक्षर बगैर निकल ही न सकता था। फिर कैसे ले लिया?"

"मुझ से हस्ताक्षर करवा लिये, बल्कि स्वयं मैंने ही कर दिये।"

"जबरदस्ती दिये या स्वयम् अपनी खुशी से।"

हँसकर बोली—"बहन, उन्होंने जबर्दस्ती तो नहीं की। तीन महीने से मुझसे बातचीत न की थी। एक दिन आये और मुझसे कहा—"हस्ताक्षर कर दो·····।"

मैंने कहा—"और आपने कर दिये?"

वह मुस्कराकर बोलीं—हाँ, मैंने कर दिये। जिसके कारण मेरे पिता-माता मुझसे आज तक गुस्सा हैं। उनसे वादा किया था कि बगैर उनसे पूछे रुपया कभी न निकलवाऊँगी।"

"फिर क्यों दस्तखत कर दिये?"

"अपनी खुशी से कर दिये। क्या मना कर देती?"

"और क्या, अवश्य मना कर देना चाहिए।"

"मैं मना कर देती तो, तो वह और भी ज्यादा खफा हो जाते और वह मुझे मंजूर न था। मैंने तो इसलिए हस्ताक्षर कर दिये कि मुझसे प्रसन्न हो जायँगे।"

"फिर प्रसन्न हुए भी या नहीं।"

"आज सात महीने पूरे बीत गये जब मैंने रुपया दिया था, उस दिन से बिल्कुल सूरत तक नहीं दिखाई है।"

मैंने पूछा—"तो बिलकुल ही नहीं आते ?"

खातून ने उत्तर दिया—"कि आना तो दूर रहा, वह देखने में भी नहीं आते।"

"फिर·····फिर आप क्या करती हैं ·····?"

"कुछ नहीं, घर में दिन-रात पड़ी रहती हूँ, अपने मैके भी नहीं जाती।"

"जब आप को बिलकुल छोड़ रखा है तो आप अपने मैके क्यों नहीं चली जातीं ?"

"मैका दूर ही कौन-सा है, मगर मैं तो कहीं नहीं आती-जाती। बस पड़ी रहती हूँ। महीनों इसी प्रकार पड़े-पड़े बीत जाते हैं। सुना है, आज-कल वेश्या को लेकर कहीं बाहर सैर करने गये हैं, न मालूम कहाँ गये हुए हैं और कब आयेंगे।"

मैंने पूछा—'क्या! कहीं बाहर गये हैं ?'

'जी हाँ, बाहर ही गये हैं। किसी मेला तमाशा में गये होंगे, क्या मालूम कहाँ-कहाँ जायँगे ?'

मैंने फिर जोर देकर पूछा—'जब आप जानती थीं कि सब वेश्याओं को खिला-पिला कर बराबर कर देंगे, तो आपने रुपया क्यों दे दिया ?'

वह बोली—'फिर और क्या करती, मुझसे माँगा ही ऐसे था।'

'कैसे ?'

'ऐसे माँगा कि बहुत दिन से अन्दर नहीं आये थे। एक दिन आये और बैठ गये। जो मुझसे कभी बात तक न करते थे, कहने लगे—'एक बात कहें तुम से, मान जाओगी ?' बस

मैं क्या बताऊँ मुझे कितना दुख हुआ। मैंने कहा—कोई ऐसी भी बात हो सकती है जो आप कहें और मैं न मानूँ। आप शौक से कहें ?' ऐ बहन, इतना कहना था कि मुझसे कहा यह कागज लो और इस पर हस्ताक्षर कर दो।'

मैं कागज देखकर देखती की देखती रह गई, सन्नाटे में आ गई और चुप हो गर्दन नीची कर ली। मुझसे पूछा "नहीं करोगी !·····नहीं करोगी ?"

मैंने एक मतबा सर ऊपर करके देखा और फिर चुप हो रही। बस उठ कर चलने लगे कि 'मत करो' मैं मानों एकदम से चौंक पड़ी और परेशान होकर मैंने कहा—'लाइए, लाइए कर दूँ। वह बोले 'रहने दो, न करो।' यह कह कर जाने लगे। मैंने लपक कर हाथ पकड़ लिया और मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े·····"

मैंने परेशान होकर कहा—"अरे ! अरे !" क्योंकि बात करते-करते खातून की आवाज घुट गई और एकदम से उन्होंने मुँह छिपा लिया। वह रो रही थीं। जल्दी से उन्होंने आँखें पोंछ डालीं। भोजन हो चुका था। मेरी और उनकी दोनों की सास भी आ गईं और अब खातून इस प्रकार हँस-हँस कर बातें कर रही थीं, मानों कुछ हुआ ही नहीं।

तीसरे पहर के वक्त वह चली गईं। मुझसे आने का वादा लिया। शाम को मौलाना से और विस्तार-पूर्वक हाल मालूम हुआ कि खातून के पति पहले दर्जे के गुण्डे और रण्डीबाज हैं। रुपये पैसे की कमी नहीं। अपनी बैठक में बैठे रण्डियों से ताश खेलते रहते हैं। न किसी की हया न शरम और पत्नी मकड़ी की तरह मुँह किये बैठी रहती है। उससे उनका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहा। बिल्कुल छोड़ दिया है।

मैंने इस गरीब स्त्री की अवस्था पर ध्यान दिया। परमात्मा ने उसे सब कुछ दिया है; परन्तु केवल कफ मनुष्य की नालायकी ने उसका संसार सूना कर रखा है।

हाँ, उस पत्र में जो मौलाना ने दिया था, कोई विशेष बात नहीं थी। वह तो केवल एक मीलाद शरीफ का बुलावा था।

मिलाद शरीफ

मैं ठीक पाँच बजे मीलाद शरीफ के मजलिस में पहुँची। मेजबान साहबा मुसकुराती हुई उठीं और मुझसे बोलीं—'बेटी, तुम्हारी सास नहीं आईं!' मैंने कहा—"खाला, मैं अकेली ही आई हूँ। सास जी की कुछ तबियत ढीली थी। उन्होंने कहा कि यदि सर की पीड़ा कम हुई, तो ठीक समय पर पहुँच जाऊँगी।"

बड़े प्रेम से उन्होंने ले जाकर मुझे बरामदे में बैठाया। बड़ी-बूढ़ियों का एक जमघट-सा था। मैंने सलाम किया और मैं बैठने लगी, तो उन्होंने कहा—'तुम इधर आओ' और यह कहकर मुझे कमरे के द्वार के पास ही बैठाल दिया। इसके पास ही मेरी समवयस्क लड़कियाँ बैठी थीं, परन्तु इनमें से किसी से मेरा परिचय न था।

मैं बैठी ही थी कि एक बीबी ने मुझे घूर कर देखा। बराबर वाली से कुछ पूछा, फिर सर हिला कर मेरी ओर कुछ क्रोध से देखा कि इतने में बराबर वाली एक लड़की ने मेरे कान में न जाने क्या कहा कि वही बीबी बोलीं—'बेटी, अल्लाह रक्खे तुम नई दुलहिन हो, तुम्हारे भी वही हड़बोंगों के ऐसे ढङ्ग हो गये। खरबूजा को देख कर खरबूजा रङ्ग पकड़ता है। न नाक में

नथ, न कान में पत्ता। बस तिरछी माँग में सिन्दूर छिड़क के दुलहिन बन गईं।"

मैं इस बेतुकी बात पर कुछ धक-सी रह गई और मुझे इस आक्षेप पर बड़ी झेंप-सी मालूम दी और क्रोध भी आया परन्तु अब उन्होंने सब पर चोट की। बराबर वाली बीबी को सम्बोधित करके कहा—"ऐ बुआ, देखना सब की सब ब्याही बिन ब्याही डंडा ऐसा हाथ लिये बैठी हैं। आखिर इनके यह क्या लच्छन हैं।"

[२]

इन बीबी के दो ही तीन छींटों का यह प्रभाव हुआ कि लड़कियाँ कमरे में और भीतर को सरकीं और धीरे-धीरे सरक कर दूर हो गईं। मैंने थोड़ी ही देर बाद मुड़ कर जो देखा, तो मैं अकेली थी। इस कमरे से लड़कियाँ निकल कर दूसरे कमरे में जा पहुँची थीं। जिसके द्वारपर वही लड़की खड़ी थी जो मेरे पास बैठी था। मुझे देख कर उसने मुस्करा कर हाथ के संकेत से बुलाया। मैं यहाँ जकड़ी तो बैठी ही थी, इधर उधर देखा और नजर बचाकर चुपके से मैं भी सरक गई।

कमरे में जो पहुँची तो एक ओर क्या देखती हूँ कि तीन चार लड़कियों का मारे हँसी के दम निकला जा रहा है। इतने में जिस तरफ से मैं आई था उसी तरफ से एक और साहबा आईं। बिना मुझे देखे हुए वह एक दम से हँसने वालियों की तरफ आकर्षित हुईं। हँसी का कारण पूछा गया तो मालूम हुआ कि कुछ नहीं, केवल एक बहन के भावी पति के डाढ़ी है, अतः उसी बहन से सब लोग हँसी कर रही थीं और वही इस तमाम हँसी का केन्द्र बनी हुई थी। बेचारी से कुछ उत्तर ही न बन पड़ता था कि यह नवागंतुका इस बिचारी पर पिल ही तो पड़ीं।

पीठ पर एक दोहत्तर मार कर बोलीं—"मुझे क्या खबर थी कमबख्त कि तू डाढ़ियों पर जान देती है! मेरे मुहल्ले का मौलवी लंडूरा ही घूम रहा है। तेरे मियाँ से चौगुनी लम्बी डाढ़ी है, जब चाहियो तब नाप लीजियो·····और फिर···।"

इतने में जिन्होंने मुझे हाथ के संकेत से बुलाया था, उन्होंने दौड़ कर उनका मुँह बन्द किया और पकड़ कर मेरा उनसे परिचय कराया। मैंने उन्हें ध्यान से देखा। गुलाबी साटन की सलवार और उसी रङ्ग का सुन्दर गला खुला जम्पर पहने थीं। सूरत-शक्ल खूब चमकीली, अच्छी गोरी चिट्टी चमकदार आँखें, हँसी में सर से पैर तक मानों बर्मी हुई थीं। आँखों से चपलता प्रकट होती थी और स्वास्थ्य ने चेहरे पर वह निखार पैदा किया था कि पान जो खाये हुए थीं तो मालूम होता था कि चेहरा मानों दहक रहा है। इन चपल और चंचल बहन का नाम 'शाहदा' था। मुझसे हाथ मिलाया और परिचय होते ही उनका चेहरा एकदम से शरारत से दमक उठा। हाथ छुड़ाकर बोलीं—"ए लो बहन, तुम से मिलने को तो बन्दो फड़क रही थी! ऐ तुम्हीं हो ना—उस "फलाता" की जोरू! ऐ तुम्हीं कोलतार हो ना?·····।' मैं हक्का-बक्का रह गई, कि लड़कियों को सम्बोधित करके वह फिर बोलीं "अरी कम्बख्तो·····अरी कम्बख्तो, इस दढ़ियल पर झड़ू फेरो। आग लगे कम्बख्त जोगी की डाढ़ को। अरी इन्हें देखो, इन्हें!!" यह कह कर दो तीन को, मेरे सामने ला खड़ा किया और कहा—"कम्बख्तो, इन्हें देखो। इन बेचारों के करम फूट गये। वह पागल 'लंतफा' इन्हें पकड़ लाया और कुछ नहीं तो इनका नाम 'कोलतार' रख दिया। इस पर एक कहकहा लगा। मैं कुछ झेंपी-सी घबड़ाई-सी खड़ी मुस्करा रही थी कि मुझे 'शाहदा' ने गले से लगा कर चुमकार कर कहा—

"न बहन रोओ मत। उसे दूर मार। हम तेरा दूसरा कर देंगे, इस पर और कहकहा लगा।"

अब मैं एक तमाशा बना दी गई। मैंने यह तेजी भला कभी काहे को देखी थी। दिल में कह रही थी कि यह लड़की एक अजब तमाशा है कि इतने ही में एक और श्रीमती जी आगईं। उनके बाल कटे हुए थे। कोई सोलह-सत्रह साल की उम्र थी। दुपट्टा गुलूबन्द की तरह गले में हार था। बहुत ही नाजुक चश्मा लगाये हुए थीं, बड़ी सुन्दर थीं और इस सुंदरता से उनके गुलाबी गालों पर पाउडर चमक रहा था कि मैं उनको देखते की देखते रह गई।

उनके आते ही शाहिदा मुझे छोड़कर इन पर झुक पड़ी।

"ए लो! यह जिमवाली भी आईं।" यह कह कर शाहिदा ने एक हाथ जिमवाली के कन्धे पर रखा और दूसरा मेरे कन्धे पर और हम दोनों को घसीट कर मानो लड़ा दिया और कहा—"तुम दोनों खूब मिल के रोओ।"

जिमवाली झटक कर अलाहिदा हो गई और बोली—"यह क्या बदतमीजी?"

शाहिदा ने कहा—'तुम दोनों मिल कर रोओ इसलिए कि (मेरी ओर संकेत करके) तुम्हारा पति पागल है, (फिर उनकी ओर संकेत करके) और तुम इसलिए कि बुआ तुम्हारा मियाँ काना है!' इस पर एक कहकहा लगा।

जिमवाला चटक कर बोली—'चल दूर हो! आई वहाँ से पटवारी की चहेती कहीं की।'

इस पर भी एक कहकहा लगा। मालूम हुआ कि जिन महाशय के साथ शाहिदा का विवाह तय हुआ है, उन्होंने पटवारियों की शिक्षा के लिए कोई पुस्तक लिखी है।

इतने में आँगन की ओर से कुछ आवाजें-सी आईं। शाहिदा दौड़ कर कमरे में गई और बिजली की तरह वापस आई।

उसने कहा—'अरी कमबख्तो, वह जैबुन चच्ची चिल्ला रही हैं।'

यह कह कर जल्दी-जल्दी अपनी रूमाल गले में बाँध के खुला हुआ गला बन्द किया और फिर ऐसी जल्दी से सर ठीक कर लिया कि मैं देखती की देखती ही रह गई और फिर दूसरी ओर ऐसी भागी कि बस गायब ही हो गई।

जिमवाली बोली—'देखा तुमने इस शोहदिन को। जैबुन चच्ची चिल्ला रही हैं। अब उनके पास ढोंग बना के गई है। वह सबसे अधिक इसी अभागिन से सन्तुष्ट रहती हैं।'

शाहिदा टेढ़ी माँग को सीधी कर गई था, यहाँ फिर उसी प्रकार गप्पें उड़ने लगीं। यह जिमवाली भी अब उन्हीं बहन पर पिल पड़ी, जिनका ब्याह किसी डाढ़ी वाले से होना निश्चित हुआ था।

[३]

यह बमचख हो ही रही थी कि उन बड़ी बीबी को; जिन्होंने मेरे ऊपर आक्षेप किया था, अर्थात जैबुन चच्ची को लेकर शाहिदा कमरे में आई और परदा उठाकर कहा—'यह देखिए चच्ची.....यह हो रहा है।' जैबुन चच्ची फैशन की तो शत्रु थी हीं। उन्होंने जो यह धमाचौकड़ी देखी, तो वह आग हो गईं। कोई पचास-साठ की उम्र, पुराने चाल-ढाल की और बड़े कटु स्वभाव की स्त्री थीं। भवें टेढी करके बोलीं 'निर्लज्ज बेहयाओ, गजब खुदा का कि मीलाद शरीफ में आई हो और यह हड़बोंग। लड़कियाँ हैं कि घोड़ा, न बाप का लिहाज, न माँ की शरम, न बुजुर्गी का अदब, न मेजबान

का ख्याल। भाड़ में जाय यह छुटापा। खड़ी हँस रही है, ही ! हो ! ही ! ही !!'

शाहिदा ने जिमवाली का दुपट्टा खिसका कर और बाल कटा-सा दिखला कर कहा और 'इन्हें देखिए चच्ची।'

जैबुन चच्ची बोलीं—'मुई लौंडा कहीं की, शरम नहीं आती। मेहमान बन कर आई हो। कुछ काम करती। मेजबान का हाथ बँटाती। देखो शाहिदा भी तो लड़की है। जब से आई अपना टाँगें तोड़ रही है। चलो यहाँ से। सब की सब हँसती हुई फुर से हो गईं। मैं अलग हो गई।

शाहिदा सब पर खफगी डलवा के चची को लेकर वापस हुई। आगे आगे चची और पीछे-पीछे शाहिदा पंजों के बल नाचती कूदती थिरकती चची की नकल करती चली। मेरा मारे हँसी के बुरा हाल था। बरामदे से ज्यों ही निकली और लड़कियों ने जो चची के पीछे शरीर शाहिदा को उनकी नकल बनाते देखा तो सब का मारे हँसी के बुरा हाल था और झट से लपक कर शाहिदा ने चची से कहा—'देखा आपने, यह जीनत कैसी आपको देख कर हंस रही है ?'

चची अप्रसन्न हो कर बोलीं—'जीनत, याद रखियो कि एक दिन तेरी हड्डी तोड़ दूँगी। लो और सुनो ! बड़ी बूढ़ियों पर हँसती-हँसाती है।'

'हाँ चच्ची' शाहिदा बोली 'यह सब इन्हीं की करतूत है।'

जल्दी जल्दी लड़कियाँ और बड़ी बूढ़ियाँ सब आंगन में पहुँचीं। लम्बे चौड़े आंगन में इस सिर से उस सिर तक दस्तरख्वान लगा हुआ था। वास्तव में लड़कियों ने बड़ी ज्यादती की थी कि मेजबान की कुछ भी सहायता न की। हालांकि इसकी जरूरत ही न थी, क्योंकि दर्जनों लड़कियाँ और

नौकरानियाँ तमीज से दस्तरख्वान चुन रही थीं। दस्तरख्वान पर अँग्रेजी मिठाइयाँ, हिन्दुस्तानी केक, चाकलेट और फलों के अतिरिक्त दही बड़े, दाल-मोट और दूसरे खाद्य पदार्थों की भर-मार थी। कहने को तो चाय थी परन्तु यहाँ पूरे पेट भरने की सामग्री थी। बीवियाँ बैठना शुरू हुईं, परन्तु जैबुन चच्ची को अब भी बड़बड़ाने से फुरसत न थी। वह इस समय लड़कियों के खुले गलों और आधी आस्तीनों और ऊँचे-ऊँचे जम्परों की खिल्ली उड़ा रही थीं और एक-एक को नाम धर-धर के रगेद रही थीं। लड़कियाँ लड़कियाँ एक-एक जगह थीं। जिमवाली मेरे दाहिने हाथ की ओर बैठीं और बहन जीनत बाएँ हाथ की ओर, और सामने वह नीली नीली आँखों वाली, जिनके भावी पति के दाढ़ी थी। शाहिदा प्रबन्धकर्ता बनी हुई थी और जैबुन चच्ची को प्रसन्न करने के लिए बादाम के छोटे-छोटे केक उनके आगे ढेर के ढेर लाकर रख दिये। फिर घायदानी लेकर इधर-से-उधर सारे मेहमानों को चाय पर चाय परोसने लगी।

यहाँ लड़कियों का यह हाल कि जैबुन चच्ची के जल्दी-जल्दी खाने पर रिमार्क कस के आपस हँस रही थीं। एक ने कहा कि बुढ़िया का कल्ला बोलने से अधिक खाने में चलता है। दूसरी बोली-'बुढ़िया घर से चूरन खाके आई है।' तीसरी बोली—'ओ बहन देखो, दालमोट के फाँके के फाँके लगा रही है।' चौथी बोली—'जैबुन चच्ची को देखो कि किस सफाई से खाने की जगह समोचा केक पी रही है, इत्यादि। चंचल शाहिदा ने न जाने क्या हम लोगों के विरुद्ध जैबुन चच्ची के कान में कह दिया कि वह बोला, 'हँसती क्यों हो'—और फिर उन्होंने वह घूर-घूर के लड़कियों को मल्लाही सुनाना शुरू किया कि और भी हम सब को हँसी आ गई। उन्होंने सब लड़कियों की बुराइयाँ गिनवाने की कसम खाई थी और वह

जोरों में हम सब को झाड़ रही थीं कि चंचल शाहिदा को नई बात सूझी। उसने हम लोगों के कान में आकर कहा—'देखो अभी इस कतरनी की खबर लेती हूँ, यह कह कर वह फिर उनकी ओर पहुँची। हम सबने देखा कि शाहिदा ने चची से कहा—'चची, चाय लीजिये' उन्होंने इनकार किया तो वह बोली 'चची हमारी खातिर से बस एक प्याली ?' चची हम लोगों को झाड़ने में लगी थीं और बराबर वालों को एक-एक की बुराइयाँ गिना रही थीं। उधर शाहिदा ने उनकी प्याली हाथ में लेकर ठीक उनके सरके सीध में करने उसमें चाय उड़ेलना शुरू किया। चाय भर गई और बह कर तश्तरी में गिरी; परन्तु शाहिदा ने और चाय उड़ेली। यहाँ तक कि खौलती हुई चाय बह बहकर जैबुन चचा के गर्दन और सर पर गिरी। 'अरे' कह कर शाहिदा ने शायद और गिरा दी कि जैबुन चच्ची फाँद ही तो पड़ीं। इधर उनका तिलमिलाकर कूदना और उधर हम सब का मारे हँसी के बेहाल होना। शाहिदा उनसे सूखे मुँह से क्षमा माँग रही थी। भला वह शाहिदा से किस मुँह से खफा होतीं। अतः वह शाहिदा की जगह हम लोगों पर बरस पड़ीं। 'लो और सुनो, बहनों यह लड़कियाँ बड़ी-बूढ़ियों से ठट्ठा पर आगईं' यह कहकर उन्होंने जो मुँह में आया कह डाला। सब स्त्रियाँ जानती थीं कि इन्होंने स्वयं लड़कियों से उलझ-उलझकर अपनी स्थिति खराब की है।

और कोई उनकी ओर ध्यान न देता था। इधर लड़कियों का यह सब तमाशा देखकर बुरा हाल हो गया। मैं स्वयं हँसी न रोक सकी! एक-एक करके सब उठने लगीं। किसी ने रूमाल से हँसी को रोका। तो किसी के हलक में चाय का फंदा पड़ गया। इस प्रकार सबकी सब उठ गईं और हाथ धोकर उसी कमरे में पहुँचीं। मैं भी वहीं पहुँची।

[५]

यहाँ अब सावधानी से पब मिलकर बैठीं। मानो अब मैं प्रश्नों का केन्द्र बन गई। प्रश्न यह था कि अपनी सम्पूर्ण कहानी सुनाओ। शायद यह लोग किसी न किसी तरह उड़ती-उड़ाती मेरी कहानी सुन चुकी थीं। परन्तु अब वे स्वयं मेरे मुख से सुनना चाहती थीं। मैंने पहले तो सबसे परिचय प्राप्त किया। मुझे मालूम हो गया कि कौन कौन हैं। जिमवाली मुझे सबसे अधिक आकर्षक लगीं। इनके मियाँ का नाम जमशेद था और उपनाम जिम, जिसके कारण यह जिमवाली हो गईं। इनका जीवन भी एक विचित्र रहस्यमय जीवन था। इनका ब्याह मिस्टर जिम से, जो विलायत में थे, पत्र द्वारा हुआ था। यह मुझे आज मालूम हुआ कि दोनों ओर ब्याह के प्रण और गवाही इत्यादि सब कुछ लिखा-पढ़ी पत्र द्वारा भी सम्भव हुआ करता है। इनका भी पत्र-व्यवहार जिम से हो गया था। जिसके कारण वह एक प्रकार के स्वप्नों के रङ्गीन संसार में विचरण करती रहती थी। यह बात मुझको स्वयं उनके और दूसरी लड़कियों के द्वारा मालूम हुई। दूसरे यदि इनके पति मिस्टर जिम एक बहुत सुन्दर नवयुवक तो थे ही परन्तु यह स्वयं उनकी पुरुषोचित सुन्दरता की विचित्र कहानियाँ सुनाकर और भी आवश्यकता से अधिक मस्त हो रही थीं। हालाँकि उन्होंने कभी स्वप्न में भी जिम को न देखा था।

परन्तु जो कुछ भी सुना था उस पर इनका ऐसा दृढ़ विश्वास था कि यदि कोई किसी प्रकार यह बात संकेत में भी कह दे कि अमुक मनुष्य जिम से अधिक सुन्दर है तो उन्हें बुरा मालूम होता था और नाराज हो जाती थीं और लड़ मरती थीं। वह चाहती थीं कि कोई दिल्लगी में भी उनको बुरा न कहे। जिम से तस्वीर मँगाई थी जिसके आने में आवश्यकता से

अधिक देर हो रही थी। बल्कि जिम के आये हुए पत्रों को देखते हुए बहानाबाजी का सन्देह हो रहा था! अतः शाहिदा ने, जिसे यह अपना पत्र दिखाया करती थी, यह बात खड़ी करदी कि वह काने हैं। तब से शाहिदा को भी पत्र दिखाना छोड़ दिया।

शाहिदा भी आ गई और मैंने अपना सब किस्सा शुरू से अन्त तक सुना दिया। हमको यह भी मानना पड़ा कि वही शब्द 'कोलतार' जिस शरीर के मुँह से सुनकर पहले हमारे तन-बदन में आग लग जाती थी, आज कानों को भला मालूम होता है।

शाहिदा और जिमवाली से मेरी बहुत घुट के अलाहिदा बातें हुईं। तुरन्त मुझमें और उनमें बहन और सहेली का पवित्र सम्बन्ध स्थापित हो गया। जिमवाली ने मुझसे स्वयम् ही कहा—'बहन, मैं तुम्हारे मियाँ से पर्दा काहे को करूँगी और मुझसे पक्का वादा ले लिया कि तुम भी जिम के सामने निकलना। बहनोई से, उन्होंने कहा कि हमारे यहाँ पर्दा नहीं होता अथवा भाइयों के सन्मुख नहीं होती थी।

[६]

इसके बाद ही मीलाद शरीफ शुरू हो गया। आँगन के बीचो-बीच एक तख्त बिछाकर और चारों ओर कनातें लगाकर भीतर मौलवी साहब (मीलाद पढ़ने वाले) को मानों बन्द कर दिया था और चारों ओर बीवियाँ ही बीवियाँ बैठी थीं। मीलाद शरीफ शुरू हुआ। शाहिदा प्रसाद बाँट रही थी। दो दो नान-खताइयाँ एक कागज में लिपटी हुई सबको बाँटती फिर रही थी। हमारे पास आई तो चुपके से बोली—"बहन, इस चंडूल को कैसा पिंजरे में बन्द करके रक्खा है और देखो तो बन्द होने पर भी कैसा चिहकता है। मैं पहले तो न समझी; परन्तु

फिर मालूम हुआ कि बदमाश ने मौलवी साहब पर आक्रमण किया था।

इतने में मेरी गाड़ी आ गई। शाहिदा और जिमवाली से आने का पक्का वादा लेकर मेजवान साहबा से आज्ञा लेकर मैं तो घर चली। चलते-चलते जिमवाली दौड़ आई और झपाक से मेरे गले में हाथ डालकर मेरे कान में कहा 'तुम्हें सब पत्र दिखाऊँगी·····जिम के।' उनका मुख प्रेम और आनन्द से दमक रहा था।

जिमवाली

कालिज की छुट्टी थी और मौलाना मुझे अंग्रेजी पढ़ा रहे थे कि एक दम से हमारे कमरे के सामने ही मोटर आकर रुकी और इसके पहले कि मैं बाहर निकल सकूँ 'सलाम अलेकुम' कह कर जिमवाली अन्दर आ गई।

जिमवाली देखकर कुछ मुस्कुराई और मौलाना से बोलीं—'भाई, आप इनको बेंत से मारते हैं या हाथ से' मौलाना बोले "आँखों से।" जिमवाली इस वाक्य को सुनकर चुप हो गई; क्योंकि वह जानती थीं कि यह बड़े गैरजिम्मेदार आदमी हैं और जो मुँह में आयेगा फट से कह डालेंगे। अतः मुझको सम्बोधित करके बोली 'बहन, वह पटवारी मर गया। बिचारी शाहिदा!'

मैंने कहा—"अरे! कब?'

जिमवाली बोली "अभी कल मुझे वह जीनत के यहाँ मिली थी तब तो कुछ न था मगर आज ही सुबह सुना।"

मौलाना बोले–'तो क्या बहन शाहिदा को अफसोस होगा।'

जिमवाली बोली—"खाक अफसोस होगा। कोई बात अफसोस की हो, आखिर आदमी मरते ही हैं। कोई निकाह तो हो नहीं गया। अभी तो बात ही थी।'

मैंने कहा—"बहन, बात तो थी और पक्की बात थी। आखिर कुछ तो अफसोस होगा ही।" जिमवाली अपने सुन्दर चेहरे को बना कर बोला—"उँह! बहन तो और नहीं होगा, चलो जरा उसे देख आयें।"

मौलाना बोले—"यह सब झंझट है। छुट्टी के दिन जोरू घर पर रहती है, और फिर दाल भरी रोटियाँ बनी हैं। तुम जरा अपने कलेजे पर हाथ रख के देखो कि बिना इनके मेरे हलक से कैसे उतरेगी, क्योंकि खाने का वक्त है और यदि यह जायँगी तो क्या बिना खाना खाये आने पायँगी। तुम्हारी मोटर मौजूद है। "शाहिदा बहन को बुला लो·····।"

मैंने कहा—"वाह, आप भी एक विचित्र आदमी हैं! हम तो उससे सहानुभूति करना चाहती हैं, उसे बुला कैसे लें!'

मौलाना ने कहा—"दिवानी हुई हो, जरा गौर करो। शाहिदा से भला मरने वाले से क्या सम्बन्ध?"

मैंने कहा—"न सही, मैं तो जाऊँगी।" इधर जिमवाली ने जो जिद किया तो मौलाना राजी हो गये और हम दोनों शाहिदा के यहाँ पहुँचीं। वह कम्बख्त हमें देखते ही मुस्कराई।

जिमवाली ने कहा—खा गई कम्बख्त बिचारे को। डाइन कहीं की।"

शाहिदा ने कहा चुप, कि इतने ही में जीनत बहन भी आ पहुँची। खालाजान ने हम लोगों की बहुत खातिर की। खाना तैयार ही था। जीनत खाकर आई थी। हम सब खाना खाने के बाद ऊपर कमरे में पहुँचीं।

पहुँचते ही अव्वल तो शाहिदा को सब ने मारा। एक-एक

धमाका पीठ पर दिया कि कम्बख्त तू क्यों अपने मियाँ को खा गई। "मुझ राँड़ दुखियारी को मार रही हो, देखो फिर मैं भी .....।"

जिमवाली ने डर कर शाहिदा का मुँह बन्द कर दिया और चुप हो गईं कि रहने दो।

अब शाहिदा से दिल की बात पूछी गई कि क्या वास्तव में उसे अफसोस हुआ। शाहिदा ने कभी उन्हें देखा तक नहीं था। कहने लगी—योंही थोड़ा-सा अफसोस हो रहा है और वह भी डर के मारे कि कहीं बुरी जगह शादी न हो जाय। बहन, मेरे पास एक रङ्गीन शीशे का गिलास था उसे मुर्गी ने तोड़ डाला था। रह-रह कर मुझे उसी का अफसोस हो रहा है। यदि जिन्दा रहता तो बेचारा मुझे बहुत अच्छी तरह रखता।"

यह बातें तुरन्त समाप्त करके अब जिमवाली की मनोरंजक कहानी सुनने बैठी। यह कहानी केवल मुझे ही सुनाई जाने वाली थी; परन्तु इसके लिए सब बेचैन थीं।

प्रथम इसके कि जिमवाली की कहानी उन्हीं के मुख से यहाँ वर्णन करूँ, मेरे लिए यह आवश्यक है कि बता दूँ कि जिमवाली क्या हैं। वह मानो कल्पना जगत में विचरण कर रही हैं। उनकी सुन्दर और मधुभरी आँखें उनके नाजुक चश्मे के शीशे में से हमेशा बेचैन रहती हैं। उनको अपने अपरिचित पति से सच्चा प्रेम है। उनकी कल्पित मूर्ति हर वक्त उनकी आँखों के सामने ही रहती है। सुन्दर से सुन्दर युवक भी उनकी दृष्टि में तुच्छ मालूम पड़ता है। केवल इस बुनियाद पर कि जिम इससे कहीं ज्यादा सुन्दर और शानदार हैं। इनके ख्याल में परमात्मा ने शायद कोई ऐसी खूबी न रखी हो जो इनके अपरिचित पति में न हो।

जीनत और शाहिदा से चुप रहने का वादा लेकर जिमवाली ने अपनी आत्मकथा यों शुरू की।

[जिमवाली की आत्मकथा]

'बहन, मैं क्या बताऊँ कि तुमसे मुझे कितना प्रेम है और वह शायद इस कारण से कि.....'

जिमवाली ने शाहिदा और जीनत की ओर देखा और उन दोनों से छिपाकर मेरे गले में हाथ डाल कर कान में मुस्करा कर कहा—'इसलिए कि.....'

खटाक् से शाहिदा ने हम दोनों के सर जोर से लड़ा दिये! जिमवाली ने अपना सर पकड़ के कहा—"कम्बख्त, तुझे खुदा समझे, इधर मेरा और जीनत का मारे हँसी के बुरा हाल था कि न जाने बिचारी क्या कहने वाली थी जो कह न सकी। जिमवाली ने कहा कि मैं तुम्हें बाद में बताऊँगी। मैंने कहा—अच्छी बात है। परन्तु तुम इस समय तो अपनी मजेदार कहानी सुनाओ।

जिमवाली ने इस प्रकार अपनी कहानी आरम्भ की:—

"परसों का जिक्र है; मैं बड़ी बेचैनी से चौकीदार का इन्तजार कर रही थी। इतवार के दिन विलायती डाक आती है, जिसमें जिम का पत्र आता है। मैं सुबह जल्दी चौकीदार को डाकखाना भेज देती हूँ। अब की मरतबे तकते-तकते आँखें पथरा गईं। क्योंकि पत्र के साथ मुझे तसवीर का भी इन्तजार था। अतः चौकीदार फाटक में दाखिल हुआ। उसे क्या खबर कि मैं किस तकलीफ में हूँ। वह आनन्द से धीरे-धीरे टहलता चला आ रहा था, फिर रास्ते में किसी से बातें करने को खड़ा हो गया। मैं रोआसी हो गई और मैंने लड़के को दौड़ाया। उसने पत्र लाकर मेरे हाथ में दिया। बहन, क्या बताऊँ कि

मैंने किस उतावली से पत्र खोला, जल्दी-जल्दी पढ़ना शुरू किया। कुछ उदासीन होकर रह गई, क्योंकि पत्र में केवल दो ही तीन सतरें थीं। यह पत्र ही जो है, देख लो।' यह कह कर जिमवाली ने पत्र निकाल कर दिखलाया जो निम्न प्रकार से था:—

जिम वाली को.....

खुश रहो। जल्दी मिलो। क्या बिलकुल ही दीवानी हो गई। कहता हूँ ना, कि तस्वीर तुम्हारे पाँस पहुँच जायगी। चाहे डाक से या किसी और तरह। सारांश यह कि वह बहुत जल्द पहुँचेगी, आखिर इतनी जल्दी क्या है। वास्तव में देरी इस कारण से हो रही है कि जो तस्वीर मैं भेजना चाहता हूँ, उसकी तैयारी कोई साधारण काम नहीं है। जिमवाली ने जिम को कभी नहीं देखा है और न जिम ने उसको। परन्तु वास्तव में यह बात गलत है; क्योंकि किसी को भी तस्वीर की जरूरत नहीं। सच कहता हूँ न ? फकत।

मिलेंगे जब

'जिम'

मैंने भला ऐसा चुना हुआ पत्र काहे को देखा था। मैंने दो एक प्रश्न किये कि शाहिदा बोली कि 'बहन हो न हो, यह इनके जिम.....का.....' जिमवाली ने काने शब्द कहने के पहले ही शाहिदा का मुख बन्द कर दिया और कहा—"चुप रहो" और जिमवाली ने फिर अपनी कहानी का क्रम आरम्भ किया:— जीनत की ओर मुस्करा कर जिमवाली बोलीं, चूँकि यह पड़ोस में है, अतः सब से पहले मैं जिम का पत्र इसे दिखाती हूँ।

एक दम से पत्र पढ़ कर मैं अपने कमरे से निकलकर बुरका बगल में दाबे तीर की तरह बँगला की दीवार पार कर के खेत में हो ली। कोई न था और मैं मानो पलक मारते ही

एक डेढ़ खेत का फासला तय करके इस बँगले के पिछवाड़े घूमकर पहुँची। फिर बाग में दाखिल हुई। केलों की कतार के बराबर रविश पर मुझे तेजी से दौड़ने में विचित्र ही आनंद आया और मैं उड़ी हुई बँगले के पीछे वाले बरामदे के पास निकली। इसी बरामदा के ऊपर इसका (जीनत) कमरा है।'

जीनत मुस्कुरा रही थी और हँसने ही वाली थी कि जिमवाली ने अपनी कहानी छोड़ कर अपनी शरमीली आँखों को झुकाये हुये कहा—'कम्बख्त, तू हँसती क्यों है? बीच में बोली तो बस'.....इतना कहकर फिर बोली :—

"बरामदा के पास माली बैठा कुछ खोद रहा था। वह मुझे जानता ही था और मैंने जल्दी में जीनत को हाथ के इशारे से पूछा। उसने उत्तर में हाथ उठा कर कुछ कहा। परन्तु मैं भला कहाँ सुनती थी।"

मैं जल्दी के मारे कमबख्त दो-दो सीढ़ियाँ चढ़ती छत पर पहुँची। बरामदे में कमरे के दरवाजे के पास शीशा में अपना तमतमाया चेहरा देखा। जरा रुक गई कि सांस कुछ काबू में आ जाय, क्योंकि झाँक के देखने पर मैंने कमरे में किसी को न पाया। एक क्षण भर बाद बुरका शीशा के पास रख कर कमरे में दाखिल हुई और बीचो-बीच की छोटी मेज पर मेरी नजर पड़ी। पत्र लिखने का कागज और कलम रक्खा हुआ था। जिससे अभी अभी कोई पत्र लिखने वाला था। मैं घूमी जो सही, तो पलङ्ग की तरफ नजर पड़ी। मैं समझ गई कि जीनत ने वही पुरानी शरारत की है।'

जीनत से जब्त न हो सका और वह हँस पड़ी। मैंने पूछा—'क्या शरारत?' तो जिमवाली ने कहना शुरू किया:—

'इसकी पुरानी आदत है कि जब कभी मुझे आती देखती है तो सौ काम छोड़ कर झट सोती बन जाती है और फिर उठाए

नहीं उठती है। ज़रा ख्याल करो कि मैं तो शौक और मुहब्बत से दौड़ी आई और वह सोती बन जाय और घसीटे से न उठे। मैंने देखते ही दिल में कहा कि यह हरगिज नहीं सो रही है, बल्कि मुझे कुछ बुरा मालूम हुआ कि यह भी कोई दिल्लगी है कि मुझे तंग करने को अभी-अभी मुझे देखकर पत्र लिखते-लिखते छोड़ छाड़ चदर ओढ़ कर-लेट गई। जानती है न कि आयगी आज पत्र दिखाने। ऐसी ठंडी हवा में चदर ओढ़ कर सोने के क्या अर्थ! केवल इसलिए कि जब मैं खींच कर जगाऊँ और हँसी आये, तो चादर में मुँह छिपाये हँसती रहे। मैंने भी दिल में कहा कि रह जा, न आज तेरी वह खबर ली हो कि तू याद ही करे।

अब मैंने सोचा कि क्या सजा दूँ। पहले तो ख्याल आया कि लाओ बड़ा तकिया लेकर इसका ज़रा दम घोटूँ। फिर मेरी समझ में एक और तरकीब आई कि आज इसकी नाक ऐसा धर मरोड़ूं कि हाथ ही में टूट कर रह जाय। यह ठान कर मैं आगे बढ़ा और अपनी जान में इस कम्बख्त को एक दम से अच्छी तरह से दबाकर इस जोर से नाक पकड़ कर मरोड़ी है कि बस मैं ही जानती हूँ……।"

इस पर जीनत इस बुरी तरह हँसी कि लोट-पोट होगई। शाहिदा का भी यही हाल हुआ और स्वयं जिमवाली की भी हँसी के मारे बुरी अवस्था हुई। मैंने कहा, "परमात्मा कुशल करे, बहन! क्या सब की सब पागल हो गई हो। बात न बात—हँसी मरती हो।"

हँसी रोकते हुए जिमवाली ने कहा—"इधर इस कम्बख्त को अच्छी तरह दाब कर नाक मरोड़ी है और इधर उसने जोर किया। मैंने कुछ रोका क्योंकि अच्छी तरह दाबे थी, कि एकदम पहलवान के जोर के समान मुझे एक झटका लगा। "हैं" करके चादर एक दूसरे झटके के साथ वह गिरी!……

"कौन" घबड़ाकर जोर से मुझे डाटा। मैं चौंक पड़ी और मेरा हाथ एक नवयुवक की मजबूत पकड़ में था !!"

जीनत और शाहिदा तो हँसी से बेकाबू हो गईं। मुझे हँसी क्या खाक आती। बहुत चकित होकर हमने कहा "दिल्लगी करती हो, क्या वास्तव में·····और था·····।"

जिमवाली बोलीं 'दिल्लगी काहे को, सच कहती हूँ, बिलकुल सच। अब बहन मैं क्या बताऊँ कि मेरा क्या हाल था। करने को तो परदा करती हूँ और नहीं भी; परन्तु यहाँ तो मामला ही दूसरा था। मैंने तुरन्त ही दूसरे हाथ से अपना मुँह छिपाया और जोर किया।

परन्तु मेरा हाथ तो मानों लोहे के पंजे में था। उन्होंने मेरा हाथ झटक कर कहा--'क्या वहशत ! आखिर तुम हो कौन बला ?' यह कह कर दूसरे हाथ से मेरा हाथ पकड़ना चाहा, परन्तु मेरा मुँह अब दूसरी ओर था कि ठीक इस मुसीबत के समय में अल्लाह भला करे इसका, जीनत पहुँची·····।'

जीनत बोली 'मैं क्या बताऊँ बहन कि मैंने क्या तमाशा देखा। मैंने दौड़कर इनको छुड़ाया। "यह जिमवाली हमारी बहन जिमवाली हैं, खुदा के वास्ते इन्हें छोड़िए।" यह कह कर मैंने भाई नजमी की उँगलियाँ छुड़ाना चाही।

'अच्छा ! यह हैं जिमवाली·····परन्तु·····यह इल्लत है।' भाई नजमी ने कहा 'इन्हें देखें तो यह कैसी हैं,' यह कहकर वह हाथ मोड़ने लगे। मैंने कहा—"भाई छोड़ दो न ! कोई तुमसे पर्दा थोड़ा ही है। वह बोले "पर्दा-वर्दा यह कैसे करेंगी·····मुझसे !'

यह कहकर फिर उन्होंने इनका हाथ उमेठा। तुरंत मैंने छुड़ाया और इनकी मुँह दिखाई कराई। सामने कुरसी पर इनको बिठाया गया। इनकी हालत देखने के काबिल थी।

भाई नजमी बोले—याद रखना यदि कुर्सी पर से हिली भी तो दौड़कर पकड़ लूँगा। आई वहाँ से नाक मरोड़ने वाली।'

जिमवाली भोलेपन से बोलीं 'बहन, मैं डरी हुई बैठी रही, और क्या करती।' जीनत ने कहा 'फिर मैंने भाई नजमी को समझाया कि किस तरह मेरे धोके में उनकी नाक मरोड़ी गई। परन्तु इस पर वह बोले 'इन्होंने जान बूझकर मरोड़ी है। बच्चा थोड़े ही हैं। पैर देखकर सूरत का पता लगाने वालियों में हैं यह·····जैसे इनके जिम हों।'

जिमवाली बोली—'मुझे बहुत ही बुरा लगा और विशेषकर उस समय, जब उन्होंने कहा—'हमें जिम का ख्याल आता है। नहीं तो हम इन्हें खा ही जाते।'

मैंने पूछा—'तो क्या तुम्हारे भाई जिम के मित्र हैं?'

जिमवाली बोली—'हाँ, सुनो ना, यही बात थी····· बड़े गहरे मित्र·····जिम के पास से रात ही को विलायत से आये हैं। मुझे बुलवाने वाले ही थे। मैं चुप बैठी थी कि उन्होंने इस कम्बख्त (शाहिदा) वाली दिल्लगी की। मुझसे कहने लगे कि आखिर तुमने काना आदमी क्यों पसन्द किया। तुम्हारे जिम से तो लाख दरजे मैं अच्छा हूँ।'

बस बहन, मैं क्या बताऊँ, मेरे ऊपर मानो बिजली गिरी और सारे शरीर में एक ठण्डक सी बैठ गई।

इस प्रकार के बेहूदा शब्द सुनकर मेरे कानों में जैसे किसी ने बरछी मारी। मैं एक सन्नाटे में आ गई और एक दम से मुझे गुस्सा आ गया। शरीर में आग-सी दौड़ गई, हकलाते हुए मैंने बड़े गुस्से में न मालूम किस तरह कहा—'आप कदापि इस प्रकार की दिल्लगी नहीं कर सकते।

इसके उत्तर में नजमी ने अपने सुन्दर मुख को और अधिक दिल्लगीयुक्त बनाकर अपने हाथ से अपनी नाक

मरोड़ कर कहा—'आप कदापि 'इस' प्रकार की दिल्लगी नहीं कर सकती हैं।'

मुझे कुछ हँसी सी आ गई; तो उन्होंने और भी बुरी तरह कहा—'तुम्हारे 'कान्टीन' जिम भी विचित्र आदमी हैं·····।'

अब मैं बिगड़ खड़ी हुई और मैंने कहा—'भाई' आप जिम को·····।'

बात काटकर उन्होंने कहा—'भाई होंगे तुम्हारे घर और रहे जिम तो उनको डालो चूल्हें में।' अब मुझमें सहन शक्ति न रही और मैंने घुटी हुई आवाज में बुरा मानकर इनसे (जीनत) कहा—'बहन, मुझे क्षमा करो और अब जाने दो।' इतना कहकर गुम-सुम होकर मैं कुरसी पर अपनी कोहनी से मुँह छिपाकर बैठ गई।

जीनत ने भी शिकायत की। किसी से इस प्रकार का व्यवहार ठीक नहीं और उन्हें शरमिन्दा करना चाहा। शरमिन्दा होने की जगह वह और जोर से बोले—जानती भी हो, मैं कौन हूँ? कौन? ···· बोलो ·····ऐ जिमवाली·····बोलो·····

मैं कुछ न बोली तो वह जीनत से बोले—'बहन लाना तो मेरा अटैची·····यह ऐसे ठीक न होगी। जरा लाना तो मेरा अटैची, मैं इन्हें अभी-अभी ठीक कर दूँ।'

जीनत ने अटैची केस उठाते हुए कहा 'क्यों, इसमें क्या है?' वह बोले 'इसमें एक दवा है।'

अब मैं गौर से नजमी के सुन्दर और चमकदार मुख को देख रही थी। वास्तव में नजमी एक सुन्दर नवयुवक है। और मेरे सम्मुख अपने जिम की मानो तस्वीर फिर गई जो नजमी से लाख दर्जा·····(मुस्कुराने लगा जिमवाला)·····हाँ, तो उन्होंने अटैची केस में से कुछ कागज निकालकर छिपा लिया। और मुझसे कुछ डांट कर कहा 'बाला, जल्दी·····जल्दी

बोलो·····जानती हो मैं कौन हूँ !' मैं गुस्से में भरी उसी तरह चुप बैठी रही तो कहा 'तुम यों न मानोगी। जब तक····।'

यह कहकर एक कागज को मेरे सामने किया। यह एक ही लिफाफा था, मैं एकदम से चौंक-सी पड़ी। क्योंकि यह तो मेरा ही लिफाफा था, जिसमें पत्र बन्द करके मैंने जिम को भेजा था। पता की ओर से मुझे दिखाकर नजर्मा ने कहा—"यह पत्र पहचानती हो ?' अपनी ही लिखावट भला कैसे न पहचानती। मैंने तुरन्त पहचान लिया और बेचैन-सी हो गई कि या अल्लाह कहीं इस जालिम ने जिम के पास से मेरा पत्र इस लिफाफे के सहित उड़ा न लिया हो। मेरे दिल में यह ख्याल आना था कि तुरन्त उन्होंने कहा "अजी मुंशी जी, यह खाली नहीं है। इनमें आपका पत्र भी है।" यह कहकर उन्होंने उसमें से पत्र निकाला। मैं धक् से हो गई और यह कहती हुई लपक कर उठी—

'मेरा पत्र ! खूब !'

उन्होंने अपने सुन्दर मुख को गम्भीर बनाकर कहा—

'सुबहान अल्लाह ! पत्र मेरा है। हुश। पत्र उनके हाथ में था और मैंने चिड़चिड़ा कर कहा—मेरा पत्र लाइये।' यह कह कर मैंने लेना चाहा।

"मैं अभी इसे जोर-जोर से पढ़कर सुनाऊँगा। नहीं तो यह बतलाओ कि जानती हो कि मैं कौन हूँ।' उन्होंने कहा और साथ ही पत्र पढ़ने को हुए। मैंने हारकर जल्दी से कहा 'हाँ जानती हूँ।' पत्र सामने से हटाकर उन्होंने कहा 'कौन हूँ ?' उनके चेहरे पर मुस्कराहट और शरारत प्रकट थी। मैंने कहा "आप जिम के मित्र हैं परन्तु आपने बहुत ज्यादती की यदि यह पत्र उनके पास से चुरा लिया ?"

"मैं जिम का मित्र कदापि नहीं और न मैंने यह पत्र चुराया।"

'फिर ?'

नजमी ने अपने सुन्दर चेहरे को ऊपर उठाकर कहा—

'फि ! तुम जानत हो कि जिम के कोई सगा या सौतेला भाई नहीं है और यह भी जानती हो कि उनके केवल एक चच्चा हैं।'

मैंने कहा—'जानती हूँ।'

उन्होंने कहा—"फिर क्या है तो बस, तुम मुझको उनके चाचा का सगा भतीजा समझो।"

मैंने जलकर उनकी इस बेअदबी का उत्तर दिया—"मैं यह धोका और यह दिल्लगी कदापि नहीं पसन्द करती।" उन्होंने बेपरवाही से कहा - "मेरी बला से।"

"मैं असभ्य लोगों से बातचीत करना चाहती।" यह कह कर मैंने बड़ी उत्तेजना से पत्र की ओर हाथ बढ़ाया।

"मैं उन सुन्दर लड़कियों का पत्र पढ़ना चाहता हूँ जो वे असभ्य लोगों को लिखती हैं।" यह कह कर और हाथ ऊँचा करके जिसमें मैं पत्र न छीन सकूँ, मेरी आँखों के सामने पत्र पढ़ना शुरू किया:—

'मेरे जिम.....'

उन्होंने इतना ही पढ़ा था कि मैं चीख कर झपटी कि पत्र ले लूं। परन्तु असफल होकर रोती हुई मुँह छिपा कर कुरसी पर बैठ गई। रूमाल से मुँह छिपाकर मैं रोने लगी। इस पर यह जीनत चिल्लाई तो नजमी बोले—'ए लो बिगड़ गई, जिमवाली.....बिगड़ गई.....यह लो.....यह लो.....यह लो.....बस.....बस.....यह कह कर पत्र को टुकड़े-टुकड़े कर डाला।

इसने (जीनत) भी कहा "आप आवश्यकता से अधिक दिल्लगी करते हैं, भला यह भी कोई बात है कि.....

बात काट कर नजमी ने कहा 'तुम भी इनके रोने पर जाती हो। इनसे कहो कि हँसें·····अभी·····(मेरी ओर सकेत करके कहा)·····हँसो जी··· हँसती हो या नहीं·····।'

परन्तु यह भोंडा मजाक मुझे और भी जहर मालूम हुआ और मैं और भी सुलग गई नजमी ने बड़ा गम्भीर मुख बना कर कहा—"लाना तो मेरा अटैची केस, यह ऐसे नहीं ठीक होंगी···और देखती क्या हो ? तुम्हें खुदा की कसम है, लाओ तो, फिर एक नया तमाशा देखो।"

मैंने दिल में कहा कि न मालूम इससे क्या मतलब। मैं उसी प्रकार उदास थी, परन्तु उस समय नजमी को बड़े ध्यान से देख रही थी। उनका सुन्दर मुख बड़ा गम्भीर था।

यह उठी और अटैची केस फिर उठा लाई। अब मैं भी आँसू पोंछकर ध्यान से देखने लगी कि यह महाशय करते क्या हैं। मेरी ओर देख कर बोले—हँसो जल्दी, परन्तु मुझे बिल्कुल हँसी न आई। बल्कि उनके भोंडेपन पर और गुस्सा आया। जल्दी से उन्होंने अपना अटैची केस कुरेद कर एक लिफाफा निकाल कर मेरे सामने कर दिया।

"बहन, क्या बताऊँ, मैं पहले से भी अधिक अचम्भित हो कर चौंक पड़ी। जिम का पत्र पहचानती हूँ। इस लिफाफे पर मेरा पता लिखा हुआ था। पत्र मेरे नाम था। इसके पहले कि मेरी जबान से कुछ निकले, लिफाफा घुमा कर उन्होंने दूसरी तरफ मुहर दिखा कर कहा—'इतमीनान रक्खो, मैंने खोला नहीं है, पत्र तुम्हारे नाम है।' मैंने जिम की मुहर को भी पहचान लिया। अब उन्होंने कहा—"हँसो जल्दी,' और मैं कम्बख्त सचमुच नें हँसी दी।

अब नजमी एकदम से खड़े हो गये और मैंने उनको सर से पैर तक देखा। उनके सुन्दर बाल देखने में रेशम की तरह

थे। उन्होंने अपने बाल माथे पर से समेटे और अपनी लम्बी-लम्बी पलकें झपका कर कहा—'जरा मुँह धो डालो।' परन्तु मैं नजमी को देखकर जिम का चित्र हृदय में खींच रही थी। जो कुछ भी जिम के बारे में सुना है, उसका कुछ अंश नजमी में भी है। जिम के बालों को मैंने एक नजर फिर गौर से देखा। मैंने दिल में सोचा, नजमी के बालों को तो क्या पहुँचेंगे, परन्तु नजमी के बाल भी कुछ-कुछ वैसे ही हैं।

नजमी ने फिर कहा—'जरा मुँह धो डालो·····मगर खैर अभी नहीं। अब तो यह पत्र लो', मैं मानों चौंक-सी पड़ी। पत्र लिया और उसको काँपते हुए हाथों से खोल कर पढ़ा। पत्र क्या था, एक छोटा सा नोट था। यह कह कर जिमवाली ने वह पत्र निकाल कर दिया जो निम्नलिखित था:—

'जिमवाली यह नजमी हैं। मानों जिम हैं····· बिलकुल·····अलग-अलग नहीं·····जिम और नजमी की मित्रता क्या है मानो दो शरीर एक प्राण है। नहीं नहीं, बल्कि एक ही शरीर और एक ही प्राण समझना। चित्र के बारे में तुम्हें लिख चुका हूँ। अभी वह चित्र तैयार नहीं जो भेजना चाहता हूँ।

फिर जिम के चित्र की जिमवाली को जरूरत ही नहीं। इनके पास एक चित्र है; परन्तु उस पर मेरा जोर नहीं। हाँ, कोशिश करके ले लो। शायद दे दें, या कम से कम दिखा ही दें।'

फकत—

तुम्हारा 'जिम'

'कहिये मुंशी जी' नजमी ने हँसकर मुझसे कहा—'अब तो जानती हो कि जिम के सगे चचा का सगा भतीजा।' मैं हँस रही थी और नजमी ने अपनी सुन्दर पलकों में विचित्र

प्रकार से आँखें घुमाकर जीनत से कहा—'देखा तुमने इस छोकरी को ! हो गई मुझसे राजी·····मेरी चेली।"

मैं वास्तव में बहुत प्रसन्न थी कि ऐसा भला आदमी जिम का ऐसा गहरा मित्र है। एक आदमी और एक प्राण। मेरा हृदय आनन्द से भरपूर था और मुझे अब नजमो की सारी असभ्यता बिलकुल ठीक मालूम हो रही थी। जिम का इतना घनिष्ट मित्र ! इतना सुन्दर मनुष्य !

नजमी ने कहा—'लो, अब मुँह धो डालो।'

"आपके पास क्या चित्र है ?" मैंने पूछा—

'किसका'

'जिम का' मैंने मुस्कुरा कर कहा 'जिम का चित्र·····है आप के पास ?'

'देखोगी ?'

मुस्कुरा कर मैंने सर हिलाया।

नजमा ने कहा—"देखो, नियम यह है कि जब किसी सुन्दर और रूपवान नवयुवक का दर्शन करना होता है तो इसके पहले वजू कर लेना होता है। अतः तुम्हें एक बहुत ही पूजनीय सुन्दर और विद्वान नवयुवक का चित्र तब दिखाऊँगा जब तुम वजू न सही, तो कम-से-कम मुँह तो धो डालो।"

यह कह कर मेरा हाथ पकड़ कर मुझे बरामदे में लाकर खड़ा किया और हाथ में लोटा लेकर कहा—'लो।' मैं हँसने लगी।

जीनत भी पास आ खड़ी हुई। जब उन्होंने देखा कि मैं मुँह नहीं धोती तो लोटा रखकर कहा "मुझे भी कसम है कि बगैर मुँह धोये चित्र न दिखाऊँगा।" यह कह कर मुझे और जीनत को छोड़ कर कमरे में जा बैठे। मैं हँसने लगी और मैंने कहा—"लीजिए मैं धोती हूँ।" यह कह कर मैंने मुँह धोया, क्योंकि जानती थी कि एक मसखरे से पाला पड़ा है।

यह न मानेगा और इधर मैं चित्र देखने को अत्यन्त उतावली थी। जल्दी से मुँह धोकर कमरे में आई कि यह महाशय तौलिया लेकर आगे बढ़े और कहा—"लाओ, मैं पोंछ दूँ।" यह कह कर मेरा मुँह पोंछ ही दिया होता, यदि मैं सर ऊपर को करके हाथ से न रोक देती। मैंने कहा-"मैं पोंछे लेती हूँ।" यह कह कर मैंने तौलिया लेकर मुँह पोंछा।

जब मुँह पोंछ कर मैंने कहा कि चित्र दिखाओ तो इसके उत्तर में जीनत से बोले—"बहन जीनत, जरा इनकी सूरत तो देखना, मेरा चित्र देखने के लिए मरी जा रही हैं।"

मैंने इस दिल्लगी पर हँस कर कहा, "आप तो बातें बनाते हैं। दिखाना हो तो लाइये चित्र।' वास्तव में चित्र, देखने के लिए मैं अत्यन्त उतावली हो रही थी। नजमी ने कहा—"उपस्थित तो हूँ तुम्हारे सम्मुख, बेकार चित्र देखकर क्या करोगी। मुझे अत्यन्त उतावली थी और मैंने तङ्ग आकर कहा 'आपको तो दिल्लगी की सूझी है। भला ऐसी भी क्या दिल्लगी है।' जीनत ने भी कुछ जोर दिया तो उठे और अपना ट्रंक खोलकर चित्र निकाला। इधर मेरी यह अवस्था कि चित्र देखने के लिए मैं बेचैन थी। मैंने गहरी सांस ली। नजमी के सुन्दर मुख पर एक विचित्र ही प्रकार की मुस्कुराहट थी। आँखों में भी वही शरारत की चमक थी। फिर मुझे जिम का एक दम से ध्यान हो आया कि जिम नजमी से कहीं अधिक सुन्दर हैं। अभी चित्र ही से वह प्रमाणित हो जायगा कि जिम की और इनकी कोई समानता नहीं है।

'क्यों बहन', जिमवाली से मैंने बात काट कर पूछा कि 'आखिर तुम्हें कैसे मालूम कि तुम्हारे जिम नजमी से वास्तव में अधिक सुन्दर हैं।'

जिमवाली चमक कर बोली—"मुझे क्या मालूम ? मुझे तो

उनकी शकल सूरत और चेहरे-मोहरे का इतना विस्तार-पूर्वक हाल मालूम है कि·····बस·····बस·····बस मानो समझो पूरी·····।'

शाहिदा बीच में बात काट कर बोली—'यह सच कहती हैं। इन्हें जिम के चेहरे का पूरा हाल मालूम है। सिवाय एक आँख को छोड़कर।'

'फिर वही, अब क्या बिचारे मरे को सुनवाना है!' जिमवाली एक दम से तेज हो बोली।

जीनत बहन ने जिमवाली का मुँह बन्द कर दिया और जिमवाली ने फिर अपनी कहानी शुरू की।

सांराश यह कि मैं चित्र देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक थी। नजमी ने मुस्कुराते हुए चित्र मेज पर रखकर कहा—'लो देखो। परन्तु एकदम से नहीं दिखाऊँगा।' यह कहकर एक कागज से चित्र को पूरा-पूरा छिपा लिया।

मेरा दिल जिम को देखने के लिए बेचैन था और मैंने कहा—"दिखाइये।'

नजमी ने कहा—'ऐसे बड़े प्रतिष्ठित ऊँचे कुटुम्बी सुन्दर और पूजनीय नवयुवक के चित्र देखने से पहले आवश्यक है कि तुम पद पूजन करो, अर्थात् पहले उनके पवित्र पदों का दर्शन करो।

यह कहकर नजमी ने कागज को ऊपर सरका कर चित्र के पैर दिखाये। धन्य भाग, मैंने देखा कि एक रंग-विरङ्ग का कालीन बिछा है। और उस पर पैर में काला जूता और कत्थई धारीदार पतलून। चित्र फोटो का था परन्तु उसमें बड़ी सुंदरता से रङ्ग भरे गये थे। मुझसे सहन न हो सका और मैंने नजमी का हाथ हटाते हुए कहा—'पूरी दिखाइये।'

नजमी ने कहा—'धारे-धीरे' और यह कह कर कागज

ऊपर को सरकाना शुरू किया। मेरी आँखों के सामने एक सुनहला प्रकाश-सा दिखाई दिया। दिल भीतर से अत्यन्त प्रसन्न था। एक विचित्र परदा-सा आँखों के सामने से उठ रहा था जो दिल को आनन्द से भरे दे रहा था। मैंने कोट तक देखा पतलून ही के रङ्ग का कोट था। चित्रकार ने कितनी सुन्दरता से कोट में रङ्ग भरे थे। नजमी ने कागज और सरकाया तो टाई दिखाई पड़ी। मेरे सामने चेहरे को छोड़ कर पूरा चित्र था और मैंने अब उतावलेपन से बेसुध होकर नजमी का हाथ हटाना चाहा। परन्तु नजमी ने जोर से कागज दबाया और बेचैनी से परेशान होकर कागज को नोच लिया कि 'यह लो' कह कर नजमी ने चित्र बिलकुल मेरे मुँह से लगा दिया। हँसते हुए मैंने चित्र को देखा परन्तु दृष्टि जमते ही देह जल उठी। दिल जलकर कबाब हो गया। सारे शरीर में मारे क्रोध के आग लग गई और मारे क्रोध के मैंने हाथ से छीन कर और भिन्नाकर वह फेंकी। क्योंकि यह चित्र स्वयम् नजमी ही का था। चिड़चिड़ा कर और झुँझला कर मैंने कहा 'यह भी कोई दिल्लगी है!'

नजमी ने मुझे चिढ़ाते हुए सिर हिलाकर कहा 'दिल्लगी तो बस संसार में एक है और वह यह.....।' यह कहकर अपने हाथ से स्वयं अपनी नाक मरोड़ी और कहा 'और यह दिल्लगी कोई हमारी चमकीली जिमवाली से सीखे।'

मैं क्रोध से ऐसी जल रही थी कि मुझे तनिक हँसी न आई, अलबत्ता इसका (जीनत का) मारे हँसी के बुरा हाल हो गया।

'उठाओ चित्र को जाके' नजमी ने कहा। 'मत बोलिए मुझसे' मैंने तेज होकर उत्तर दिया।

'हैं' नजमी ने अपने शानदार चेहरे को कुछ भयानक-सा बनाकर कहा 'यह क्रोध और फिर वह भी किससे? अरे

मुझसे ! मुझको क्या इतनी जल्दी भूल गई कि मैं कौन हूँ ? कौन हूँ·····?'

परमात्मा जानता है कि मेरा क्रोध एकदम से जाता रहा। जिम के पत्र का ध्यान हो आया। मैंने दिल में कहा कि जिम के खातिर मुझे इस शरीर की हर बात सर आँखों पर। मैंने शिकायत के तौर पर कहा, 'आप भी तो खाँमुखाँ मुझे परेशान कर रहे हैं, आप क्यों नहीं दिखाते।' "अब क्या दूसरा चित्र देखोगी ? अच्छा पहिले उठा लाओ। उठो···उठो जल्दी···।'

मैं कमबख्त जिम का चित्र देखने के लिए बड़ी उतावला थी। झक मार कर उठी। मेरे हाथ से चित्र लेकर नजमी ने भवें चढ़ा कर रहस्यमय भाव में कहा 'कहती तो होगी दिल में कि है चित्र किसी · ···किसी ·····सुन्दर नवयुवक का।' मैंने हँसते हुए उत्तर दिया 'तो आपको कुरूप कौन कह रह है। आपको चित्र दिखाना हो तो दिखाइये।'

चित्र तो तुम्हें मैं दूसरा अवश्य दिखाऊँगा। परन्तु तुमने सुबह-सुबह मेरी नाक मरोड़ी और जगा दिया। अब मैं स्नान करने जाता हूँ। स्नान करने के बाद नाश्ता से निबट कर सोचूँगा कि चित्र दिखाऊँ या नहीं, क्योंकि मेरी समझ ही में नहीं आता कि आखिर दूसरा चित्र देखकर क्या करोगी, जब कि वह भी बिल्कुल ऐसा ही है, केवल इतना अन्तर है कि यह रङ्गीन है और वह दूसरा सादा।'

मैंने निराशा होकर कहा 'तो यह कहिए कि जिम का चित्र ही आपके पास नहीं है।'

'दिखा तो दी' उन्होंने हाथ झटक कर कहा 'और क्या जिम के कोई सींग होते जब मानतीं।'

जीनत ने इस पर तङ्ग होकर मेरी ओर से अनुरोध किया तो नजमी ने इस शर्त पर वादा किया कि मैं शाम को दूसरा

चित्र भी दिखा दूँगा, यदि यह आयँ और बैडमिन्टन खेलने का वादा करें।

इस पर मैंने मामला साफ करना चाहा और कहा—'खूब अच्छी तरह समझ लीजिये कि मैं दूसरा आपका चित्र नहीं देखूँगी। बल्कि जिम का देखूँगी। बोलिए जिम का चित्र दिखलाइएगा।'

इस पर वह बोले—'हुज्जत क्यों करती हो? कह दिया कि दिखा दूँगा, दिखा दूँगा, दूसरा चित्र दिखा दूँगा। और वादा करता हूँ कि जो दिखाया है उसमें सींग नहीं थे। अब एक चित्र ऐसा दिखाऊँगा जिसमें सींग भी हो जिससे तुम्हारा इत-मीनान तो हो जाय।'

मैं साफ-साफ वादा लेने पर तुली। मगर इस जीनत ने कहा—'परमात्मा के वास्ते अब जान छोड़ो। कह तो दिया कि अब दिखा देंगे।' नजमी ने फिर कहा—'वादा करता हूँ..... अब खुदा हाफिज?' यह कह कर मुझसे हाथ मिलाया और इस जोर से झटका कि मालूम हुआ कि मेरा कन्धा उखड़ गया। यह कह कर वह चले कि एकदम से 'अरे' कहकर रुक गये और कहने लगे 'तुम चित्र को पीट रही हो। भोली लड़की .....।' यह कह कर और आँखों से कनखी मारते हुए एक विचित्र प्रकार से मुझसे कहा 'तुम्हें एक चीज.....।'

यह कह कर अपना ट्रङ्क खोला। इधर-उधर के कोने कुरेद कर एक रूमाल निकाल कर इस जोर से मेरे मुँह पर मारा कि मैं उछल-सी पड़ी। रूमाल मेरे चश्मे की जंजीर में आकर अटक रहा। लेवण्डर की तेज सुगन्ध से महक रहा था। छोटा सा सफेद रङ्ग का महीना रूमाल था और इस्तेमाल किया हुआ मालूम दे रहा था। नजमी ने मुस्कुरा कर मुझसे पूछा कि तुम सूंघो और पहचानो कि यह किसका है।

मेरा ध्यान एकदम से कहाँ का कहाँ पहुँचा। उसकी भीनी-भीनी सुगन्ध इत्र की नहीं बल्कि जिम की मालूम पड़ी। इसके कोने पर मेरी नजर पड़ी। लाल रङ्ग से उस पर केवल जे० अर्थात् जिम के नाम का पहला अक्षर कढ़ा हुआ था। मेरी विचित्र अवस्था हो गई और रूमाल मैंने अपने हाथ में लेकर उसे बड़े शौक से देखा। नजमी मुस्कुरा रहे थे और मुझे देख कर बोले—'बोलो, बताओ किसका है ?"

मेरी अवस्था पागलों की सी थी। मैंने कहा कि मैंने पहचान लिया।

नजमी ने हँसकर कहा—'इसमें धोका नहीं हो सकता। मेरा दिल कह रहा है कि यह रूमाल नजमी का है, आपका कदापि नहीं।' मुस्कुरा कर नजमी ने कहा—'मेरा है जी, लाओ इधर।' मैंने उत्तर दिया 'कदापि नहीं, मैं नहीं देती।' और यह कह कर मैंने उसको अपनी अस्तीन में रख लिया।

नजमी ने कहा—अच्छा, खैर बोलो यह कैसी भेंट रही। मैंने कहा 'बहुत अच्छी, आपको धन्यवाद।'

मुझको गौर से देखते हुए नजमी बरामदे में चले गये और मैं थोड़ी देर इस नालायक से (जीनत से) लड़ने के बाद चली आई क्योंकि इस कम्बख्त ने शाहिदा वाली दिल्लगी इन्हें बताई थी।

(२)

रास्ता भर मैं जिम के रूमाल को सूंघा की। बखुदा, वह रूमाल जिम का है और उसे मैंने सूंघते ही पहचान लिया।

शाहिदा बोली—'चल' आई वहाँ से बातें बनाने वाली। अब किसी चींटे से तू अपना पल्ला बाँध, क्योंकि नाक तेरी अल्लाह रक्खे चींटी की है कि रूमाल में शक्कर लगी थी जो तूने सूंघ ली। ऐसी बातें मुझे जहर ही लगती हैं।

जिमवाली को तो देखो। वह सफा बिगड़ खड़ी हुई। अपने पति के अमिट प्रेम का जो प्रभाव इन पर था और उसके कारण जो आत्मिक विकास उनमें प्रकट हुआ था, उनका विस्तार पूर्वक वर्णन करने समझाने लगीं। इसके उत्तर में शाहिदा बोली—'बहन, तुम तो पत्रों द्वारा निकाह होते ही फरिश्तन और परी हो गईं। आज किसी का रूमाल पा गईं तो उसे सूंघ कर पहचान लिया और कह रही हो कि तेरे मियाँ का है, कल को तुम मेरी जूती ले भागोगी और सूँघ-साँघ के कहोगी कि मैं नहीं देती, मेरे मियाँ की है।'

इस पर शाहिदा से जिमवाली की बहुत-बहुत चोंचें हुईं। बड़ी मुश्किल से शाहिदा को और जिमवाली दोनों को चुप किया। कुछ भी हो। परन्तु इन बातों से उस सच्चे और ईर्षा योग्य प्रेम का पता चलता था जो जिमवाली को अपने अनोखे पति से था। वास्तव में वह पति-प्रेम में बिलकुल मिट कर रह गई थी और इसी कारण से कभी-कभी औंधी बातें भी करती थी। परंतु इसमें उनका अपराध न था, बल्कि अपराध था, उनके पवित्र प्रेम का। इसके बाद फिर जिमवाली ने इस मनोरंजक कहानी के शेष भाग को भी सुनाना आरम्भ किया।

[३]

जिमवाली बोली—'शाम तक इसी रूमाल को देखा और सूंघा की·····

'चींटी कहीं की' शाहिदा ने कटाक्ष किया।

'·····हाँ सूंघा की' जिमवाली तन कर बोली—तू कौन होती है·····शाहिदा चुप रही तो जिमवाली बोली 'शाम को मैं अम्मा से आज्ञा लकर पहुँची। जैसे ही कमरे के सामने पहुँचीं, क्या देखती हूँ कि नजमी चाय पी रहे हैं। प्याली हाथ में है। मैंने कहा 'सलाम आलेकुम' ऐ बहन, उत्तर देने की

जगह वही चाय भरी प्याली इस जोर से भन्ना कर मुझे मारी है कि मैं यदि हट न जाऊँ तो मेरे मुँह ही पर पड़े। मैंने हैरान होकर देखा और कहा 'यह भी कोई बात है! मेरे लग जाती तो।'

इसका (जीनत का) मारे हँसी के बुरा हाल हो गया और मुझे भी हँसी आ गई। वह बोले 'चाय पीयो।' हालाँ कि प्याली एक ही था जो फोड़ मारी थी। इसके पहले कि मैं कुछ बोलूँ एक विचित्र ही घटना घटी। वह यह कि इतने में शामत की मारी शाहिदा आ पहुँची। वह बोली कि इस मसखरे को तुम देख लेना, जो मुझ सरीखी कोई मिल गई, तो जूती से नाक काट लेगी।

जिमवाली बोली—'शाहिदा बराबर वाले कमरे में खड़ी शीशा से झाँक रही थी। दोनों आँखें माथा और इनका सर उन्होंने देख लिया और देखते ही बोले 'अरे! यह कौन है·····कौन है यह!·····।'

मैंने और जीनत ने एक दम से देखा और यह शाहिदा बहन लुप से छिप गईं।

'कौन है यह' नजमी ने एक दम से विचित्र ही प्रकार से झपका कर कहा। 'कौन है यह? पकड़ो इन्हें।' मैंने हँस कर कहा। जिमवाली बोली—'एक हैं ··सखी हमारी' और जीनत ने नाम बताया। सर हिला कर नजमी ने कहा 'अच्छा तो बुलाओ इन्हें ·····कैसी सूरत शकल है इनकी?·····सुन्दर हैं कुछ?'

शाहिदा बोली—'लुच्चा कहीं का। वह इस योग्य थोड़ा ही है कि कोई उसके सम्मुख बहन-भाई का नाता लेकर आये।'

जिमवाली ने कहा—'मुझे हँसी आई और मैंने कहा कि क्यों नहीं, बड़ी सुन्दर हैं।'

नजमी ने कहा—'लाओ फाँस के इन्हें, तो लाओ इन्हें फुसला के। सुन्दर हैं तो लाओ फाँस के·····।'

जिमवाली ने कहा कि यह बातें सुन कर मैं देखती की देखती रह गई। मैंने ऐसी अश्लील वार्ता काहे को सुनी होगी। मैंने उत्तर दिया—'मेरे जायँ दुश्मन। मैं क्यों किसी को फाँस के लाने लगी ? वह तो·····! आप कैसी बातें करते हैं·····।'

'हैं !' नजमी ने अपने सुन्दर और प्रसन्न मुख को उठा कर कहा 'कितनी मूर्ख और सीधी परन्तु सुन्दर लड़की है। अरे लाओ उसे·····जाओ। अरे बिना फाँसे ही सही। मेरा तात्पर्य यह है कि हमारा उनसे परिचय कराओ। यह कह कर मुझे इनके (शाहिदा) पास भेजा।

वह कम्बख्त कोने में खड़ी हँस रही थी। मैंने कहा—'चल' तो वह बोली—'न बहन, मैं नहीं जाऊँगी इसके पास। यह तो बड़ा मुँहफट्ट और बेहूदा है। मैं क्यों इसके सामने आने लगी।' यह कह वह तो सरक गई ओट मैंने अड़ कर कहा कि वह नहीं आती। भाग गई। नजमी ने कहा—'तुमने निकाल दिया·····खैर इसका तुम्हें दंड देंगे कि अपना चित्र न दिखाएँगे। अब आओ, बैडमिन्टल खेलें ?' मैंने कहा—'मैं नहीं खेलती, जब तक आप चित्र नहीं दिखाएँगे।'

'तुम्हें दिखाएँगे, खेलने के बाद। हमारा वादा है।'

मैंने कहा 'खाइए कसम।'

नजमी ने कहा—'तुम्हारे सर की कसम। ऐसे चित्र कि तुम्हारा चित्त प्रसन्न हो जाय, अर्थात् दो सींगों वाला।' यह कह कर अपने सिर पर दो अँगुलियों से सींग बनाये और फिर कहा 'दो सींग वाला' क्योंकि तुम्हारा विचार है कि जब तक चित्र में सींग न हो तुम जिम को मानोगी ही नहीं।' यह कह कर वह मेरा हाथ पकड़ कर बाहर निकले।

[४]

हम तीनों बैडमिन्टन के कोर्ट पर आये। जाल की डोरी नजमी ने इदनी तानी की टूट गई। उसमें गाँठ लगाई, फिर इसके बाद जाल का खम्भा गिरा दिया। इसे ठीक किया तो एक गेंद के सब पर नोच डाले। दूसरी गेंद आई तो एक ओर मुझे और जीनत को खड़ी करके और आप दूसरी ओर खड़े होकर खेलने लगे। एक दो सरविस के बाद ही नजमी ने खेल बिगाड़ दिया। मैं तो गेंद छूने भी न पाई। गेंद वापिस करने को बढ़ी थी कि इतने में जोर से घबड़ाकर चिल्लाये 'कि हैं हैं हैं! तुम्हें जिम की कसम।' मैं रुक गई। तीसरी बार जो फिर यह हरकत की तो मैं बल्ला फेंक कर अलग हो गई कि मैं नहीं खेलती। नजमी ने कहा—'जब तक चार खेलने वाले न हों मैं भी नहीं खेलता) साथ ही नजमी की नजर नीचे वाले कमरे पर पड़ी जिसके द्वार से लगी खड़ी बहन शाहिदा झाँक रही थीं। उसका जी घबरा रहा था, क्योंकि वह अकेले थी और हम दोनों बाहर। नजमी ने उसकी ओर बिना ताके ही कहा—'क्या वह खेलना नहीं जानतीं?' मैंने कहा—'क्यों नहीं, खूब जानती हैं' 'तो फिर पकड़ो इसे, नजमी बोले; 'तुम इसे इधर से जाकर बातों में लगाना और पीछे वाले बरामदे से कमरे के पीछे की द्वार से मैं लेता हूँ। देखो जाने न पाये।'

यह कह कर नजमी बाग की ओर चल दिये और इधर से घूम कर बाईं ओर कमरे से पीछे पहुँचे। और अब मैंने जीनत से कहा कि बहन क्या सचमुच शाहिदा को पकड़वा दोगी।

जीनत बोली—जरूर पकड़वाओ मुरदी को।

जिमवाली ने हँसते हुए कहा कि बहन वह तो उस ओर गये और इधर से मैं और शाहिदा दोनों कमरे की ओर चलीं। बरामदे में द्वार के पास जो हम दोनों पहुँची तो शाहदा ने मुस्करा

कर द्वार खोला। हम दोनों ने द्वार में पैर ही रक्खा था कि बहन शाहिदा, जो कि दुनियाँ भर की हँसोड़ है, हँस कर बोली—'ऐ बहन वह मसखरा कहाँ गया ?'

मारे हँसी के जिमवाली और जीनत दोहरी ही गईं और शाहिदा को अलग मारना शुरू किया। बड़ी मुश्किल से हँसी रोक कर जिमवाली ने कहा कि इधर। तो बहन शाहिदा ने हँसकर यह कहा कि वह मसखरा किधर गया और उधर दूसरी ओर से नजमी ने कमरे में घुसकर कड़क कर कहा—'बन्दा यह हाजिर है।' बस बहन, तुम्हें क्या बताऊँ क्या मजा आया। भागी वह हम दोनों को बुरी तरह ढकेल के। परन्तु मैं गले में हाथ डाल के उसको लपट गई और जबरदस्ती उसको पकड़ लिया। घेर के वह बाहर लाई गई, जिसमें कि खेले परन्तु वह शरीर·····।'

'बन्दी बरामदा ही से छुड़ाकर यह जा वह जा' शाहिदा बोली। और वह मसखरा अपना-सा मुँह लेकर रह गया····· अरे! दौड़ा था कमबख्त मेरे पीछे और मैं गिरते-गिरते बची।' जिमवाली बोली कि बहन यही मेरी कहानी है जो अभी कल घटी है और जिसे सुनाने के लिए मैं तड़प रही थी।

शाहिदा बोली—'ऐ लो! बहन असली बात तो कहानी की यह छिपा ही रही है। इन्हें उस मसखरे ने इनके जिम का असली चित्र दे दिया और अब वह मेरे पास है।'

इस पर मैंने जिमवाली को बहुत ही बनाया। मैं पूछूँ तो वह बताएँ नहीं। कहने लगी—वह तो मसखरे हैं। किसी समाचार पत्र का चित्र फाड़ रखा था। वही मुझे दिखा दिया।' परन्तु शाहिदा भला कब मानने वाली थी। उन्होंने वह चित्र खसोट कर गोली बनाकर फेंक दी थी और शाहिदा उसे ढूँढ़ कर उठा लाई थी। लपक कर वह कागज की एक गोली निकाल

लाई। जिमवाली छीनने लगी। मैंने कहा—'न बहन, मैं जरूर देखूँगी। मैंने देखा तो मारे हँसी के मेरा बुरा हाल हो गया। वह एक बकरे का चित्र था और किसी समाचार पत्र से फाड़ा गया था।

उसके बड़े-बड़े सींग रोशनाई से बने हुये थे। दाढ़ी भी बनी हुई थी और एक आँख उसकी फोड़ दी गई थी। नीचे लिखा हुआ था—'जिम।'

यह मनोरंजक कहानी सुनकर मैं लौटी। रास्ते में जिमवाली ने जीनत से खुशामद करके कहा—'बहन, चित्र हो तो पता लगाना।' जीनत ने पहले ही कह दिया था कि मैंने ट्रङ्क का कोना-कोना देख मारा। कोई दूसरा चित्र ही नहीं है। परन्तु वादा किया कि फिर देखूँगी। मैं घर पहुँची, तो मौलाना को अपने लिए बेचैन पाया।

हँड़िया में नमक फीका

'हँड़िया में नमक फीका' जोर से शाहिदा ने कहा 'कल्लो बहन।' शाहिदा ने फिर कहा और एक आवाज और दी—'हँडिया में नमक फीका।' अब मैंने भी मुड़कर देखा, साँवली रङ्ग की भोली-भाली सूरत वाली, जिसके मुख पर अत्यन्त लावण्य और निखार था अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में हर्ष का सन्देश लिये और होठों से मुस्कुराती हुई धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ी। उन्होंने शाहिदा की ओर दृष्टि जमाये मुस्कुराते हुए धीरे से कहा—'सलाम अलेकुम।' मैंने भी उत्तर दिया। बहन शाहिदा जान-बूझ कर अपने को एक और मसखरी से बातें करने में तन्मय दिखाना चाहती थीं।

मैंने तअज्जुब से खातून के प्रसन्न-मुख को देखा। वही खातून, जो कुम्हलाये हुए पुष्प की तरह मुझसे मिलने आई थीं और जिनके नालायक पति ने उनके लिए उनका घर नर्क समान बना दिया था। पिछली बार मुझसे मिली थीं, तब उनका क्या हाल था और आज ? आज तो उनके सुन्दर मुख पर तेज की बिजलियाँ चमक रही थीं।

शाहिदा की ओर उन्होंने एक दम से प्रसन्न होकर देखा। वह शाहिदा के निकट ही खड़ी थीं और उन्होंने एक विचित्र प्रकार से कहा—"ममखरी कहीं की।" और मेरे देखते-देखते उन्होंने एकदम से अपने दोनों हाथ पीछे से शाहिदा बहन के गले में प्रेम से डाल दिये और कन्धे पर सर रखकर शाहिदा को पकड़ कर हिला मारा।

शाहिदा ने झटका देकर कहा—'उँह' दीवानी हुई है लड़की·····छोड़·····मुझे।' यह कह कर शाहिदा ने अपने को छुड़ाया और वह झूम कर शाहिदा के सम्मुख आ गईं।

शाहिदा ने खातून की सुन्दर आँखों में आँखें डालकर कहा—'घूर कैसी रही है गोल दिही।'···खातून ने चंचलता से कहा 'मैं यह देख रही हूँ कि आज तुम्हारी सज-धज क्या है! यह सूझी क्या है।' शाहिदा ने भोलेपन से कहा—'सूझी क्या है ?' उनकी ओर देखा फिर मेरी ओर, और फिर अपनी हुलिया की ओर देखकर हँस दीं।

बहन खातून ने कहा—'मसखरी कहीं की! नित नये ढोंग रचाने आते हैं तुझे।'

वास्तव में बात यह थी कि इस नगर में व्याह की एक महफिल थी और अपनी नित का पहनाव छोड़ कर शाहिदा, पुराना चाल के कपड़े पहनकर आई थी और फिर गहना भी बिल्कुल उसी प्रकार का था जिसको हम वास्तव में 'गहना

पाता' कह सकते हैं। न जाने किससे माँग लाई थी। इस सज-धज पर शायद जान बूझ कर सुरमा भी ऐसा लगाया था कि फैल कर रह गया था और पान पर पान इतने अधिक खाये थे कि सम्पूर्ण मुख लाल हो रहा था।

शाहिदा ने खातून से कहा—'मेरी धज को तो जाने दो, अपनी कहो। यह तुम्हारी आँखों में आज परियाँ कैसी नाच रही हैं।'

शाहिदा का इस प्रकार का प्रश्न ठीक भी था, क्योंकि खातून के मुख पर आज मुहर्रम की जगह ईद का अखाड़ा जमा हुआ था।

खातून इस प्रश्न से और भी जगमगा उठी। एक मुस्कुराहट का पुष्प उनके मुख पर खिल कर रह गया। जो उनके विषय में अच्छी तरह जानता था, वह इसके अर्थ लगा सकता था। अतः शाहिदा ने वही अर्थ लगाये और बोली—'जान पड़ता है कि कुछ रुपया तुम्हारे बाबा ने तुम्हारे नाम कर दिया है।'

बात वास्तव में यह थी कि जब खातून के पति ने उनसे रुपया लिया था, तो यह कुछ दिन तक अपने मियाँ को रुपया देकर ख्वामख्वाह प्रसन्न होती फिरी थीं। मेरी ओर शाहिदा मुँह करके बोली—"इनसे भी अधिक मूर्ख कौन स्त्री होगी। उठाया और मियाँ को रंडी-बाजी के लिए रुपया दे दिया।"

खातून ने हँस कर डाँटा—'तू कौन? हाँ दे दिया हमने! अपना मियाँ था, दे दिया। किसी गैर को तो नहीं दे दिया।'

शाहिदा ने कुछ गम्भीरता से उत्तर दिया—'गैर को दिया होता तो फिर भी लाख दर्जे अच्छा था। अब पछताती तो होगी अपनी मूर्खता पर।'

एकदम से खातून गम्भीर तथा कुछ भयभीत-सी होकर

बोलीं—'परमात्मा साक्षी है जो मुझे तनिक भी दुख हुआ हो! कभी जो पछताई हूँ! कभी जो ध्यान आया हो! बल्कि चित्त और प्रसन्न होता है।'

शाहिदा ने कहा—'भाड़ में जाय ऐसा चित्त। पत्नियाँ न हुईं, नौकरानियाँ हो गईं।' खातून कुछ बोलने ही को थीं कि किसी ने आकर कहा कि तुम्हारी सास बुला रही हैं। वह 'अरे' कहकर उठीं, जैसे कुछ भूल-सी गई थीं। 'अभी आई' यह कह कर हवा हो गईं।'

[५]

बहन शाहिदा बोलीं—'देखा तुमने इन लोगों को! देखा तुमने! यह सब बातें और फिर इनकी यह करतूत! न बाबा! मुझसे ऐसे लोगों से कैसे बनेगी। इनसे जरा पूछो तो कि कौन लड़की ऐसे घर में जाना पसन्द करेगी। आज इन्हें अच्छी तरह झाड़ूँगी।'

वास्तव में बात यह थी कि खातून अपने भाई अबुलहसन साहब का ब्याह शाहिदा के साथ करना चाहती थीं। यह बात मेरे आने से बहुत पहले की है। शाहिदा की बात-चीत दूसरी जगह पक्की हो जाने से मामला रफा-दफा हो गया था। अब शाहिदा बहन के पटवारी की मृत्यु के बाद खातून और उनकी माँ फिर इस मामले को छेड़ रही थीं।

मैंने शाहिदा से कहा—'खातून के मियाँ और भाई से क्या सम्बन्ध। खातून के मियाँ तो हैं असभ्य और लंठ, परन्तु भाई विद्वान और होनहार नवयुवक थे।' इस पर शाहिदा बोलीं कि बहन तुम जानती नहीं हो कि वह भी अव्वल नम्बर का मूर्ख है और फिर सूरत-शकल तो गुलामों की-सी है।

इसके बाद फिर इस पर बातें हुईं कि आखिर आज खातून इतनी प्रसन्न क्यों है? क्या मामला है? इस बात का पता

लगाना चाहिए। शाहिदा का ख्याल था कि उनके मियां ने अधिक से अधिक घर में से उनके द्वारा जूता मँगवा लिया होगा, या फिर कमीज में बटन टँकवा लिया होगा। बस खातून इसी में प्रसन्न हो जाती हैं।

मैंने सहानुभूति दिखलाते हुए कहा—'अपने मियाँ को बिचारी अत्यधिक चाहती है' शाहिदा भी पसीज कर बोलीं—'चाहती तो वास्तव में अत्यधिक है, परन्तु मेरी समझ ही में नहीं आता कि ऐसे बदमाश और क्रूर पति से कैसे इन्हें इतना प्रेम है। मेरा बस चले, तो ऐसे को फाँसी दिलवा दूँ।' 'किसे' एकदम से पीछे से खातून बोलीं—'यह किसे फाँसियाँ मिल रहीं हैं? यह किस गरीब पर जुल्म ढाया जा रहा है?'

शाहिदा और मैंने मुड़कर देखा, शाहिदा चुप-सी हो गई, परन्तु खातून तो आज गुलाब के फूल को मात कर रही थी। इधर शाहिदा घबरा-सी गई कि कहीं खातून ने पूरी बात तो नहीं सुन ली और उधर खातून ने शाहिदा के गर्दन में हाथ डालकर चुपके से कहा—'किसे फांसियाँ मिल रहीं हैं।' किसे घायल कर रही हो भाभी 'जान'। 'चल' बिगड़कर शाहिदा ने झटका दिया 'बेहूदी नहीं तो। कलूटी कहीं की·····फिर वही असभ्य बातें····· बेहूदी।'

खातून को यह कुछ बुरा-सा लगा और उन्होंने शाहिदा के क्रोध भरे मुख को बड़े ध्यान से देखा, फिर मुस्करा कर बोलीं—'ओ हो!·····इतनी बिगड़ती हैं!·····

'जी हाँ' शाहिदा ने कहा—'मुझे मालूम है! सब मालूम है मुझे·····फिर वही मूर्खता हो रही है·····बहन खातून मैं दिल्लगी नहीं करती। परन्तु यह अच्छी बात नहीं है। अच्छा नहीं होगा·····खूब समझ लो।'

खातून हँसती हुई बोलीं—'खूब समझ लिया है, खूब समझ लिया है।'

शाहिदा ने विषाक्त दृष्टि से देखकर खातून से कहा—'मुझे तुम्हारे घराने से और ढङ्गों से घृणा है।'

खातून तनिक भी अप्रसन्न न हुईं, परन्तु कुछ ताना मिले हुए शब्दों में बोलीं। 'सुबहान अल्लाह! सारे संसार से तुम्हें घृणा है। ऐसा स्वभाव! फिर बहन तुम्हारे लिए कोई देवता तो आकाश से उतरने से रहा। क्या किसी देवता से करोगी।' यह कहकर खातून ने एक बनावटी हँसी के साथ कन्धा पकड़कर शाहिदा से फिर पूछा—"क्या किसी देवता के साथ ब्याह करोगी?' तेज होकर शाहिदा बोलीं—'देवतों से नहीं तो फिर जलकौवों से भी नहीं करूँगी। तुम धन कुबेर कारूँ की बेटी हो तो हुआ करो और हम गरीब हैं तो क्या हुआ। किसी ने खूब कहा है—'अल्लाह रक्खे, आवाँ का आवाँ ही बिगड़ा है। ऊँट की कौन बैठक सीधी·····'सूरत न शकल भाड़ में से निकल' यही हाल बहन तुम्हारा है कि चली वहाँसे बीबी मेढ़की जान, कि हमारे भी नाल ठोंक देना।'

शाहिदा के यह कटु वचन सुनकर खातून के हृदय में कुछ आघात पहुँचा और उन्होंने मुरझाये हृदय से कहा—'बहन, तुम तो बिगड़ गईं।'

'बिगड़ने की बात ही है बहन' शाहिदा गम्भीर होकर बोलीं—'तुम्हीं न्याय करो कि पहले मैं तुम्हारी खुशामद कर चुकी थी और लो, अब फिर हाथ जोड़ती हूँ। परन्तु तुम हो कि मानती ही नहीं हो, सर पैर का जोर लगा रही हो····· अच्छा खाओ कसम·····अपने भाई के सर की कसम कि फिर वही करतूत नहीं कर रही हो।'

खातून बोली—'फिर कोई पाप तो नहीं कर रही हूँ। मैं क्यों झूठी कसम खाऊँ। हाँ कर रही हूँ।'

'तुम्हें कदापि ऐसा न करना चाहिए।'

'यह कैसे सम्भव है', खातून बोली 'तुम्हारे बगैर तो मेरे भाई का जीवन ही नष्ट हो जायगा और.....।'

'मत बेहूदा बको,' बिगड़ कर शाहिदा बोली,—'मेहरबानी करके आप मुझसे दूर रहें, मैं नहीं बोलती आप से।'

खातून ने शाहिदा के सुन्दर मुख को देखते हुए इतनी खुशामद से कहा कि बयान से बाहर है। 'मेरी बहन.....मेरी शाहिदा.....खुदा के लिए.....।' यह कहकर शाहिदा के गले में बाहें डाल दीं और बड़े प्रेम से बोलीं—'तुम मुझसे नाराज हो गई!' यह कह कर अपना सर शाहिदा के कन्धे पर प्रेम से रख दिया 'तू मुझसे नाराज हो गई' उन्होंने फिर दुखित होकर कहा।

'मुझे यह चोंचलें नहीं आते हैं' शाहिदा ने भवें सिकोड़ कर अपने को छुड़ाते हुए कहा—'मैं नाराज-वराज बिलकुल नहीं परन्तु तुम ये बेहूदी बातें छोड़ दो।'

खातून किस प्रेम से शाहिदा के क्रोध को सहन कर रही थी और क्यों न हो अपने भाई की ओर से वह शाहिदा की प्रेमिका बनीं थीं। मुझे सम्बोधित करके बोलीं 'देखती हो, इस चंचल को। जानती है कि एक आदमी किस तरह इससे ब्याह करने पर मिटा हुआ है और फिर यह भी अच्छी तरह जानती है कि तीस हजार का नकद मेहर अदा होगा। एक कोठी मुँह दिखाई में मिलेगी। मोटर सवारी को और पति विद्वान अत्यधिक चाहने वाला, सर आँखों पर बिठाएगा और फिर.....।"

शाहिदा जलकर बोली—"एक तुम्हें लोग सर पर रक्खे

फिर रहे हैं और एक मुझे सर पर रक्खेंगे। रहा तुम्हारा रुपया तो बहन यह तो तुम्हें धोखा है कि रुपये के जोर से सब कुछ करा लोगी। न बहन, न तो मुझे नकद मेहर चाहिए और न चाहिए मुझे कोठी और कोठा। तुम जाओ और किसी अप्सरा से अपने भाई का ब्याह करा लाओ। परन्तु परमात्मा के लिए मेरे ऊपर कृपा करो! दया करो! मैं घुटनों तक हाथ जोड़ती हूँ।"

"अप्सरा हो से करूँगी! अप्सरा·····अप्सराओं को अप्सरा से, उँगली से शाहिदा को छेड़ कर खातून बोली—और उठते-उठते छेड़ती गई—'भाभी जान' प्रसन्न होकर और मुस्कराहट से छेड़ते हुए उन्होंने शाहिदा की ओर उँगली मटका कर कहा—"अप्सरा से करूँगा" यह कह कर वह फिर गायब हो गई।

शाहिदा कट-कट के बुरा कह रही थी। हम दोनों खाने के लिए उठीं। शाहिदा ने मुझसे कहा—'जरा पता तो लगाना कि यह खातून आज इतनी प्रसन्न क्यों है?'

[३]

भोजन समाप्त हो गया, तो मुझे भी खातून से बातें करने का अवसर मिला। वह अत्यन्त प्रसन्न थीं। मैंने कारण पूछा, तो मालूम हुआ कि प्रसन्नता का कारण भी एक विचित्र ही है अर्थात् यह कि इनके मियाँ ने अपनी वेश्या के लिए इनसे भोजन बनवा लिया। मैंने उनके प्रसन्न-मुख को देखा कि किस प्रकार यह अपने आवारा और कुचाली मियाँ को चाहती थीं। इनके प्रेममय शब्दों से उस सच्चे प्रेम का पता चलता था, जो इनको अपने अयोग्य पति से था। कितनी लाचारी से इन्होंने कहा—'बहन' लाख दिल को समझाती हूँ और जी चाहता है कि घृणा हो जाय। बिगड़ भी जाती हूँ। हृदय में निश्चय कर लेती हूँ कि अब कोई सम्बन्ध न रक्खूँगी। परन्तु जहाँ

मुख देखा, बस रोना-सा आ जाता है।' यह कहते कहते एक दम से उनकी आँखें डबडबा आईं। तुरन्त उन्होंने मुँह पोंछ कर फिर वही प्रसन्न मुख बना लिया।

इसके बाद उन्होंने अपने भाई की बातें शुरू की, मानों प्रोपेगेन्डा शुरू किया। सबसे पहले तो उनकी विद्या, योग्यता और भावी उन्नति पर एक लेक्चर दिया फिर यह बताया कि किस प्रकार वह शाहिदा से अदृश्य प्रेम करने लगे। शाहिदा की बातें, उसकी मनोरञ्जक शरारतें और उसकी गाने की निपुणता का वर्णन अपनी बहन के मुख से सुनते रहे। आखिर शाहिदा से उनको इस प्रकार प्रेम हो गया कि ब्याह का संदेशा भेज दिया। फिर उस ब्याह की धुन में उनके मूर्खतापूर्ण व्यवहार को देखिए।

खातून की जबानी मालूम हुआ कि कहीं शाहिदा पयानो के लिए बेचैन रहती है। अब वे तल्लीनता से इस बात पर अड़े हैं कि कहीं से पयानो मिल जाय। इसका इलाज उन्होंने यह सोचा कि बगल में पयानो की सूची दबाये फिरते हैं। यह बहुत पहले की बातें थीं। अब शाहिदा के पटवारी के मरने पर कुछ बासी कढ़ी में उबाल आ गया। कहाँ तो खातून अपने ही दुःख में अलग-अलग एक कोने में मकड़ी की तरह मुँह दिये पड़ी रहती थी और अब जरा से बहाने पर भाई का ब्याह तय करने के लिए सारे दुख और क्लेश को छोड़ कर प्रोपेगेन्डा करने उठ खड़ी हुई। मुझे तमाम ऊँच-नीच समझाने लगी और अच्छी तरह समझाया कि उनके मियाँ के स्वभाव से उनके भाई का कोई सम्बन्ध नहीं।

फिर शाहिदा की भलाई के लिए मुझसे कहा कि शाहिदा को अच्छी तरह समझाना और राजी करना। मैं सब कुछ सुनती रही और वादा भी किया कि तुम्हारे भाई के लिए कोशिश

करूँगी। फिर कुछ उनके मियाँ के सम्बन्ध में पूछना चाहा, तो उनको कुछ हिचकिचाहट-सी मालूम पड़ी। इस कारण मैंने बात को वहीं समाप्त कर दिया। मैंने भी हृदय में कहा कि आदमी को प्रसन्नता चाहिये, वह चाहे जिस कारण से हो।

इसके बाद फिर शाहिदा से खातून की मुलाकात हुई। शाहिदा ने मेरे मुख से जो उनकी बातें सुनीं तो उनके साथ और भी बुरा बर्ताव किया। 'न बहन, मुझसे वेश्याओं के लिए खाने नहीं पकेंगे। तुम अपने भाई के लिए कोई स्त्री मोल मँगवा लो।' तुम्हारी भाभाजान तुम्हारा भी हाथ बटा लिया करेंगी। सारांश यह कि इसी प्रकार से शाहिदा ने खातून के ऊपर बहुतेरे वाक्य-प्रहार किये। परन्तु खातून की यह दशा कि शाहिदा की प्रत्येक असभ्यता को वह सभ्यता और दिल्लगी समझ कर फड़क उठती। नाराज होने की जगह वह आनन्द से खिल गई और चलने चलते शाहिदा का हाथ पकड़ कर बोलीं—'बहन, तुम चाहो कि इन बातों से मेरा प्रेम जाता रहे, तो यह असम्भव है। मैं तुम्हें कदापि न छोड़ूँगी और तुम्हें भाभीजान बना के रहूँगी।'

'चल' शाहिदा ने हाथ झटक कर कहा—'होश में आती है कि नहीं। आई वहाँ से भाई की चहेती। मुझसे आज से बात भी की तो मुझसे बुरा कोई न होगा।'

खातून ने मुस्कुराते हुए विचित्र ढङ्ग से शाहिदा की ओर देखा। शाहिदा आगे बढ़ी तो उन्होंने मुझसे मुस्कुराकर कहा—'चिराग लेकर ढूँढ़ा है बहन मैंने इसे! छोड़ूँगी थोड़े। कह देना तुम।'

इस प्रकार खातून ने मानों जिहाद का झण्डा खुल्लम-खुल्ला ऊँचा कर दिया।

गुलाब जामुन

गुलाब जामुन भी एक विचित्र मिठाई है, परन्तु अच्छी बनी हो। खराब गुलाब जामुन तो वह होती है जो देखने में तो लाल और अच्छी होती है परन्तु भीतर से कठोर और ठोस बल्कि बहुधा ऐसी कि भीतर बिलकुल सूखी, शीरा तक नहीं सोखता। अच्छी गुलाब जामुनें वह जो बड़ी बड़ी और देखने में अत्यन्त ही लाल, कोमल ऐसी हो कि शीरा में डाली जाती हैं तो उनकी नस-नस में मधु-सा बैठ जाता है। भीतर तक रेशे-रेशे में मिठास भर कर रह जाती है। यह इतना कोमल होती है, कि वर्णन से बाहर, अत्यन्त ही मीठी, अत्यन्त ही स्वादिष्ट, ऐसी कि बस आत्मा प्रसन्न हो जाय। यहाँ ऐसी ही एक बड़ी सी गुलाब जामुन का जिक्र है जो अत्यन्त रसीली और मीठी और अनुमान से अधिक कोमल थी। इतना कुछ तो गुलाब जामुन के बारे में। अब तनिक शाहिदा के छोटे मामा के ब्याह का मनोरञ्जक····· बल्कि आवश्यक वर्णन सुनिये।

शाहिदा का साथ! रेल की यात्रा! स्वतंत्रता, शरारतें और असभ्य व्यवहार! परन्तु यहाँ तो केवल एक अनुमान से अधिक कोमल गुलाब जामुन की कहानी है।

[१]

स्टेशन निकट आ रहा था। गाड़ी की चाल हल्की होते ही हम सब में खलबली-सी मच गई। खालाजान ने कहा 'लड़कियो, खुदा के वास्ते अब तो बुरका पहन लो' क्योंकि परमात्मा की कृपा से हम दोनों ने अपने अपने बुरके उतार कर रख दिये थे और रास्ता भर पढ़े-लिखे और भलेमानुस

यात्रियों के दृष्टि-बाण का लक्ष बनना अत्यन्त उपेक्षा से स्वीकार किया था।

जल्दी-जल्दी हम दोनों ने बुरके पहने। गाड़ी प्लेटफार्म पर पहुँची। मैंने और शाहिदा ने झांक कर बाहर देखा। गाड़ी रुकी और शाहिदा के बड़े मामा दौड़कर हम लोगों की गाड़ी के निकट आये। कुलियों और यात्रियों की चिल्ह-पुकार और हम बरातियों की घबराहट और अन्धाधुन्ध देखने योग्य थे। जल्द जल्दी असबाब उतरने लगा। शाहिदा के साथ मैं भी उतरी। मामा साहब ने प्लेटफार्म की दीवार की ओर उँगली उठाकर कहा कि वेटिंगरूम में चली जाओ। शाहिदा के साथ साथ मैं भी उधर ही तेजी से बढ़ी। बहुत जल्द हम दोनों दाहिनी ओर बहक गईं

यहाँ मैं यह बताना चाहती हूँ कि न तो मुझमें वह तेजी है जो शाहिदा में, न मेरी वह हिम्मत है जो शाहिदा की; और न मैं इतनी निडर हूँ जितनी की शाहिदा और न फिर उतनी शरीफ।

'अरी कम्बख्त यह देख उसको' शाहिदा ने एक बड़े मोटे और जबरदस्त लाला जी की ओर संकेत किया जो एक वीभत्स कुप्पे की तरह इधर ही लुढ़के चले आ रहे थे। मैंने उन्हें बड़े ध्यान से देखा। मैंने इतना भद्दा और मोटा आदमी कभी नहीं देखा था। मैं उन्हें देखती की देखती रह गई। इतने में वह बराबर आ गये और मैं रुक गई कि वह निकल जायँ। जैसे ही वह मौके से करीब आये हैं कि इस कम्बख्त शाहिदा ने बराबर से मुझे ऐसा चुपके से ढकेला कि मैं हाथ में बुरका छोड़कर लाला जी के ऊपर गिरी। कैसी मैं अलहदा हुई हूँ कि बयान से बाहर और इतना बदहवासी के साथ कि एक

ओर किसी से लड़ गई और कतरा कर बाल-बाल बची। नहीं तो ठेले से मेरे बड़ी गहरी चोट लगती।

मेरे होश जाते से रहे और मैंने बिगड़ कर शाहिदा से कहा—'कम्बख्त, खुदा तुम्हें समझे। भला यह बेहूदगी पसन्द नहीं है।'

इधर मेरा तो यह हाल और उधर शाहिदा हँसी के मारे बुरका में फूली न समाती थी। वह हँसी के मारे बेताब हुई जा रही थी। 'कैसा मैंने नरम-नरम गद्दे पर ढकेला है, यह कह कर वह हँसी के मारे बेहाल रही थी। मैं उसके बराबर आ गई। हम दोनों दीवार के पास ही थीं और समझ ही में न आता था कि वेटिङ्गरूप का कौन सा दरवाजा है, यह या वह। 'वह है' शाहिदा ने कहा। मैं उसके बराबर थी और मैंने समझा कर शाहिदा से कहा—'बहन, इस प्रकार की दिल्लगी बड़ी निर्लज्जता और असभ्यता है। यह कोई सभ्यता नहीं। भला कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?'

मैं यह लेक्चर देती हुई वेटिङ्गरूम के दरवाजे के पास ही पहुँची थी कि क्या देखती हूँ कि रेलवे से एक भड़कीले नव-युवक शोषक दृष्टि से, टेढ़ी तिरछी माँग निकाले, कुछ विद्यार्थियों की-सी धज से फाख्तई रङ्ग की शेरवानी पहने, टोपी हाथ में लिए, बिकलता मुख पर लिखित, बौखलाए शाहिदा के बाईं ओर चले आ रहे हैं, मानों कि यह भी वेटिंगरूम में जाना चाहते हैं।

तुरन्त मुझे ध्यान आया कि कहीं यह मर्दाना वेटिंगरूम तो नहीं। मैंने बुरका के भीतर ही जाली में से देखा और शाहिदा से चुपके से कहा 'यह तो मर्दाना है।' इधर शाहिदा मुड़ी और यह महाशय अत्यन्त इज्जत के साथ मानो हम लोगों के कारण

अपनी तेजी से रुक गये और चाहा कि हम दोनों निकल जायँ। मेरी बुद्धि तो देखो कि कहाँ तो इस असभ्यता पर शाहिदा को डाँट रही थी और कहाँ जो मैंने अवसर देखा तो अपनी कोहनी जो शाहिदा से भिड़ के लगाई है तो शाहिदा इन जेंटिलमैन के ऊपर जा गिरी और वह भी इस प्रकार कि कोई अनुमान भी न कर सके अर्थात यह कि हाथ से बुरका तो पकड़े ही थी, लगा जो मेरी कोहनी का जोर से धक्का, तो इधर तो पैर डगमगाए और उधर हाथों का 'बैलेंस' बिगड़ा। परिणाम यह हुआ कि बुरका की टोपी हाथ के हाथ, बुरका सहित खिचकर कन्धे पर पहुँची और चांद-सा मुखड़ा सामने, और फिर खुले बन्दो प्लेट-फार्म पर! जबर्दस्ती इन महाशय से ईद मिलनी पड़ी।

इन महाशय को भला यह कुअवसर की ईद कब सहन थी और वह भी खुले बन्दो स्टेशन पर। नतीजा यह कि गले मिलना उन्हें इतना नापसन्द आया कि उन्होंने बौखलाकर शाहिदा को इस बुरी तरह अलग फेंका है कि बयान से बाहर। शाहिदा तो घुटनों के बल गिरी और यह महाशय टोपी झटक कर यह जा वह जा।

अब मुझे मालूम हुआ कि स्टेशन पर इस प्रकार की शरारत कितनी अच्छाई से सम्भव है। कोई मालूम ही नहीं कर सकता कि क्या मुसीबत आई। एक तो प्रत्येक मनुष्य अपनी झंझट में फँसा होता है फिर इस सफाई से धक्का दिया जाना सम्भव है कि कोई जान ही न सके कि यह शरारत है या केवल घटना मात्र।

मैं जनाना वेटिंगरूम में दरवाजे के पास पहुँची थी। अब मेरा भी वही हाल था जो शाहिदा का। मैं हँस रही थी और वह सुलग रही थी। 'कहो बहन' मैंने कहा 'और शरारत करोगी?' 'रह जा' शाहिदा बोली, 'न तुझे अब की किसी ढीठ

पर ढकेला हो।' फिर हँस कर बोली सोचता तो होगा कि यह कौन कम्बख्त .....अरी! और वह तेरा बनियाँ। वह क्या सोचता होगा दिल में। यही कहता होगा कि साइत अच्छी है। सुबह-सुबह एक सुन्दर छोकरी आकर तोंद से लिपट गई। तेरे भाग्य अच्छे थे कि वह ढम्मा का ढम्मा था। जिसमें हिलना-डुलना भी कठिन था। नहीं तो तुम भी गिरती।'

मैंने कहा 'मुझे तो मेरे बनियाँ बेचारे ने देखा तक नहीं। परन्तु हाँ, यह तेरा वाला निश्चय कहता होगा कि अच्छी का मुँह देखा।'

शाहिदा बोली—'कम्बख्त ने कैसा उठा के मुझे फेंका है कि मेरा घुटना छूट गया, जलन हो रही है।' बराबर से खालाजान और बड़ी भाभी भी आ गईं और हम सब ने वेटिंगरूम में प्रवेश किया।

[२]

वेटिंगरूम के दरवाजे पर मोटरें आ कर लग रही थीं। मैंने और शाहिदा ने सलाह की कि किसी ऐसी मोटर में बैठें जिसमें कोई बड़ी बूढ़ी न आ सके। तीसरे नम्बर पर छोटी मोटर लगी थी। मैंने शाहिदा को तुरन्त संकेत किया और हम दोनों झट उसी में बैठ गईं। केवल दो ही की जगह थी और इतमीनान था कि अब इसमें कोई न आयेगा!

इस मोटर में केवल दो छोटे-छोटे मोढ़े थे और सफेद चारों के पर्दे अच्छी तरह बँधे हुये थे। बहुत जल्द मोटर ड्राइवर आ गया। एक और कोई आया। दोनों में परस्पर बातें हुईं और यह निश्चय हुआ कि शहर के बजाय बाहर वाली सड़क से जल्दी निकाल ले चलो। गाड़ी स्टार्ट हुई कि बड़े मामा

फिर मोटरें देखते हुए आये और यह जान कर कि सब ठीक है, चल दिये।

हमारी छोटी-सी मोटर एक्कों और टाँगों की भीड़ भाड़ से निकल कर साफ सड़क पर आई और फिर जो हमारे अनाड़ी ड्राइवर ने साफ सड़क पर बेतहाशा छोड़ा है तो मजा ही आ गया। हवा का फर्राटा पर्दों को फाड़े डालता था और थोड़ी ही देर के बाद इस हवा की तेजी से वह आगे का पर्दा जो हमारे और ड्राइवर के मध्य में था और जो आगे वाली कुर्सियों के तकिये में बंधा था, हवा के फर्राटे से खुल गया। इसके प्रथम कि वह खुल जाय मैंने झट से दोनों हाथों से पर्दा को उसी स्थान पर दबा लिया और शाहिदा से कहा कि 'बहन मैं पकड़े हूँ तुम बाँध दो।' 'मुझे क्या मालूम कि शाहिदा पर शरारत का भूत सवार है। उसने जो देखा कि मेरे दोनों हाथ फँसे हुए हैं और पर्दा नहीं छोड़ सकता तो बजाय बाँधने के उसने मुझे गुद-गुदाना शुरू किया।

'अरी कमबख्त' मैंने हँसी रोकते हुए चुपके से कहा—"मैं छोड़े देता हूँ" "छोड़ दे" शाहिदा ने लापरवाही से कहा और फिर मेरी ओर गुदगुदाने के लिए उँगली लपलपा कर दौड़ाई। मैंने हार मानी और चुपके से उसके कान से मुँह मिला कर 'चीं' बोल दी। शाहिदा ने चुपके से कहा 'खैर अब तो तू चीं बोल गई इसलिए गुदगुदाऊँगी तो नहीं, परन्तु तूने मुझे ढकेला था। अतः उसका यही दण्ड है कि अब इसी प्रकार पर्दा को पकड़े बँधी रहो।

वास्तविक बात यह थी कि पर्दा इस बेतरह खुला था कि यदि एक भी हाथ हटाती तो पर्दा उड़ कर बाहर के दोनों बैठने वालों को समेट कर मोटर के दोनों भागों को एक कर देता।

मैं सोच ही रही थी कि क्या करूँ। कैसे पर्दा बाँधूँ। मैंने

शाहिदा से चुपके से कहा—'बहन, बाँध दे।' परन्तु वह न मानी। मैंने कहा 'यदि तू मेरी जगह होती तो क्या करती।' कहने लगी 'मैं तो छोड़ देती पर्दा को।' और निश्चय यह है कि यदि वह मेरी जगह होती तो वाकई छोड़ देती। बस यही मुझमें और शाहिदा में अन्तर था।

मैं सोच ही रही थी कि एक और घटना हुई।

मैंने कोशिश करके पर्दा को एक हाथ से काबू में करके अपना बायाँ हाथ छुड़ा लिया। अब मैंने जो पर्दा बाँधने की कोशिश की, तो क्या देखती हूँ कि पर्दा जो ऊपर को सिमटा तो उसमें से ड्राइवर की तुर्की टोपी का फुन्दना उसकी सीट की तकिया पर से लटकता हुआ नजर आया। अब उसे जो शाहिदा ने देखा तो मुझे धमकी दी कि यदि तूने पर्दा दूसरे हाथ से बाँधा तो मैं टोपी का फुन्दना खींचती हूँ। इधर मैंने पर्दा की ओर हाथ बढ़ाया और उधर उसने फुन्दने की ओर। मैंने उसका हाथ रोका तो उसके दोनों हाथ स्वतन्त्र थे। उसने अपना दूसरा हाथ मुझे गुदगुदाने को बढ़ाया। पर मेरा हँसी के मारे अलग बुरा हाल था। अब मैं तनिक घबराई और मैंने दिल में कहा कि या मेरे अल्लाह! आज इसे क्या हो गया है।

मैंने गुदगुदी को तो हिम्मत करके सहन किया और चाहा कि जल्दी से पर्दा बाँध दूँ। शाहिदा ने जो यह देखा, तो उसने झट से टोपी का फुन्दना पकड़ा लिया। मैं घबरा गई और मैंने परेशान होकर उससे कहा—'खुदा के लिए बहन तू फुन्दना छोड़ दे, ले मैं हाथ हटा लेती हूँ।' यदि फुन्दना मेरी ओर न लटकता होता तो शायद मैं परवाह न करती। मैं जानती थी कि शाहिदा फुन्दने को मुट्ठी में इस तरह लिये हुए है कि ड्राइवर सिर हिलाए तो इससे पहिले ही वह छोड़ दे। परन्तु

फिर भी मुझे सन्देह था कि यदि एक दम से झटके के साथ उसका सर हिला तो क्या होगा।

मेरा घबड़ाना बिल्कुल उचित था। परमात्मा की विचित्र महिमा है कि कभी-कभी आदमी जो सोचता है वही हो जाता है। एकदम से एक तोप का-सा गोला छूटा। एक झटका लगा, मेरे और शाहिदा के मुँह से एक चीख निकली। पर्दा मेरे हाथ से फड़फड़ा कर निकल गया। शाहिदा उन्हीं महाशय की टोपी का फुन्दना पकड़े हाथ में लटकाये हुए थीं जिन पर मैंने उन्हें ढकेला था। मोटर रुक चुकी थी। ड्राइवर ने कसम खाने को तो अपनी टोपी की तरफ देखा। फिर जल्दी से उधर वह उतरे मोटर से, और इधर मैंने पर्दा ठीक किया। शाहिदा ऐसी विकल थी कि अब टोपी उसी तरह लटकाये थी। मैंने कहा—"मुर्दी फेंक टोपी जल्दी से।" मैंने जल्दी से टोपी लेकर ड्राइवर की सीट पर डाल दी। अब मैंने शाहिदा को मारना शुरू किया कि ले कमबख्त, तू मुझे जलील करती थी। मैं प्रसन्न थी कि अच्छा हुआ कि दोनों मर्दों ने इसे देख लिया कि इसने ही ही टोपी झपट ली है।

ट्यूब फट गया था। जल्दी-जल्दी पहिया उतार कर दूसरा चढ़ाया गया। मुझे और शाहिदा दोनों को बड़ा आश्चर्य था कि यह कौन है। हमारा ड्राइवर तो वही आदमी है जिस पर मैंने प्लेट-फार्म पर शाहिदा को ढकेला था। हम दोनों ने अनुमान लगाया कि हो न हो, यह भी दुलहिन के सम्बन्धियों में से होगा। मोटर ने तुरन्त हम लोगों को निश्चित स्थान पर पहुँचा दिया। हम लोग एक बहुत बड़े मकान में ठहराये गये थे। बस नाश्ता चुना ही जा रहा था, जब हम पहुँची हैं।

[३]

दुलहिन वालों के यहाँ जब जाने का समय आया तो एक

ने एक से बढ़-बढ़कर वस्त्र निकाले। शाहिदा ने अपना सबसे अच्छा नये फैशन वाला जारजेट का धानी जम्पर निकाला और उसी के जोड़ का धानी रङ्ग का दुपट्टा जिस पर जयपुरी चुन्दगी छपी हुई थी और इस्तम्बोली बेलें टँकी हुई थीं। जम्पर में जगह-जगह इमीटेशन और सच्चा काम और मोती टँके हुए थे। उसी रङ्ग की साटन का सलवार पहिन कर बहन शाहिदा तो सचमुच की नीलमपरी बन गईं। अनेक प्रकार से बातों में पेंच निकाले गये और हर ओर से शीशे में खड़े होकर देखा गया। यह सब क्यों? केवल समधिनों पर रोब जमाने के लिए। मुझसे शाहिदा ने कहा कि तुझे ऐसे वस्त्र नहीं पहनने दूँगी। तू अपनी तामड़े के रङ्ग की भारी वाली साड़ी पहन। फिर यह भी निश्चय हुआ कि महफिल में हम दोनों फिर रूप बदलें अर्थात् वहाँ मैं अपना नीले रङ्ग का मोतियों वाला जेवर पहनूँगी और बहन शाहिदा अपना बनारसी जाड़ा निकालेंगी। भावांश यह कि ठाट बनाकर और सज-सजा कर हम दोनों दुलहिन के घर रवाना हुईं।

एक शानदार कोठी पर हमारी मोटरें लगीं। यह मर्दाना कोठी थी। दो बड़े-बड़े कमरों में से होकर सब स्त्रियाँ एक छोटे से बगीचे में पहुँचीं। यह कोठी का भीतरी आंगन भी था और बगीचा भी। और यहाँ हम सब का दुलहिन वालियों ने स्वागत किया। यहाँ अब एक तमाशा देखा और थोड़ी देर के लिए सब स्त्रियाँ रुक गईं। बाईं ओर को एक तरफ एक हौज के बीचो-बीच में फव्वारा छूट रहा था और पानी की धार पर एक बड़ा-सा रंगीन सेल्लूलाइड का गेंद ऊँचाई पर नाच रहा था। नाचते-नाचते एक दम से जाली के प्याले में गिरता जिसके बीचो-बीचो में पान का सूराख था और जैसे ही सूराख पर आता फिर नाचता हुआ पानी की धार से ऊपर को बड़े मजे से चढ़ा चला जाता। सब

स्त्रियाँ यह देखने लगीं कि इतने में एक छोटे से लड़के ने करीब बैठकर कन्ट्रोल पाइप को खोलना बन्द करना शुरू किया। अब गेंद बड़ी तेजी से गिरने और उठने लगा। और सबने इसे ध्यान से देखा और यहाँ से धीरे-धीरे फूलों के गमलों को देखती हुई सामने के द्वार की ओर बढ़ी। मुझसे शाहिदा ने हाथ पकड़कर कहा 'कमबख्त जरा ठहर तो' ला इसे देखें।' यह कह कर अब स्वयम् शाहिदा पाइप का हैंडिल खोलने बन्द करने लगी। मैं भी इस तमाशे को देखने लगी और हम दोनों इसमें इतनी तल्लीन हो गईं कि हमें ध्यान भी न रहा कि सब की सब स्त्रियाँ चली गईं।

अब मेरी बारी आई और मैं हैंडिल को मोड़ ही रही थी कि कमरों की ओर से मर्दों का शब्द सुनाई दिया जो यह जानकर कि स्त्रियाँ जा चुकीं अब उसी ओर आ रहे थे। मैं घबड़ा कर उठी और मानों अब मैंने देखा कि सब स्त्रियाँ गईं शाहिदा ताक लगा कर एक फूल पर से तितली पकड़ रही थी कि मैंने जोर से उसके घूँसा दिया कि "भाग" यह कह कर मैं सीधी तेजी से जनाना घर के द्वार की ओर भागी जिधर सब स्त्रियाँ गई थीं और और मेरे पीछे पीछे शाहिदा।

अब जरा एक नई बात सुनिये। हमारे ड्राइवर साहब अर्थात् वह जिन पर मैंने शाहिदा को ढकेला था, हमारे अनुमान के अनुसार सचमुच दुलहिन के भाई निकले।

जब हम सब उतरी थीं तो वह हाथ में गुलाब जामुनें भरी रकाबी लिए भीतर से चले आ रहे थे। इधर से जो हुल्लड़ हुआ तो लाचार होकर इन्हें कमरे के पास की एक कोठरी में बन्द होना पड़ा। जब सब स्त्रियाँ भीतर पहुँच गईं, तब इन्हें छुट्टी मिली और यह बाहर मर्दाने की ओर लपके, वह भी इस तरह कि बायें हाथ में गुलाब जामुनों की भरी रकाबी औ

दाहिने हाथ में एक तगड़ी-सी शीरा में लोट-पोट गुलाब जामुन जिसको वह शायद बहुत से शीरा में लपेट-लपाट कर लुकमा बनाने वाले ही थे कि इधर से मैं और शाहिदा डाक-गाड़ी की चाल से पहुँचीं।

नतीजा यह कि आगे मैं थी और मानों हवा के घोड़े पर सवार आ रही थी और आँधी और बिजली तरह एक झप्पे में गुलाब जामुनों की रकाबी उड़ाए निकली चली गई। बहन शाहिदा पीछे होने के कारण जरा झिझकीं। उस गरीब का खुदा भला करे जो उसने सोचा कि लड़की अच्छी है। सुबह स्टेशन पर ईद भी मिल चुकी है फिर रास्ते में टोपी भी उचका चुकी है, लाओ गुलाब जामुन इसे ही खिला दें। इधर बहन शाहिदा से और उससे टक्कर होते-होते बचा और वह झिझकी कि उसने शायद यही सब बातें सोच कर आव देखा न ताव, इसके पहले कि बहन शाहिदा अपनी तेजी में रुक सकें, उसने लपक के बड़े ही जल्दी से और इसके पहले कि बहन शाहिदा देख या समझ सकें कि क्या मामला है, वही शीरे में चूर गुलाब जामुन अपनी जान में बस उसके मुँह में ठूँस ही तो दी। यह सब पलक मारने भर में हो गया। और शाहिदा बहन बल खा-खा कर गोता मार कर मुझसे आ लड़ीं। यह सब कुछ बस इतनी जल्दी हो गया कि वह इधर निकल गया और हम इधर। लेकिन अब जो मैं शाहिदा बहन को देखती हूँ तो अजीब हाल! नाक और मुँह का तो खैर जिकर ही क्या? सारे मुँह पर उस मुलायम और शीरा से चूर गुलाब जामुन का वह बढ़िया पलस्तर हुआ है कि बस देखा कीजिए। लेकिन इस पलस्तर की एक लकीर नाक के पूरब की ओर होकर सीधी आँख में कीचड़ का रङ्ग जमाती सीधी माथे पर से होती हुई बालों में घुस गई थी। वह देखने के योग्य था। किस प्रकार बहन शाहिदा ने कासमैटिक से अपने बाल

बनाये थे और अब उन पर गुलाब जामुन के शीरा ने मानो क्रीम लगा दी। फिर मुँह के अतिरिक्त गर्दन और कान तक न बच सका। परन्तु असल मुसीबत यह थी कि छत्तीस जगह से जारजेट का जम्पर चिपक कर रह गया और जारजेट का दुपट्टा तो शीरा और पलास्तर में पिसकर और चिपक कर गले में उलझ गया। सारांश यह कि एक बिल्कुल मुलायम घुली हुई और रसभरी हुई एक छटांक भर गुलाब जामुन जम्पर, दुपट्टा, मुँह, गर्दन और बालों पर खर्च कर दी गई।

चूंकि मैंने देखा न था कि क्या गुजरी, अतः यह हालत देखकर मुझे ताज्जुब हुआ और मैंने कहा—"अरी कम्बख्त यह क्या हुआ ? क्या तू गिर पड़ी गुलाब जामुन में ?'

उसने दुपट्टा गले से खींचते हुए और पलास्तर को और भी स्वतन्त्रता से मलते हुए मानो रोकर कहा—'अरी बहन मैं क्या करूँ।'

'अरी बोल तो कुछ' मैंने बेतरह हँसते हुए कहा। 'यह तू कैसे लथड़-पथड़ हो गई।' फिर उसी तरह रोकर शाहिदा बोली—'बहन, मैं क्या बताऊँ तुझको। अब मैं क्या करूँ ?' तो कहो भाग्य से आँगन बड़ा चौड़ा था और हम लोगों के आने के कारण सब लोग सामने के कमरों और दालानों की तरफ थे, नहीं तो क्या कुछ न तमाशा होता।

शाहिदा की आँखों में अपनी यह दुर्गति देखकर आँसू निकल आये और अब उसने कोसना शुरू किया तो मैं समझी कि कुछ गड़बड़ है। फिर इधर कोस-कोस कर असली बात बताई और उधर मेरा हँसी के मारे बुरा हाल। मैंने कहा कि बहन तेरी यही सजा है। चलतों को छेड़ती है न तू! यही तेरी सजा है। पास ही पानी का बम्बा लगा था और वहाँ बैठ कर शाहिदा को मैंने धुलाना शुरू किया। यह कार्य हो ही रहा था कि

एक नौकरानी आ खड़ी हुई। उसने यह मामला देखकर तंज़ करना शुरू किया और लगी टेढ़े टेढ़े सवाल करने। मुझे ऐसे मौके पर और हँसी छूटी। उसकी निरर्थक बातों के उत्तर दिये न थे कि एक और नौकरानी बाहर से यह कहती हुई आई कि रास्ते में गुलाब जामुनें कैसा हैं? पहली वाली, जिसने हमारा बोलना बन्द कर रक्खा था, सहसा बोली—'अरे! अभी तो मियां शाहिद रकाबी लेकर गये हैं।' इस 'शाहिद' शब्द पर हम दोनों का चौंकना और फिर उसका शंकित दृष्टि से हम दोनों को देखना कि एक गुलाब जामुनों की चिपका-चिपकी धो रही है और दूसरी धुला रही है, फिर शाहिदा का परेशान होना, और मेरा मारे हँसी के लोटे की धार शाहिदा के हाथ पर डालने की जगह उसके गले में छोड़ देना और उसका चिल्ला उठना, और मुझे कोसना, वह समझ गई और गुलाब जामुनें देखकर जो आई तो मुस्कुराती हुई बोली 'शाहिद मियाँ से·····उधर आप जल्दी में आई होंगी।'

मेरा चित्त इस समय शाहिदा की विपत्ति के कारण आवश्यकता से अधिक प्रसन्न हो रहा था। अतः मैंने हँसते हुए उससे कहा कि क्या उनका नाम मियाँ शाहिद है? हमारी बहन शाहिदा को उनसे टक्कर हो गई।' नौकरानी ने कहा 'इनका नाम शाहिदा और हमारे छोटे मियाँ का भी यही नाम है।' यह कहकर उस नौकरानी ने शाहिदा की आँखों में आँखें डालकर जो देखा है तो बहन शाहिदा को दूसरी ओर मुँह करके दुपट्टा निचोड़ना पड़ा।

मैंने शाहिदा को इतना विचलित, भयभीत और मारे लज्जा के पानी-पानी होते शायद कभी नहीं देखा। जब उसने मुझसे पूछा—'बेटी अल्लाह रक्खे तुम्हारा ब्याह तो हो गया है ना, कहा तो उसने यह मुझसे, और शाहिदा ने शायद इस कारण

से घबरा कर कि अब मेरी बारी आयेगी मुझे डाँट बताया कि क्यों निरर्थक बातें कर रही हो, सूट-केस जल्दी क्यों नहीं मँगवाती रात की महफिल के लिए। हम दोनों के जोड़े उसी सूट-केस में थे।

नौकरानी ने शाहिदा को बाथ रूम (स्नानागार) का रास्ता बताया। और मैंने तुरन्त मेहमानों में पहुँच कर सब से पहले यह काम किया कि सूट-केस बाथ-रूम में भिजवाया, जिसमें शाहिदा बहन ने रात वाला जोड़ा समय से पहले ही पहन कर अपनी जान भीगी जारजेट से बचाये।

रात की महफिल अत्यन्त रोचक और मनोरञ्जक रही। कई समवयस्क स्त्रियों से खूब जी बहला। फिर शादी की धूमा-धूमी। मगर सब से अधिक वर्णन के योग्य जो बात रही वह यह कि प्राय: स्त्रियों की दृष्टि शाहिदा पर बुरी तरह पड़ रही थी। वह बराबर कई जोड़ आँखों का केन्द्र बनी हुई थी। विशेषकर दुलहिन की माँ जिस बुरी दृष्टि से घूर-कर देख रही थीं, वह वर्णन के योग्य ही नहीं बल्कि भर्त्सना के योग्य थी।

इस कहानी के सम्बन्ध में कोई और विशेष बात नहीं है और यहाँ ब्याह का विस्तार पूर्वक वर्णन बे-मतलब है। बस यही कह देना काफी है कि चन्द्रमा के समान एक दुलहिन हम ब्याह लाये।

नजमी

भिमबाली ने गुलाब जामुन का किस्सा बड़े चाव से सुनने के बाद फिर अपनी रामकहानी कहना शुरू किया। कहने लगीं-'बहन जिस दिन तुम दोनों ब्याह में गई हो, उसके तीसरे दिन

की घटना है कि सन्ध्या का समय था और कौवों का झुण्ड उड़ा हुआ चला जा रहा था। नजमी ने अपना ब्राउनी पिस्टल निकाला और कहने लगे, चलो कौवे मारें। जीनत, मैं और नजमी तीनों बाग के किनारे हाता की दीवार के पास आ गए। कौवे पंक्ति बाँधे, झुण्ड के झुण्ड, उड़े जा रहे थे और नजमी ने फायर पर फायर करना शुरू किये। दो दफा कौवे बाल बाल बचे परन्तु आखिर एक कौवे के दुम पर लगी और उसका केवल एक पंख कट कर गिरा। घूमता हुआ वह नीचे आया तो खूब हँसी हुई और मैंने भी कहा कि आपने घण्टा भर की गोलाबारी के बाद मारा भी क्या, केवल कौवे की दुम! इतने में कुछ भलेमानुष खेतों की ओर से चले आ रहे थे और मैं और जीनत झट से गोता मार कर कमर कस कर दीवार की आड़ में बैठ गई।

'क्या बाहियात बात है।' नजमी ने कहा। 'तुम लोग पर्दा करती हो या दिल्लगी। गँवार और देहाती बीसियों गुजर गये तो खड़ी उछलती रहीं।

यह कह कर एक साहब को पुकारा 'अजी महाशय, यहाँ आइएगा। श्रीमान् यहाँ आइयेगा.....जी हाँ .....आप.....आपको..... .....जरा कष्ट कीजिएगा।' 'आप क्यों बुलाते हैं?' मैंने पूछा।

'कौवे के बच्चे पूछने के लिए।' नजमी ने कहा। 'अब छिपी हो तो जरा अच्छी तरह दुबकी बैठी रहो।' हम दोनों और भी दुबक कर बैठ गईं। इतने में वह मह महाशय निकट आ गये।

कहने लगे—'फरमाइये।'

नजमी बोले—'इधर आइये।'

इनका हाथ पकड़ कर नजमी ने एक जगह दीवार टूटी

थी वहाँ से उनको भीतर ले जाकर हम दोनों की ओर दिखा कर कहा—

"आप पर्दानशीन स्त्रियाँ हैं·····।"

'अरे·····लाहौल बिला कूवत !' कह कर वह मौलाना उधर उचक कर भागे और बड़बड़ाते चले गये।

नजमी ने पुकार कर कहा कि इधर मत देखियेगा। तुरन्त उन्होंने मुड़कर देखा और हम लोगों को देखते ही एक दम से मुँह मोड़ लिया। मेरा और जीनत का हँसी से बारे बुरा हाल हो गया।

नजमी ने फिर कौवों पर निशानाबाजी शुरू कर दी और अन्त में एक कौवा मार ही गिराया।

वह हाता से बाहर दूर जाकर गिरा और नजमी दीवार फांद कर लपके। मैंने जीनत से कहा कि चल, परन्तु वह कहने लगी कि मैं हाता के बाहर नहीं जाती। लेकिन वह मेरे रास्ते ही में था अतः मैं दीवार कूद कर लपकी।

कौवे के पंख में चोट लगी थी परन्तु उसके दोनों पैर साबूत थे अतः वह भागा। सूर्यास्त का समय हो रहा था और खेतों में कौवे के पीछे नजमी और नजमी के पीछे मैं भागती जा रही थी कि अंत में कौवे को नजमी ने पकड़ लिया। 'मुझे दिखाइए,' यह कहकर मैंने कौवे को देखा। यह बुरी तरह हाँफ रहा था। चोंच फटी हुई थी और नजमी ने सीधे हाथ से रस समेत उसकी गदन पकड़ रक्खी थी और उलटे हाथ से दोनों पैर।

मैंने कहा 'इसे पानी पिलायेंगे, जल्दी ले चलिए।' इतने में उसने अपनी चोंच बन्द कर ली। फिर वह बड़ी कातर दृष्टि से आकाश की ओर देखने लगा। मुझे बहुत दया आई। मैंने अपनी उँगली उसकी ओर बढ़ाई तो नजमी ने कहा—उँगली

निकट न लाओ, नहीं तो काट खाएगा। कौवा बड़े जोर से काटता है।' मैं हँसने लगी और मैंने···और भी उँगली उसके निकट करके उसकी चोंच पर फेरी। वह कुछ न बोला। मैं उसकी चोंच पर उँगली बराबर फेरती रही। नजमी ने भी देखा कि कौवा बेबस होकर अचेत हो गया, तो उसके पंजे छोड़ दिये और लौट चले। मैंने नजमी का हाथ अपने बाएँ हाथ से पकड़ कर कौवे को अपने निकट करके उसके सर पर उँगली फेरना शुरू किया।

मैंने कहा—'यह बड़ा सीधा कौवा है, आपने नाहक बिचारे को मारा।·····देखिए ·····देखिए·····' यह कह कर मैंने अपनी उँगली उसकी बांछों के पास, चोंच के भीतर रख दी और उसने धीरे-धीरे और कोमलता से उसको दबाया और फिर छोड़ दिया। अब मुझे बहुत दया आई और मैंने कहा 'कौवे को मुझे दे दीजिए।' नजमी ने सतर्कता से कौवे को मेरे हाथ में दे दिया। मुझे और भी दया आई और मैंने कहा 'च च च ·····आपने नाहक इसको मारा। यह बड़ा सीधा कौवा है।' यह कहकर मैं उसको चुमकार रही थी, जैसे कोई बच्चे को चुमकारता है। 'बड़ा सीधा कौवा है' यह कहकर जो मैंने मुँह समाप करके उसको चुमकारा, तो वह कमबख्त कौवा, परमात्मा उसका सत्यानाश करे,·····मर ही गया। मैं तो कमबख्त को प्यार कर रही थी और उसने इस जोर से मेरे गाल में····· इस जगह·····बोटा भर लीं कि मैं एकदम से चीख पड़ी····· खुदा की पनाह ·····वह बदमाश कौवा मेरे गाल से लटक रहा था और पंजों से मेरा ऐनक पकड़कर जो एकदम से उसने मेरे मुंह पर पख फड़फड़ाए हैं तो धड़ाम से मैं चीख मार कर गिरा। मैं पागलों के समान घबरा कर मछली की तरह तड़प गई, परन्तु वह कौवा है कि नहीं छोड़ता। नजमी ने घबराकर

तनिक कठिनता से कौवे की टाँगें पकड़ी, परन्तु उसने तो मेरे गाल में ऐसी चोंच गाड़ रक्खी थी कि मेरा दम निकला जाता था। अब मेरी जान अजीब मुसीबत में थी। ऐसा मालूम हो रहा था कि जैसे दो चाकू घुसे हुए हैं।

नजमी भी घबरा गये और उन्होंने मानों जबरदस्ती अपने बाएँ हाथ से मेरा सिर अपने सीना पर टिका कर, दाहिने हाथ से कौवे का सर पकड़ कर, उसकी चोंच में उँगली डाल कर या जिस प्रकार बन पड़ा उस कौवे को ऐसा दबाया कि मेरी जान छूटी। एक पटखनी कौवे को देकर अलग फेंका और फिर····· फिर·····मेरा मुँह चूम लिया। 'यह बात!' शाहिदा ने कहा और धम्म से एक घूँसा जिमवाली की पीठ पर दिया और बोली—'मैं कहती न थी·····वह एक बदमाश और आवारा आदमी है। ऐसे के सामने भला मुझे पकड़-धकड़ करती थी।' कुछ गम्भीर होकर शाहिदा ने फिर कहा 'ऐसे लोग बड़े भयानक होते हैं। लोगों को धोखा देकर धर्मात्मा बने फिरते हैं।'

जिमवाली ने अपनी कहानी का क्रम फिर आरम्भ किया और बोली—'बहन मैंने तो जिम की बातों पर विश्वास किया। मैं क्या जानती थी कि वह झूठा अव्वल नम्बर का दगाबाज है·····मारे गुस्से के मेरा बुरा हाल हो गया। मैंने एक झटका दिया और कहा—'शरम नहीं आती तुमको····· बदतमीज·····' मेरा सारा शरीर मारे गुस्से के काँप रहा था। डाँट कर मैंने फिर कहा—'कमीना·····जलाल····· शरम नहीं आती तुमको·····।'

यह कह कर मैंने नजमी को सर से पैर तक देखा। सूर्य अस्त हो गया था। सामने कुछ दूर पर जीनत दीवार के पास खड़ी थी। कँपकँपाती आवाज से नजमी ने कहा—'क्षमा करो, मुझसे अपराध हुआ।'

अब मैं क्रोधाग्नि की तीव्रता कम होने के कारण दुःख के मारे रोने लगी और सीधी घर की ओर चली। परन्तु नजमी साथ ही हो लिए "क्षमा करो·····परमात्मा के वास्ते क्षमा करो·····मुझसे अपराध हुआ ···सहसा ऐसा हो गया····· परमात्मा के वास्ते क्षमा करो·····।'

सारांश यह कि "क्षमा करो" की रट लगाते हुए वह मेरे आगे आ-आ जाते। किस प्रकार गिड़-गिड़ाकर उन्होंने कहा, परन्तु मैं अपनी धुन में रुमाल में मुँह छिपाये चुप तेजी से चली जा रही थी।

इस प्रकार गिड़-गिड़ा कर फकीरों की तरह एक सभ्य नवयुवक का अपने अपराध को स्वीकार करना और बराबर गम्भीरता से खुशामद करना मेरे ऊपर कुछ प्रभाव डालने लगा।

जब देखा कि मैं घर के निकट पहुँच गई और अपने हाता के भीतर घुसने ही वाली हूँ, तो उसने लपक कर मेरा हाथ पकड़ लिया और अपने दाहिने हाथ में पिस्तौल लेकर कहा— 'तुम्हें जिस की सौगन्द, मुझे क्षमा कर दो। नहीं तो अपने को गोली मार लूँगा।'

'क्षमा किया।' मैंने घबरा कर कहा 'क्षमा किया! मुझे सौगन्द न दीजिए। मैंने क्षमा कर दिया।'

'इसका जिक्र·····।'

'मैं किसी से न करूँगी' मैंने कहा।

[२]

दो दिन मैं न गई तो तीसरे दिन जीनत ने मुझे बुला भेजा। मैं पहुँची तो एक महान परिवर्तन! नजमी का सुन्दर और तेजवान मुख बिलकुल गम्भीर था।

पहले की प्रसन्नता को देखते हुई वहाँ एक मुर्दनी-सी छाई

हुई थी। एक अकथनीय चुप्पी! जीनत ने कहा कि 'नजमी भाई परसों से चुप और उदास हैं। भाई क्या बात है, कुछ भी तो बोलिए।' इसके उत्तर में नजमी ने कहा—'कुछ नहीं।' और फिर वही चुप्पी।

अलग ले जाकर जीनत ने मुझसे पूछा—'यह क्या बात है? क्या कुछ कौवे वाले दिन.....,'

मैंने कहा—'हाँ।' और पूरी घटना आदि से अन्त तक कह सुनाई। मुझसे जीनत ने कुछ भयभीत होकर कहा—'बहन तो अब मत आना जाना। ब्याहा लड़की..... दुनिया है और फिर आजकल जो जरा हम लोगों को स्वतन्त्रता मिली और लोगों ने बेपर की उड़ाई?'

मैंने हँस कर कहा—'तुम भी कैसी बातें करती हो। अपना दिल सच्चा होना चाहिए और बस, मुझे किसी प्रकार का भय नहीं है।'

'कमबख्त कहीं भाग मत जाइयो उसके साथ।' शाहिदा बोली—'नहीं तो हम लोगों को फिर कैद ही हो जायगी।

जिमवाली ने कहा—'तू ही बेसुरी और बेतुकी हो रही है। मेरा क्या है। मैं ब्याही हुई हूँ और मुझे जरा भी भय नहीं।'

'समझी क्या है तू उसको।' शाहिदा ने सर हिला कर कहा—'उसके साथ ज्यादा आँख-मिचौनी खेलेगी तो लौटकर वह तेरी चोटी तो वैसे ही नहीं है, सर मूँड़ लेगा।'

'कौन?' जिमवाली तिनक कर बोली। 'कौन है ऐसा?—कौन?'

शाहिदा ने एक आँख मींच के कहा—'अरे वही तेरा वही। और कौन।' जिमवाली ने तिरस्कार पूर्वक उत्तर दिया—'क्षमा कीजिएगा। न मैं ऐसी और न मेरा मियाँ ऐसा। वास्तविक वस्तु तो प्रेम है। यदि उनको मुझसे प्रेम है और मुझको उनसे,

तो न मैं बिगड़ सकती हूँ और न वह·····दुनियाँ बकती ही है।·····फिर थोड़ी देर बाद मैं यहाँ से चली आई।

अब परसों का चिक्र है। रात को जीनत का माली लालटेन लेकर आया और बोला कि आपको बुलाया है। एक चिट्ठी थी मैंने पढ़ी। खातून बहन की ओर से थी और लिखा था कि तुरन्त चली आओ। मैंने भाई जान से पूछा, तो उन्होंने कहा कि चली जाओ और फिर भला बहन शाहिदा की ननद बुलावें और मैं न जाऊँ यह कैसे·····अरी छोड़-छोड़।·····शाहिदा ने वही जगह पकड़ ली, जहाँ जिमवाली के कौवा लिपट गया था और दुख रही थी। 'अरी छोड़·····छोड़·····चीं' जिमवाली 'चीं' बोली, तो शाहिदा ने छोड़ा।

जिमवाली अपना दुखता गाल दबाकर रह गई क्योंकि कौवे कम्बख्त ने बड़े जोर से काटा था, ऐसा कि जख्म होकर अब खुरन्ड आ गया था। जिमवाली ने अपनी कहानी का क्रम फिर आरम्भ किया:—

'मैं भी समझी कि बहन खातून अपने मतलब के लिए आई होंगी। जब से वह तेरे मेरे पास बराबर दौड़ रही हैं। अतः मैं चली गई। रात को जीनत अपने कमरे के छत पर बैठती है। मैं सीधी धुर छत पर पहुँची, तो क्या देखती हूँ कि 'नजमी', हालांकि उनका कमरा दूसरे छोर पर था।

मैं कुछ रुकी कि वह उठ खड़े हुए। मैंने कहा 'जीनत कहाँ हैं?' वह बोले 'आती हैं, बैठिए।' मैं बैठ गई तो बोले 'आपको मैंने बुलाया है।'

'फरमाइए।'

'यह लीजिए' यह कह कर नजमी ने एक पत्र मेरे हाथ में दे दिया।

'उसमें क्या लिखा था ?' शाहिदा ने पूछा।

जिमवाली बोली—'वह वहीं रह गया। उसमें तमाम खुराफात लिखी थी। मतलब यह था कि मैं जिम को छोड़कर इनसे ब्याह करने पर तत्पर हो जाऊँ! मैंने पत्र पढ़ा। इधर-उधर देखा तो नजमी बोले—'आप बेकार इधर-उधर देखती हैं, घर पर आज कोई नहीं है, सिवाय मेरे। और आप को इस पत्र का उत्तर अभी-अभी देना पड़ेगा।'

मैं कुछ परेशान-सी हो गई, क्योंकि नजमी के मुख पर कुछ उत्तेजना के से भाव थे। लेकिन मैंने सम्हल कर कहा—'नजमी साहब, आप क्यों बच्चों की सी बातें करते हैं। अव्वल तो मैं जिम को, चाहे जान जाय या रहे, कदापि न छोड़ूँगी और फिर आप जरा सोचिए तो कि मेरा ब्याह उनके साथ हो चुका है। एक ब्याही हुई लड़की से आपकी यह प्रार्थना····· हाँ यदि मेरा ब्याह न हुआ होता और यदि आप इस प्रकार की बातें करते तो बेजा न था।' नजमी ने कहा—'आपको मालूम है कि आप का निकाह आपके पिता के देहान्त के बाद आपके भाई ने किया है।"

'जी हाँ, मुझे मालूम है।'

'जब आप नाबालिग थीं।'

'जी'

"तो अब आप उसको रद्द कर सकती हैं।"

मैंने बिगड़ कर कहा—'परन्तु मैं तो नहीं करना चाहती।'

'आप को करना पड़ेगा' खड़े होकर नजमी ने कहा।

'कदापि नहीं' कंपकपाते हुए मैंने कहा।

'अवश्य करना पड़ेगा' नजमी ने रिवाल्वर निकालकर कहा।

"मुझे मार डालो ···· "मैंने जमकर कहा।

एक चमक के साथ चीते की तरह वह ज़ालिम मेरे ऊपर

झपट पड़ा। उसका भयानक पंजा मेरी गर्दन में था और इसके पहले कि मेरे मुँह से चीख निकले, उसने चारपाई पर गिरा कर मेरा गला घोट दिया। गर्दन दबाकर उसने कहा—'बोलो।' मृत्यु के समान कष्ट उठाते हुए भी मैंने जोर से 'नहीं' कहने की कोशिश की और सिर हिलाया कि एक दम से मेरी आँखों के तले अँधेरा छा गया और फिर मुझे खबर नहीं कि क्या हुआ। 'ऐ है!' शाहिदा ने और मैंने डर कर कहा 'हम दोनों की आँखें फटी-की-फटी रह गईं। 'डाकू है कमबख्त। फिर तू घर कैसे आई और वह अत्याचारी कहाँ गया?'

जिमवाली स्वयं काँप कर बोली—'बहन क्या बताऊँ, मेरे ऊपर क्या बीती। मेरी आँखें खुलीं, तो सन्नाटा था। मैं नीचे आई। कोई न था। केवल माला बैठा चिलम पी रहा था। मालूम हुआ कि जानत और चाची लखनऊ गई हैं। खातून भी कहीं गई थीं। और मुझे इस डाकू ने धोखा दिया था।'

'और वह डाकू कहाँ गया?' शाहिदा ने पूछा।'

'मालूम नहीं कहाँ गया?' जिमवाली बोला—'और मजा यह कि परसों जो जिम का पत्र आया तो उसमें की प्रशंसाओं से भरा पुरा था। अब की मैंने सब समाचार लिख दिया है।'

ऐसी विचित्र कहानी जिमवाली ने सुनाई कि मेरे रोंगटे खड़े हो गये। यह हैं वह पढ़े-लिखे सभ्य डाकू, जिनको अपनी नई सभ्यता पर घमण्ड है, मैंने दिल में कहा और मुझे इस प्रकार की स्वतन्त्रता और विश्वास एक अत्यन्त भीषण वस्तु प्रतीत हुई। किस प्रकार मनुष्य मित्रता और धर्म की आड़ में पशुवत् और भयानक अत्याचार करते हैं। इन धोखेबाजों से खुदा बचावे। परमात्मा को कोटिशः धन्यवाद है कि मैं इस तूफान से उस समय गुजरी, जब मेरा ब्याह हो गया था।

बिचारी जिमवाली चुप होकर रह गई और उसने इसका

जिक्र अपने नवीन सभ्यता के प्रेमी भाई से भी न किया। यह भी अच्छा हुआ। न मालूम क्या से क्या खबरें उड़तीं। वास्तव में स्त्रियों की स्वतंत्रता एक बहुत ही उत्तम वस्तु है, परन्तु किस सीमा तक? इसके प्रथम कि इसका कोई आदर्श निश्चित हो, समय स्वयम् ही इस प्रश्न को हल कर लेगा। विश्वास और भरोसे का महल किस नींव पर स्थिति हो! एक आध दीवार खिसक कर अवश्य बैठ जायगी, तब पता चलेगा कि हमारी सोसाइटी की नींव कहाँ खोखली थी, वास्तव में हमारे सामाजिक कार्य कर्ताओं को केवल सजग ही न होना चाहिए बल्कि इस कार्य में दक्ष होना भी आवश्यक है।

जो लोग केवल सामाजिक उन्नति का पाठ पढ़ते हैं, वह शायद अपना समय नष्ट कर रहे हैं, क्योंकि असीमिति सामाजिक उन्नति का अर्थ है काम रोक देना। और काम करना आवश्यक है।

आलू का भुरता

शाहिदा के मामा के ब्याह से लौटे हुए थोड़े ही दिन हुए थे कि बहन खातून मुझसे मिलने आईं।

दोपहर का समय था और मैं भोजन करके पढ़ने बैठी ही थी कि यह आ पहुँचीं। अपने स्वभावानुसार सादगी के साथ-साथ अत्यन्त ही पवित्र वस्त्र पहने थीं और वस्त्रारोहण की यह अवस्था थी कि मेरी दृष्टि में गड़ कर रह गई। उनके बड़े-बड़े नेत्र उनके सुन्दर और प्रसन्न मुख पर कितने अधिक सुन्दर मालूम हो रहे थे।

मुस्कुराती हुई उतरीं। मैंने लाकर कमरे में बिठाया और

उनकी ओर देखा। वह मुस्करा रही थीं। मैंने फिर उनको ध्यान से देखा। इतनी सुन्दरता से बाल बनाये हुए थीं और नख-सिख और शृङ्गार से इस प्रकार सुसज्जित थीं कि इसके पहले मैंने उनको इस प्रकार कभी नहीं देखा था। मुझसे न रहा गया और मैंने हँसकर कहा—'बहन खातून, आज तो·····परमात्मा बुरी दृष्टि से बचाये·····हृदय में घुसी जा रही हो।'

बहन खातून इससे प्रसन्न होकर मुझसे प्रेम से लिपट गईं। 'मेरी बहन' उन्होंने कँपकँपाती हुई आवाज से कहा और मुझे छोड़ते हुए एक गहरी तथा अर्थ-पूर्ण स्वाँस ली। वह फिर उसी प्रकार फूल बनी हुई थीं। अत्यधिक प्रसन्न थीं। मैंने उनकी प्रसन्नता देख कर कहा—'बहन, तुम्हें इस प्रकार प्रसन्न देखकर मेरा जी बहुत सुखी हो रहा है। परमात्मा को धन्य-वाद है कि तुम प्रसन्न हो? क्या कोई और बात हुई?'

खातून का मुख आनन्दातिरेक से खिल उठा। उनके सुन्दर नेत्रों से आनन्द की लपटें निकलने लगीं। उन्होंने अपनी विचित्र और मनोरंजक कहानी को इस प्रकार मुझसे कहा:—

'परमात्मा को कोटिशः धन्यवाद है, कोटि-कोटि धन्यवाद है कि उसने मेरी विपत्तियों का अन्त किया। अन्त में मैंने सब वेश्याओं और शोहदों को मार भगाया।'

'आखिर कैसे?' मैंने कुछ रुकते हुए कहा कि शायद अपने हृदय की बात बताना पसन्द न करें; क्योंकि कुछ भी हो, मुझसे उनसे पर्याप्त तकल्लुफ था। न तो मैं उनके साथ इतनी स्वतंत्र हूँ और न इतनी गम्भीर। 'तुम्हें मेरा पूरा किस्सा नहीं मालूम' बहन खातून बोलीं—बहुत कम लोगों को मालूम है। वास्तव में बात यह है कि मुझमें और मेरे मियाँ में कोई समानता ही नहीं है। जिस सुख-सम्पदा से अपने नैहर में रही, वह वर्णन से बाहर है, और फिर भाग्य तो देखो जैसा कि भारतवर्ष में होता

है, मुझे एक विषयी और आवश्यकता से अधिक लम्पट के सर थोप दिया और फिर मजा यह कि यह सब कुछ जानते हुए। यह तो मैं तुम्हें बता ही चुकी हूँ कि किस तरह महीना-दो-महीना की आव-भगत के बाद मेरे दुख का समय आ गया।

बड़े मकान से मिला हुआ छोटा मकान है, जिसमें अकेले पड़े रहना और घुल-घुलकर मरना मेरे भाग्य में लिखा मालूम होता था। मियां को घर में आने की कसम थी। दिन-रात बाहर ही रहते थे। उनके नौकर-चाकर अलाहिदा थे और अब भी हैं। खाने के अतिरिक्त ५०) मासिक पिता से मिलता है, परन्तु माता का यह हाल है कि ५०००) की डिगरियाँ चुपके से चुका देती थीं और दो-दो सौ मासिक वेश्याएँ ले जाती थीं। मियाँ का यह हाल कि घर में कभी आये भी तो तेजी से निकले चले गये। होते-होते यह हाल हुआ कि एक मर्तबा पूरे सात महीने बीत गये और उनका मुख भी देखने को न मिला और फिर आपत्ति पर आपत्ति कि द्वार के समीप ही बैठे वेश्याओं से हँसी दिल्लगी करते रहते। उनका बँधा हुआ भोजन घर में से आ जाता है। यदि अधिक भोजन की आवश्यकता होती तो अपने नौकर से अलाहिदा बनवा लेते। पान या दूसरी वस्तु की आवश्यकता पड़ती तो अपनी माता से मँगवा लेते, नहीं तो पानदान तो बाहर था ही। सारांश यह कि सब बातें तो मैं तुमसे कह ही चुकी हूँ कि घर में अकेला पड़ा छत की कड़ियाँ गिना करती थी। अढ़ाई तीन वर्ष इसी प्रकार निकल गये और मेरा जीवन कठिन हो गया परन्तु मुझे भी नैहर न जाना था—न गई।

लोगों ने कहा कि सबसे बड़ी भूल जो मैंने की वह यह थी कि मैंने अपना रुपया इन्हें दे दिया। और यह वास्तव में सत्य है कि उस दिन से उन्होंने और भी मेरे सम्मुख आना कम

कर दिया, बल्कि इसके बाद से एक बात और कर ली और वह यह कि सदा क्रोधित मुख बनाये रहने लगे। यह शायद इस कारण से कि कहीं मेरी हिम्मत न पड़े कि दिल में यह सोचूं कि इतना रुपया देकर उनकी गर्दन कुछ झुका लूँगी। परन्तु परमात्मा जानता है कि मैं तनिक भी न पछताई। उन्होंने सब का सब वेश्याओं को खिला-पिला कर बराबर किया। यह तो मानो अभी-अभी की बात है। कोई पुरानी बात नहीं। रुपया जो पास आया, तो वेश्याओं को लेकर सैर करने लगे।

मैंने केवल इतना सुना था कि किसी वेश्या को लेकर कहीं बाहर गये हैं। कई दिन हो चुके थे और मुझे कुछ ध्यान भी न था। यह तब की घटना है, जब तुम्हारा ब्याह हुआ था। इससे कुछ ही पहले की।

एक दिन का जिक्र है कि रात के बाहर या एक बजे होंगे। मैं अचेत पड़ी सो रही था कि किसी ने मेरा हाथ पकड़ कर खींचा—'जरा उठो तो।' मैं चौंक कर उठ बैठी और मारे आनन्द के मेरा हृदय धक धक करने लगा। घबरा कर मैंने कहा—'कहिये।' 'अम्मा के यहाँ से कुछ भोजन को हो तो तनिक जाकर ला दो।' सर खुजलाकर कहा—'दो तीन आदमियों के लिए लाना और ऐसे जाना कि किसी को मालूम न हो।'

क्या बताऊँ कि मेरे आनन्द की कोई सीमा ही न थी। अहोभाग्य कि मुझसे कोई काम तो लिया। दबे पाँव मैं बड़े घर में गई और जाकर रसोई और न्यामतखाना सब टटोल मारा, एक सूखी रोटी के अतिरिक्त कुछ न था। उसी प्रकार चुपके से लौट के आई और समाचार सुनाया। मैं भीगी बिल्ली की तरह चुप खड़ी हुई थी कि इतने में बोले—'फिर

क्या हो ? बाहर भी कोई नहीं है।' मैंने कहा 'अभी बन जायगा।'

'परन्तु मैं नहीं चाहता कि घर की नौकरानी से काम लूँ, वह उठकर बड़-बड़ाएगी।' मैंने कहा—'जी नहीं, मैं स्वयम् बना दूँगी। किसी को खबर भी न होगी।' उन्होंने कहा—'बड़ी देर लगेगी।' मैंने झट से कहा—'अभी, अभी बना दूँगी।'

'आलू रक्खे हुए हैं और दो अण्डे रक्खे हैं। आलू की तरकारी और अण्डे का आमलेट बना कर रोटी डाल दूँगी। कुछ सोचने लगे और मैं दिल की-दिल में कह रही थी कि या अल्लाह, किसी तरह इस बात पर राजी हो जायँ। अन्त में बोले 'जरा अच्छा तरह बनाना' 'बहुत अच्छी तरह बनाऊँगी और अभी लाजिये।' यह कह कर मैं सीधे रसोई में पहुँची तुरन्त लकड़ियाँ एकत्रित करके चूल्हे में तेल डाल कर पलक मारते में आग जलाई और शीघ्रता से आलू छीलकर बहुत से प्याज और घी में बहुत अच्छी तरह भूने। दूध बहुत-सा रक्खा था और मैंने पानी की जगह बहुत-सा मलाईदार दूध छोड़कर आलू पकायी। आटा जल्दी से गूँधा और वह भी दूध में और बहुत-सा घी डाल कर पराठे बना ही रही थी कि मेरी छोटी ननद उठ कर आ गई। मैं उसे देखकर मुस्कुराई। वह बिस्मित होकर कहने लगी—'आप यह क्या कर रही हैं ?'

'तुम्हारे भाई जान के लिए भोजन बना रही हूँ' मैंने कहा।

हमीदा बोली—'अरे आप गजब कर रही हैं। भला यह किसके लिए पका रही हैं। आपको मालूम नहीं है।' मैंने मुस्कुरा कर कहा—'हाँ, मालूम है, तुम्हारी दूसरी भाभी जान के लिए पका रही हूँ, जो बाहर बैठी हैं।' 'खुदा की मार उस कम्बख्त पर, मैं आपको उस चुड़ैल के लिए नहीं पकाने दूँगी।' यह कह कर उसने आटा घसीट लिया।

'खुदा के लिए पकाने दो। आज मेरा भाग्य जाग उठा है जो मुझसे उन्होंने अपने एक काम को तो कहा। मारे खुशी के मेरी जो हालत है, मैं ही जानती हूँ।' यह कह कर मैंने उनसे आटा छीन लिया और 'बहन, जरा तुम भी पकवा लेती तो मुझसे प्रसन्न हो जाते कि जल्दी पका लाई।' उसने कहा—'भाभी आपका काम होता तो मैं कर देती, उस चुड़ैल के लिए तो मैं हरगिज न पकाऊँगी।' मैंने ठण्डी सांस लेकर कहा—'बहन, बस परमात्मा बुरा समय न लाये। वह तो फिर मनुष्य है, यदि वह शैतान के लिए भी पकवाएँ तो मैं पकाऊँ।' यदि वह भंगा और कुत्तों के लिए मुझसे पकवाएँ तो भी मैं पकाऊँ।! रोना तो यही है कि मुझसे काम ही नहीं लेते। यदि मेरे ऊपर दया आये तो मेरा हाथ बटा लो। शायद वह इससे प्रसन्न हो जायँ कि मैं जल्दी से पका लाई।' मेरे इस प्रकार कहने पर उसे दया आ गई। 'मैं तो कभी न पकाती, परन्तु लाइये, आपकी खातिर से कर दूँ।' मैंने प्रसन्न होकर कहा—'बहन, यदि करना चाहती हो, तो बस इतना कर दो कि चूल्हे के उस ओर आँच खाली निकल रही है। सिवैय्याँ भूनी हुई टीन में रक्खी हैं। झट से क़िवामी सिवैय्याँ पका दो।

मेरे भाग्य अच्छे थे कि उसकी समझ में कुछ आ गया और वह तेजी से काम करने लगी। मैंने झट से पराठे बनाना समाप्त करके और दूध का छींटा देकर अलग रखे। आलू की तरकारी उतारी और अण्डों को दूध और मलाई में मिलाकर फेंटा और बहुत सा घी और प्याज डालकर जल्दी से तल दिया। वह कहने लगी—'आप हर चीज में दूध डाल रही हैं। कहीं अण्डों में भी दूध पड़ता है।' मैंने कहा—'पड़ता तो न अण्डों में है और न तरकारी में। परन्तु मैंने तो आज

परीक्षा ली है। मलाईदार दूध किसी चीज में डालो अवश्य स्वादिष्ट बनेगा।'

मैंने उससे कहा कि 'तुम सिवैय्याँ पकाओ, मैं अभी भोजन देकर आती हूँ।' कायदे से एक सेनी में मैंने सब भोजन लगाया और छोटे घर में आई। द्वार पर कुण्डी खटखटाई। 'बड़ी जल्दी पका लाई।' यह कह कर उन्होंने द्वार ही पर सेनी मेरे हाथ से ले लिया।

मैं दौड़ी हुई रसोई घर में आई। कुछ थोड़े से आलू के कतले पतेली में और पड़े थे। मैंने तेजी से सिल पर उनको पीस कर भुरता तैयार किया। अदरख प्याज और पुदीना जल्दी से मिलाकर छौंक लगाई और एक रकाबी में लेकर द्वार पर फिर पहुँची। कान लगाकर सुना तो वह वेश्या कह रही थी— 'मैंने जीवन भर में कभी इतनी स्वादिष्ट आलू की भुजिया नहीं खाई।' यह शब्द मेरे लिए कितना आनन्ददायक था! बस कोई मेरे हृदय से पूछे। मारे आनन्द से मेरा हृदय चलते चलते, मालूम हुआ, रुक सा गया। कुछ और बातें हुईं जो मैंने नहीं सुनी कि फिर कुण्डी खटखटाई। भोजन छोड़कर दौड़े आये। मैंने रकाबी हाथ में दी, तो कहा—'कुछ और है? आज तो तुमने कमाल ही कर दिया।'

यह कहकर रकाबी लेली! मैं वहाँ कान लगाये खड़ी रही। 'यह लीजिये भुरता भी चखिये' उन्होंने वेश्या से कहा। 'आखिर यह कौन पका रही है?' वेश्या ने पूछा—

'एक नई मामा आई है' वह बोले।

'मुझे स्वय एक मामा की बहुत आवश्यकता है। यदि यह मामा मुझे दे दें तो बड़ी कृपा हो' वेश्या ने कहा। 'तुम्हारे लिए तो जान भी हाजिर है।' उन्होंने वेश्या से कहा—'मैं दे दूँगा यदि वह जाने को राजी हुई।' 'राजी क्यों न होगी?' वेश्या

बोली। 'मैं तो जानती हूँ कि राजी हो जायगी। मैं उसको दुगुनी तनख्वाह दूँगी।' 'भुरता भी इसने कमाल का पकाया है। आपके सर की कसम, मैंने उम्र भर न तो ऐसा भुरता खाया और न ऐसा अण्डा खाया और न ऐसे पराठे खाये, और फिर तारीफ यह कि पलक मारते सब चीजें आ गईं।'

सारांश यह कि मेरी बहुत ही प्रशंसा हो रही थी और मियाँ सुन-सुनकर आनन्द-विभोर हुए जाते थे और इधर मैं मारे खुशी के बेदम हुई जा रही थी। मैं उनकी बातों में इतनी लीन थी कि मुझे सिवैय्यों का ध्यान ही न रहा कि इतने में वह वेश्या बोली 'बस कोई मीठी चीज और होती तो मजा आ जाता।' उन्होंने कहा 'पहले से तुमने नहीं कहा। भला इस समय क्या हो सकता है।' वेश्या ने कहा 'मैंने तो योंही कहा। वास्तव में भला इतनी जल्दी और इस समय कैसे सम्भव था।'

मैं एकदम से रसोई घर में दौड़ी। वहाँ हमीदा सिवैय्याँ तैयार करके एक रकाबी में रक्खे थीं। भाग्य से मेवा भी कतरा हुआ मिल गया था, उसने वह भी डाल दिया था। मैं प्लेट लेकर सीधी दौड़ी हुई अपने मकान में तीर की तरह आई। रात-दिन पड़े पड़े चिन्ता में घुल-घुलकर बीमार-सी हो गई थी। हकीम साहब ने सेव का मुरब्बा सोने के वरक में लपेट कर खाने को बताया था। यहाँ जीने की चिन्ता किसे थी। यों ही का यों ही रक्खा था। मैंने जल्दी से एक सेव को महीन-महीन कतर के सिवैय्यों में मिला दिया और ऊपर से सोने का वर्क और उसके चारों ओर चाँदी के वर्क लगा कर द्वार पर पहुँची और द्वार खटखटाया। 'ऊँह' करके मियाँ उठे और आए तो जरा झल्ला कर कहा 'क्या है?' मैं भयभीत-सी हो गई और मैंने कहा—'कुछ नहीं, सिवैय्याँ हैं।'' एक हाथ में उन्होंने चमचे लिए और दूसरे हाथ में रकाबी ली और क्या बताऊँ

कि किस प्रकार से उन्होंने प्रसन्न होकर उससे कहा 'बोलो क्या दिलवाओगी, यदि हम तुम्हें तुम्हारे इच्छानुकूल इस समय एक चीज खिलाऊँ ?' 'तुम्हें हमारी कसम' बेश्या ने कहा। वह प्रसन्न होकर बोले—'वल्लाह ! अभी लो। यह कहकर उन्होंने रकाबी रख दी। तुरन्त ही उसने कहा—'कसम खाकर कहती हूँ कि मैंने कभी ऐसी सिवैय्याँ नहीं खाई.।'

मैं बराबर अपने भोजन बनाने की प्रशंसा सुनती रही और बहाँ यह निश्चय हुआ कि बहुधा इस नौकरानी के हाथ की चीजें पका करेंगी, विशेषकर आलू की भुजिया और भुरता। मैंने जैसे ही जाना कि भोजन समाप्त हो चुका है, वैसे ही द्वार से हट आई। थोड़ी देर बाद बर्तन लेकर आए तो मैंने दबी जबान से कहा 'आपने क्यों कष्ट किया। सुबह को आ जाते। मैंने हाथों से बर्तन लिये तो उन्होंने प्रसन्न होकर मेरी पीठ पर हाथ रख कर कहा ' शाबाश ! तुम बड़ी अच्छी बीबा हो।' क्या बताऊँ कि मेरी क्या अवस्था हो गई। झट से मैंने बर्तन तख्त पर रख दिये और उस हाथ को पकड़कर चूमने लगी। मेरा एकदम से दिल भर आया और उनके हाथ पर गरम गरम आँसू गिरे। शायद वह घबरा से गए कि तुरन्त नरमी से हाथ छुड़ा लिया। और यह कहते चले गये कि बर्तन अभी भीतर रख आना। मैं बर्तन लेकर गई और चूल्हा बुझा कर लौट आई।

चारपाई पर लेटी मैं इस घटना पर ध्यान कर रही थी और इतनी प्रसन्न थी कि वर्णन ही नहीं कर सकती। न जाने कितनी देर तक सोच-सोच कर चित्त प्रसन्न करती रही। मैं दिल में कहती थी कि मुझसे अधिक और कौन सौभाग्यवती हो सकती है कि जब से ब्याह कर आई आज मुझसे एक काम को कहा और अच्छी तरह।

उस दिन जब तुमसे भेंट हुई थी और शाहिदा ने मुझसे

कहा था कि तुम्हारी आँखों में परियाँ कैसे नाच रही हैं, तो वास्तव में उसका कहना ठीक था। मैं इसी कारण से प्रसन्न थी।

मैं यह कहानी सुनकर स्तम्भित रह गई और मैंने कहा 'बहन तुमने वाकई कमाल किया। शाबाश है तुम्हें। तुम्हारा ही काम था जो तुमने यह सब कुछ किया। किसी दूसरे से होना बहुत कठिन है।' कठिन कुछ भी नहीं बहन, पड़ता है तो करते ही हैं सब। अभी क्या है अभी और सुनिए।

[२]

सुबह हुई और मैं प्रतीक्षा कर रही थी कि शायद आयें, परन्तु तोबा कीजिए, दो तीन दिन न आये। परमात्मा भला करे उस वेश्या का कि उसने फिर उसी भुरता के लिए आग्रह किया, मानो मेरे भाग्य जागे। एक दिन सुबह आये, मेरा खुशी के मारे बुरा हाल हो गया। मैंने खड़े होकर सलाम किया। मुस्कुरा कर कहने लगे—'जीती रहो।' मैं हृदय में अति प्रसन्न चुपकी खड़ी रही कि वह बोले 'वह जो भुरता उस दिन तुमने पकाया था।' मैंने दबी जबान से कहा—'आप कहें तो आज फिर पका दूँ। वह तो जल्दी में पकाया था। आपको पसंद आया?' वह बोले—'हाँ, बहुत अच्छा था। परसों पकवाना है, परंतु थोड़ा सा आज भी पका देना, ताकि इतमीनान से देखें कि कैसा पकता है।' बहुत अच्छा, अभी पकाती हूँ।' मैंने प्रसन्न होकर कहा।

वह बोले—'बस मेरे भोजन के साथ भिजवा देना।'

स्त्रियाँ अपनी सौतों को विष दिया करती हैं और कुछ परिणाम नहीं निकलता; परन्तु मेरा भाग्य ही विचित्र था। मुझे अपनी बनावटी सौत को सुन्दर भोजन खिलाने में आनन्द आता था और मेरी बुद्धि न काम करती थी कि सौत को विष देकर चित्त कैसे प्रसन्न हो सकता है। कुछ भी हो, मुझे जान पड़ता

कि एक अपूर्व प्रयोग मेरे हाथ लगा है अर्थात् यह कि आलू के भरता में दूध और मलाई डालना। आज मैंने और ही तरकीब की। छटांक भर मलाई और छटांक भर बादाम और पिस्ता डाले और सुगन्ध के लिए थोड़ा-सा नारियल पीस कर मिलाया और इन सब वस्तुओं को मिलाकर खूब पीसा। इनके बाद आध सेर गोश्त की यखनी तैयार करके आलुओं को उसमें दूध डाल कर उबाला और सब पिसी हुई वस्तुएँ अर्थात् मलाई और बादाम को मिला कर ऐसा पीसा कि सब एक हो गये। इसके बाद बहुत से घी में प्याज लाल कर के भरता सब मसाला के साथ धीमी आंच पर भून कर और पुदीना इत्यादि मिलाया। अब जो मैंने उसको चखा तो स्वयम् मेरी बुद्धि चकराई कि हे परमात्मा! यह क्या 'माजूने मुरक्कब' बन गया। मैंने दिल में कहा कि उस दिन भुरता पराठे के साथ खिलाया था, यदि आज रोटी होगी तो शायद कुछ स्वाद कम हो जाय। अतः मैंने दूध और घी और बची हुई यखनी से आटा गूंथ कर पराठे भी पका लिए। दोपहर के भोजन के साथ-साथ वह वस्तुएँ भी बाहर गईं।'

वेश्या ने जो कुछ प्रशंसा की वह की, परन्तु स्वयं मियाँ चक्कर में आ गये और परिणाम यह निकला कि भोजन के उपरान्त ही आए। मुख से प्रसन्नता प्रगट हो रही थी और जान पड़ता था कि यह अत्यधिक प्रसन्न हैं। मैं देखकर आनन्द विभोर हो गई। खड़ी हो गई तो मेरे मैले जूते पर नजर पड़ी और सब भूलकर सहसा बोले 'तुम कैसा खराब जूता पहने हुई हो' मैंने चुप होकर नजर नीची कर ली, तो बोले—'आज का भुरता तो तुमने ऐसा पकाया है कि मैंने जीवन-पर्यन्त नहीं खाया। भुरता क्या था अमृत था। बस परसों भी ऐसा ही होगा, परन्तु सेर भर का होना चाहिए।'

मैंने दबी जबान से कहा—'अम्मा नाराज हो रही थीं कि.....।'

'हाँ, तुम अपने यहाँ पकाना, वहाँ न पकाना।' यह कहकर पाँच रुपया का नोट निकाल कर दिया और कहने लगे 'यह लो, जो कुछ खर्च हो और बाकी तुम्हारा इनाम है।'

क्या बताऊँ मेरी क्या अवस्था थी। अहोभाग्य कि मुझसे दिल्लगी तो की परन्तु मैंने सूखे मुख से कहा 'आप क्यों किसी से कोई वस्तु बाहर पकवाते हैं? मेरा इनाम तो यह है कि परसों दावत के लिए कोई और वस्तु भी मुझसे पकवाइए।' 'नहीं और कुछ नहीं। सब प्रबन्ध हो गया है। तुम भुरता ही पका देना' यह कह कर उठे और चल दिये।

मैंने देखा कि यह भुरता पकते दो बार देख चुके हैं, इस कारण कहीं इनको गुर की बात न मालूम हो जाय, जिससे सारा भेद खुल जाय। वास्तविक बात तो यह है कि भुरता पकाने में मेरी कोई कारीगरी न थी। कारीगरी तो केवल बादाम पिस्ता और मलाई इत्यादि की थी। मैंने आज और भी अधिक परिश्रम से भरता तैयार किया और आज चूँकि केवड़ा और केसर का छींटा दे दिया तो और ही मजा आ गया। वेश्याओं, शोहदों और लुच्चों ने खूब खाया और प्रशंसा की। किसी ने कहा कि बादाम पड़े हैं। किसी ने कहा कि खोया पड़ा है। और किसी ने कहा कि आलू नहीं मांस है। दो तीन महाशयों ने कहा—हम स्वयम् ऐसा पकवा सकते हैं। सारांश यह कि एक दिन निश्चित हुआ कि किसी दिन किसी दूसरे प्रतिद्वन्दी के यहाँ से भुरता पक कर आये। मेरे सौभाग्य से इस भरता का खूब किस्सा छिड़ा। मुझे आकर सब वृत्तान्त सुनाया, तो मैंने कह दिया कि ईश्वर की कृपा से आप की दासी जैसा पकाएगी, किसी से न पकेगा। ऐसा ही हुआ कि भरता आया और सब

ने खाया और सब ने यह फैसला किया कि आप की नई मामा से अच्छा कोई नहीं पका सकता। मुझे चखाया तो मुझे यह जान पड़ा कि बादाम और खोया डाला गया है, परन्तु मांस की यखनी का स्वाद और नारियल की सुगन्ध न थी। और इसके अतिरिक्त साधारण मसालों की ओर भी पर्याप्त ध्यान न दिया गया था और फिर पराठे भी न थे। तीन जगह से पक-कर आया और सब की हार हुई। एक जगह पिसा हुआ मांस मिलाया गया था, जिसको सब जान गये।

जूता मैं वही पहने हुई थी और इस सेवा का परिणाम यह हुआ कि एक दिन शाम को दो तीन जोड़ी जूते भिजवाये कि इनमें से एक पसन्द कर लो। अब यह नियम हो गया था कि जिस दिन भुरता पकता था, तो भीतर आते थे या किसी दूसरी जगह से भुरता आता था, तब आते थे, नहीं तो नहीं आते थे। मेरे अभाग्य से लोगों की भुरता की सनक भी सप्ताह भर से बन्द थी और वह बिल्कुल ही न आये थे। मैं उदास हो रही थी और मैंने यह कहकर जूते लौटा दिये कि रहने दीजिए, मेरे पास हैं।

न जाने नौकरानी ने जाकर क्या का क्या कहा कि स्वयम् भीतर आये और कहने लगे 'इन जूतों में से एक पसन्द कर लो।' मैंने नियमानुसार दबी जबान से कहा—'मेरे पास दो जोड़ी जूते रक्खे हैं।' जरा तेजी से बोले 'हाँय! तो फिर पहनती क्यों नहीं हो?' मैंने डरते-डरते कहा—'मेरी रुचि ही नहीं होती कि कोई सुन्दर वस्तु पहनूँ।' 'मत पहनो, चूल्हे में जाओ, भाड़ में पड़ो,' यह कहकर क्रोध में उठकर चल दिये।

क्षण भर तो मैं स्तम्भित खड़ी रही। सहसा मुझे रोना आ गया। न जाने जी में क्या समाई कि मैं दौड़ी। द्वार के पास ही थे कि मैंने पाँव पकड़ कर रोते हुए कहा—'क्रोध न कीजिए, मैं

अभी पहिने लेती हूँ। शायद दिल पसीज गया। मैंने रोते हुए ऊपर मुँह करके देखा तो मुस्कुरा कर बोले 'अच्छा जाव जाव, पहन लो।' मैं लौट आई और बहुत देर तक रोया की। मैंने उन जूतों में से एक रख लिया और शेष दो लौटा दिये!

[३]

भुरता का किस्सा बिल्कुल ही ठण्डा पड़ गया था। बहुधा क्या, बल्कि रात को हमेशा घर से गायब ही रहते थे, परन्तु किसी दिन ऐसा भी होता था कि मेरे भाग्य जाग उठते थे, जब वह वेश्या घर हां पर रहती थी और उस दिन मुझको भुरता बनाने की आज्ञा देते थे।

अब मेरी आदत-सी हो गई थी कि जिस दिन वह आती, अवश्य द्वार पर कान लगाकर बातें सुनती।

एक दिन वह आई और उसके लिए भुरता से अतिरिक्त दो-तीन पदार्थ स्वयम् अपनी इच्छानुसार पकाये। सब में अपने विशेष प्रयोग से काम लिया। थीं तो बहुत थोड़ी-थोड़ी, परन्तु अत्यन्त स्वादिष्ट।

मैंने द्वार पर कान लगाये तो भोजन करते ही में मुझे उनकी बातचीत से मालूम हुआ कि वह उसी दिन से आग्रह कर रही है कि पकाने वाली को मुझे दे दो। अतः उसने कहा 'यह भी कोई बात है कि आजकल-आजकल कर रहे हो। आखिर उस नौकरानी को मुझे दे क्यों नहीं देते?'

यह कहकर उसने देर तक न जाने क्या बातें की और बड़बड़ाया की और न जाने क्या-क्या उत्तर मिले। परन्तु अंत में उसने प्रतिज्ञा करा ही ली कि कल अवश्य उसको यह भुरता पकाने वाली मिल जायगी। मैंने दिल में कहा, हे परमात्मा, क्या सचमुच मुझे इस वेश्या को देंगे। यदि वास्तव में वे प्रसन्न हो जायँ, तो मुझको यह भी स्वीकार है। इतने में भोजन

समाप्त हुआ और मैं खटखट सुनकर चली आई। कोई आधे घण्टे बाद फिर गई तो वहाँ फिर वही वार्ता थी कि भुरता पकानेवाली को कल अवश्य ले आना। वह यह कहकर उठे कि मैं अभी पूछ कर बतलाता हूँ कि उसे कल भिजवा सकूँगा या परसों। मैं यह सुनकर घबरा गई, परन्तु दौड़कर बरामदे में अपनी चारपाई पर बैठ गई। घर में कोई न था। मैंने देखा कि वह सीधे मेरे पास आये। मैं खड़ी हो गई। मुझसे बैठने को कहा और खुद दूसरी चारपाई पर बैठ गये और कुछ देर चुप रहे। मैं उसी प्रकार आदरपूर्वक खड़ी थी कि फिर मुझसे कहा कि बैठ जाओ। मैं बैठ गई, परन्तु मेरा हृदय काँप रहा था कि देखिये क्या कहते हैं। कुछ विलम्ब के बाद कहा—'मैं तुमसे एक बात कहता हूँ।' मैं उसी प्रकार चुप खड़ी रही कि वह बोले—'मैं कल एक नौकरानी बुलाऊँगा, तुम उसे भुरता पकाना सिखा देना।' 'मैं स्वयम् पकाने को उपस्थित हूँ' मैंने डरते-डरते कहा। 'नहीं' कुछ झल्लाकर कहा 'तुमसे जो कहता हूँ, वह कर देना।' मैंने कहा 'बहुत अच्छा, इसमें पूछने की जरूरत ही क्या थी।'

कह कहकर मैं तनिक उनकी ओर बढ़ी और वह खड़े हो गये। मैंने हिम्मत करके उनका हाथ पकड़कर अपने कन्धे पर रख लिया और कमर में दोनों हाथ डालकर बगल में मुँह देकर रोने लगी। केवल थोड़े ही क्षण उन्होंने यह बर्दाश्त किया, फिर अपने को यह करकर छुड़ा लिया कि 'बहुत अच्छी तरह सिखा देना।' मैं आँसू पोंछती खड़ी हो गई और वह चले गये। मैं बहुत प्रसन्न थी की इश्वर की महिमा देखो कि कहाँ तो सूरत देखकर चिढ़ जाते थे और अब मुझको इतनी गुस्ताखी की इजाजत और कुछ न कहा। मैंने दिल में सोचा कि अब की मर्तबा कुछ दिल की बात भी कहूँगी।

[४]

मुझसे सभी ने तो कहा कि तू भुरता पकाने की तरकीब नौकरानी को मत सिखा, परन्तु मैं न मानी। बार-बार सोचा और तैयार भी हो गई कि न बताऊँगी; परन्तु फिर ध्यान आया कि उन्होंने बड़े आग्रह से कहा है कि इसे इस तरह सिखाना कि कोई शिकायत न हो। अन्त में मैंने निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ ही हो, मैं तो अपने मियाँ को धोखा न दूँगी। जो भाग्य में होगा, वह वैसे ही सम्मुख आयेगा। मैंने बहुत अच्छी तरह उस नौकरानी को तरकीब सिखा दी, परन्तु उससे इतना अवश्य कह दिया—जहाँ तक हो सके, तू इसकी तरकीब किसी को न बताइयो। सारांश यह कि वह नौकरानी सिखा-पढ़ाकर यह कह कर सम्मुख उपस्थित की गई कि भरता पकानेवाली यही है।

पहले दिन उसने भरता यों बिगाड़ा कि बादाम चखकर न डाले और कड़ुवा कर दिया। दूसरे दिन जो उसने पकाया वह जरा जल गया; क्योंकि धीमी आँच पर नहीं पकाया गया। तीसरे दिन जो उससे अनेक प्रश्न किये गये तो सारा रहस्य खुल गया कि असली पकानेवाली की जगह कोई दूसरी स्त्री भेज दी गई है। आई-गई आफत मेरे सर पर आई। वेश्याओं के नखरे और उनकी आज्ञाएँ भी विचित्र होती हैं और फिर उनके चोंचले का क्या कहना।

परिणाम यह हुआ कि केवल इतनी बात पर वह इतनी बिगड़ी की न जाने यह नाराज होकर रात ही को चले आये या उसने निकाल दिया। रात के बारह बजे मेरे ऊपर आकर फट पड़े। मैं सो रही थी कि मुझको जगाया और कटु शब्दों में कहा 'क्यों जी, हमने तुमसे क्या कहा था?' मैं काँप रही थी और मैंने डरते-डरते पूछा—'किस विषय में?'

'तुमने शायद उस स्त्री से कह दिया, जो उसने वहाँ जाकर कह दिया कि मैं तो बिल्कुल नई हूँ और मुझे एक दूसरी स्त्री ने भुरता पकाना सिखाकर भेजा है।'

वह पलंग पर बैठे थे और मैं खड़ी थी। मैंने एकदम से बैठकर पाँव पकड़ लिए और कहा—'आपके चरणों की शपथ है जो मैंने थोड़ा भी सिखाया हो। परमात्मा मुझे आपकी सेवा करने का अवसर न दे, जो मैंने जरा भी उसको किसी प्रकार बहकाया हो।'

वह थोड़ी देर चुप रहे, फिर पलंग पर मेरे हाथ से अपने पैर छुड़ाकर दोनों हाथ सर के नीचे रखकर लेट गये। मैं उसी प्रकार खड़ी थी। कुछ देर सोचते रहे, फिर बोले—'वह स्त्री निरी गदही है। मैंने उसको किस-किस तरह समझाया था और पाँच रुपया इनाम दिया था परन्तु फिर भी उसने कह दिया।'

मैं यह सुन कर और उनसे सहानुभूति दिखलाते हुए उस स्त्री को बुरा-भला कहकर कोसने लगी कि परमात्मा करे उसको इस दगाबाजी का उचित फल मिले। फिर वे चुप पड़े रहे। वर्षा ऋतु का समय था, ठण्ढी वायु चल रही थी, ऐसा जान पड़ता था मानो उन्हें नींद आ रही हो, क्योंकि बहुत देर से बिल्कुल इसी प्रकार आँखें बन्द किये पड़े थे। मैं खड़े-खड़े थक गई, तो धीरे से पलंग के पैताने आकर पृथ्वी पर बैठ गई और साहस बटोर कर धीरे-धीरे पाँव दबाने लगी। जान पड़ता है कि जाग रहे थे। कुछ कुलबुलाये। फिर तो मैं पैताने पलंग पर बैठ गई और अच्छी तरह पाँव दबाती रही; यहाँ तक कि वो सो गये। मेरा मन ही न होता था कि हटूँ, और यही जी चाहता था कि पाँव न छोड़ूँ। यह ईश्वर की महिमा है कि वह इसको सहन कर रहे थे और मेरे लिए इसके अधिक सौभाग्य का भला और कौन अवसर हो सकता था। सारांश यह कि मैंने तो उसी

प्रकार पाँव दबाते रात बिता दी और मुझको तनिक भी थकावट या निद्रा न मालूम हुई। बल्कि मुझे तो ऐसा मालूम हुआ कि जैसे समय बहुत शीघ्र निकल गया। सुबह आँख जो खुली, तो कुलबुला कर उठ बैठे और कहने लगे—'अरे तुम सोने नहीं गईं।' मैं भला इसका क्या उत्तर देती। जूता वह दूसरी ओर देखने लगे, मैंने पैताने से उठा कर पाँव में पहना दिया। मैंने आँखों के कोने से केवल इतना चुरा कर देखा कि वह मेरा चेहरा बड़े ध्यान से देख रहे थे। फिर जूता पहन कर सीधे बाहर चले गये।

[५]

दो दिन हो गये थे और वह चुप्प सन्नाटे में पड़े थे। मैं बार-बार समाचार मँगाती। मालूम होता कि चारपाई पर उदास पड़े हुए हैं। क्या मैं प्रसन्न थी कि वेश्या से लड़ाई हो गई? ईश्वर जानता है कि मेरी क्या अवस्था थी। प्रसन्न मैं अवश्य थी; परन्तु दुखी भी थी। मुझे यह सोच था कि उनके आनन्द के समाप्त हो जाने से मुझे प्रसन्नता की जो आशा हो चली थी, वह भी टूट गई। उस वेश्या ने साफ कहलवा दिया था कि यदि मुझसे प्रेम है तो असली भुरता पकाने वाली नौकरानी को दो। इन्होंने उत्तर में कहला दिया था कि कुछ कारणों से वह नहीं मिल सकती। अन्त में वेश्या ही हारी और हारकर उसने कहलवा भेजा कि यदि मुझे नित्य भुरता पकवाकर भिजवा दिया करें, तो मैं अपनी हठ छोड़ दूँगी।

मैं द्वार पर खड़ी सुन रही थी और इसका जो उत्तर इन्होंने दिया, वह एक ब्याहता स्त्री को प्रसन्न कर देने वाला था। तुरन्तु डाँट कर उसके नौकर से कहा—'निकल जाओ यहाँ से और कह देना कि यदि उनको हठ करना आता है तो हम भी बड़े हठी हैं।' उस कम्बख्त नौकर ने निकल जाने की जगह

वेश्या की माता की ओर से यह सन्देश दिया कि उन्होंने कहा है, 'आपके वियोग में लड़की की बुरी अवस्था है, परन्तु अभागिन अपनी हठ नहीं छोड़ती। आपके लिए रोती भी है, परन्तु हठ भी करती है और बड़ी कठिनता से समझाए-बुझाए से अब इतना स्वीकार कर लिया है कि कहती है कि नित्य भुरता पकवा कर भेज दिया करें।' परन्तु वहाँ एक 'नहीं' सब का उत्तर था। वह आदमी अन्त में झक मार कर चला गया।

मैं बहुत चिन्तित थी कि ईश्वर न करे कि कहीं इनका जी खराब हो जाय। दूसरे दिन जब मैंने देखा कि वह कम्बख्त अपनी हठ पर उसी प्रकार अड़ी हुई है तो अन्त में हारकर मैंने जल्दी-जल्दी भुरता तैयार किया और चुपके से उनके मुख्य नौकर के हाथ वेश्या के घर भिजवा दिया। घर में जितने सब नौकर-चाकर हैं, वह सब हृदय से मुझसे सहानुभूति रखते हैं और वह बेचारा बगैर कहे उसे दे आया। यहाँ उनको तो कुछ मालूम ही न था। वैसे ही चिन्तित और दुखित पड़े थे और वहाँ उसकी जो हठ पूरी हुई तो वह स्वयम् रात को चली आई। मैंने बहुत कोशिश की, परन्तु कोई बात न सुनाई दी। दूसरे दिन भी मैंने चुपके से भुरता भेज दिया और तीसरे दिन भी ऐसा ही किया।

मेरा चित्त प्रसन्न हो गया कि वह हँसी-खुशी फिर घूमने लगे और मुझसे एक मर्तबा बात भी की।

चौथे दिन शायद वहाँ कुछ प्रसंग उठा होगा जिससे उनको मालूम हो गया कि हार वास्तव में उन्हीं की हुई है। अब तक वह इसी भूल में थे कि उनकी हठ पूरी हुई है। सीधे मेरे पास आये। मैं समझ गई कि दाल में कुछ काला है। मैंने नौकरानी को संकेत किया और वह द्वार बन्द करती हुई बड़े मकान में

चली गई। मकान अकेला हो गया। आकर पलंग पर बैठ गये और स्वभावानुसार बड़ी कटुता से बोले—'तुम तीन दिन से भुरता भेज रही हो ?'

मैं भय से काँप रही थी। अपने अपराध को स्वीकार करते हुए मैंने कहा 'जी।'

'क्यों ? आखिर क्यों ?' अत्यन्त दबङ्ग आवाज में क्रोध से मेरी ओर देखकर कहा 'आखिर मुझसे बगैर पूछे तुमने भेजा ही क्यों ? आखिर क्यों ? क्या समझ कर तुमने भेजा ?' 'इसलिए' मैंने रुकते हुए कहा 'इसलिए कि कहीं आपकी तबीयत न खराब हो जाय।' वह झुँझलाकर बोले—'तुम्हारी बला से।'

मैंने सहसा जोर से कहा—'ईश्वर के लिए ! ईश्वर के लिए मुझे क्षमा कीजिए, मेरा अपराध क्षमा कीजिए।' यह कहती हुई मैं रोती हुई उनके चरणों की ओर झुकी और पैर पकड़कर सर रख दिया। थोड़ा देर तक कुछ न बोले। फिर मेरा हार दाहिने हाथ से उठाकर देखने लगे और मुस्कराकर कहा—'मूर्ख नहीं तो' शायद इन शब्दों में प्रेम की गन्ध थी कि मैं बिकल हो गई और उनके घुटने पर सर रखकर इस प्रकार रोई कि मुझे उसी अवस्था में छोड़कर शायद घबड़ाकर चले गये। वास्तव में बात यह थी कि उस कम्बख्त वेश्या से उनको अत्यन्त प्रेम था और वह उसको किसी प्रकार भूलते ही न थे। मैं भी दिल ही दिल में अब बड़ी प्रसन्न थी; क्योंकि घटनाओं में अब बड़ी तीव्रता से परिवर्तन हो रहे थे और मुझको ऐसा जान पड़ता था कि शायद मेरा समय अब फिरने वाला है।

[६]

इधर भुरता का जो भेद खुला तो फिर झगड़ा हो गया और भुरता जाना बन्द हो गया। तीन-चार दिन मैंने प्रतीक्षा

की। मैंने सोचा कि बाहर दीवानखाने में आज रात को अवश्य जाऊँगी, अतः मैंने नौकर से चुपके से कहलवा दिया कि आज वह आज्ञा लेकर चला जाय। ऐसा ही हुआ।

मैंने डरते-डरते बाहर कदम रक्खा; क्योंकि इससे पहले ऐसा करने पर मेरी वह खबर ली जा चुकी थी कि ईश्वर ही जानता है। मैंने देखा कि इधर-उधर कोई नहीं है। हुक्का पी चुके थे और एक हलका सी मलमल की दुलाई ओढ़े मसहरी पर लेटे हुए थे। मैं ऐसे दबे पाँव गई कि आहट तक न हुई। निकट पहुँच कर मैंने मसहरी का किनारा उठाया तो मुँह का चादर हटाकर बोले 'कौन है।' मैं खड़ी की खड़ी रह गई और कुछ न बोला। क्योंकि उन्होंने देख ही लिया था। फिर उसी प्रकार मुँह ढक लिया। मैं साहस करके पलंग के पायताने बैठ गई। मैंने अपना कार्य आरम्भ किया। थोड़ी देर बाद सरक-कर मैं अच्छी तरह बैठ गई और पाँव दबाती रही। अन्त में साहस बटोरकर मैंने कहा 'मैं कुछ कहना ·····चाहती हूँ।' 'क्यों ? क्या है ?' चादर को मुँह से हटाते हुए पूछा। परन्तु जब मैं चुप रही तो फिर कहा—'आखिर कुछ कहती भी हो।'

'आप नाराज तो न होंगे ?' मैंने धीरे से कहा।

'आखिर क्या है कुछ कहो तो ?'

'मेरे ऊपर दया कीजिए'—मैंने हाथ जोड़कर कहा—'आप प्रसन्न होते हैं तो यह सुन कर कि आप प्रसन्न हैं, मैं भी प्रसन्न हो जाती हूँ। आप क्यों अपने हृदय को दुख देते हैं ?' इसका उत्तर उन्होंने दिया 'हुश।' मैंने स्वभाव की कोमलता से लाभ उठाते हुए कहा—'मुझ अभागिन का क्या है, आप नाराज हो लेंगे, मैं भुगत लूँगी। जो चाहे मेरी अवस्था कीजियेगा।'

'तो इसका यह अर्थ है कि कल से फिर भुरता भेजोगी ?' उन्होंने कहा। 'जी हाँ' मैंने कहा, 'चाहे कुछ हो जाय आपका दुख

तो दूर होगा।' उन्होंने कोमलता से कहा 'नहीं, न भेजना।' 'फिर आप दुखी होंगे'—मैंने भोलेपन से कहा। इसका उत्तर फिर उन्होंने दिया—'नहीं' और कुछ ठहर कर कहा—'जाओ तुम सो रहो।' मैं कुछ रुकी तो फिर यही कहा—'जाओ भीतर जाओ' और फिर इस प्रकार कहा कि मुझे भय लगने लगा कि कहीं नाराज न हो जायँ। मैं लाचार होकर उठी और उठते-उठते एक आकर्षण से उनका हाथ पकड़ कर दोनों हाथों से हथेली को दबाती रही और चूम कर आँसुओं से भिगोती रही कि उन्होंने फिर कहा 'अब जाओ'—मैं सीधी चली आई और बहुत देर तक इन्हीं सुन्दर विचारों में लीन रही फिर सो गई।

दूसरे दिन सुबह को मेरे ऊपर विशेष कृपा यह हुई कि बाहर जो पानदान रहता था, वह भीतर मेरे पास भिजवा दिया गया। कमीज में बटन टाँकने को भिजवाये गये। वह खुद न आये; क्योंकि स्वभाव ही बाहर रहने का पड़ा हुआ था। परन्तु मुझे मालूम हुआ कि आज तो प्रसन्न हैं।

रात को कोई ग्यारह बजे होंगे और मैं सो रही थी कि द्वार पर जोर-जोर से किसी के हाथ मारने का शब्द सुना। मैं चौंक पड़ी और मुझे विस्मय हुआ कि यह द्वार तो रात भर खुला रहता है; किसने बन्द किया। एकदम से मैं उठने को हुई कि दासी को जगाऊँ कि बराबर वाले पलंग पर से आवाज आई 'हूँ! रहने दो।' मैंने जल्दी में देखा भी न था कि यह कौन बैठा हुआ है। मैं तुरन्त उठ खड़ी हुई और कहा 'आप खुर्द पर न लेटें।' इसके उत्तर में उन्होंने चुप रहने का संकेत किया कि तुरन्त ही फिर द्वार पर किसी ने हाथ मारा और जनानी आवाज में पुकारा 'खोलो।' घटना इस प्रकार थी कि वह वेश्या आई हुई थी और अब यह स्वयम् नाराज होकर द्वार बन्द करके

भीतर आ बैठे थे। भौंचक्की खड़ी थी और समझ में न आता था कि क्या करूँ।

इतने में फिर द्वार पर बड़े जोर-जोर से उसने हाथ मारा और चिल्लाई, तो मैंने धीमे शब्दों में कहा—"परमात्मा के लिए आप चले जाइए। नहीं तो·····।"

'चुप रहो।' उन्होंने मुझसे डाँट कर कहा और सीधे द्वार पर जाकर जोर से कहा—"निकल जा चुड़ैल, तू मेरे यहाँ से नहीं तो पुलीस में दे दूँगा।" साथ ही नौकर को भीतर से पुकार कर कहा कि इसे जल्दी निकालो। नौकर ने थोड़ी देर बाद आकर कहा—'वह नहीं जाती और यहीं सो रही है।'

'मरने दो हरामजादी को।' कहकर चले आए।

जब जरा उनका जी हल्का हुआ तो मैंने हठकर पलंग पर लिटाया और गर्मी थी, इसलिए मैं पंखा भी झलने लगी। पान माँगा तो इत्तिफाक से बर्फ मौजूद थी। मैंने केवड़े के शर्बत का गिलास बनाकर पिलाया और उसी प्रकार फिर पंखा झलने लगी। थोड़ी देर में तबीयत बिल्कुल ठीक हो गई। मेरी ओर टकटकी बाँधे देख रहे थे। एकदम हाथ उठाकर पंखा रोका और मुझसे बड़े प्रेम से कहा—"यहाँ बैठ जाओ।" मैं पाटी पर बैठ गई और पंखा झलने लगी। मेरे हाथ से पखा ले लिया और हाथ में हाथ पकड़ उठ बैठे और मेरी आँखों में आँखें डालकर कहा 'बीबी'। मैं उसी प्रकार देख रही थी। मेरी विचित्र ही अवस्था थी कि फिर कहा—'बीबी, मैंने जो कुछ भी तुम्हारे ऊपर अत्याचार किये हैं, उन्हें क्षमा कर दो।'

मेरे ऊपर एक बिजली-सी गिरी। एक चीख सहसा मेरे मुँह से निकली और मैं अचेत होकर गिर पड़ी।

जब चेत हुआ, तो देखा कि वही अत्याचारी मियाँ जो कभी मुझसे पंखा न झलवाते थे, आज खुद मेरे ऊपर पंखा

फल रहे हैं। मैंने कमजोर हाथों से रोकना चाहा: परन्तु मेरी ऐसी अवस्था हो रही थी कि जान पड़ता था कि शायद मर जाऊँगी।

[७]

सुबह होने से पहले ही वह कम्बख्त वेश्या सोने की घड़ी और कुछ रुपये जेब से निकालकर भाग गई। उसने बाद में लाख-लाख कोशिश की परन्तु असफल रही। अब उससे भेंट करना तक उन्हें सहन न था। अब पन्द्रह-बीस दिन से संसार में यदि कोई उनका प्रेमी और मित्र है, तो मैं। तब से न तो उन्होंने अपने पुराने बदमाश मित्रों से भेंट की और न किसी वेश्या से।

बहन, चाहे कोई माने या न माने; परन्तु मेरा तो विश्वास है कि जरा से बहाना पर मियाँ ने जो अपनी रखैल स्त्री को छोड़ दिया तो केवल इस कारण से कि छोड़ने से पहले मैंने उनके हृदय में प्रवेश कर लिया था। उनके सम्मुख दो स्त्रियाँ थीं, जो एक दूसरे से नितान्त विपरीत थीं और इसके पूर्व उनके सम्मुख केवल एक ही व्यभिचारिणी स्त्री थी। मेरे जान में एक दो नहीं, बल्कि दस-पाँच ऐसी हैं, जिन्होंने अपने हठी पति का बाजारू और रखैल स्त्रियों से पीछा छुड़ाने के लिए ऐसी स्त्रियों पर विष का प्रयोग किया है। परिणाम यह हुआ कि पति को उस स्त्री से अधिक प्रेम हो जाता है जो झूठे प्रेम के पीछे विष या दूसरे कष्टों का लक्ष बनती है। पति दिल में सोचता है कि यह मेरे प्रेम में अनेक प्रकार के कष्ट उठाती रही है, यहाँ तक कि विष तक उसे दिया गया है, अतः यही स्त्री पूजनीय है।

मैंने बहन खातून की यह विचित्र कहानी सुनी। मैं विस्मय की मूर्ति बनी हुई उनको टकटकी बाँधे देख रही थी।

सहनशीलता और धैर्य का एक जीवित चित्र मेरे सम्मुख था। कैसे कठिन प्रयोगों के साथ किस साहस से, एक पतिप्राणा स्त्री ने ऐसे झंझावात का सामना किया, और प्रत्येक कुचक्र को हराया। परन्तु साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि इस पाशविक व्यवहार के लिए न तो स्त्री का जन्म हुआ है और न किसी धर्म ने स्त्री को यह पद दिया है। मुसलमानों में तो अब यह प्रश्न उठा है कि क्या अब से साढ़े तेरह सौ वर्ष पूर्व इस प्रकार के व्यवहार और घटनाएँ सम्भव थीं। न तो यह घटनाएँ उस काल में सम्भव थीं और न सहन की जा सकती थीं; परन्तु अब अलबत्ता यह बात है कि प्रत्येक उस पुरुष की यही इच्छा है जिसके मुख पर 'खुदा का नूर' अर्थात् 'डाढ़ी' उपस्थित है कि मैं भी इसी प्रकार आलू का भरता खाऊँ। यह वह अपमान है जिसको सहन किये बिना भारतीय बालिकाओं का न तो जीवन ही सुधर सकता है और न वह प्रसन्न रह सकती हैं। जिस जाति में स्त्री की यह गति हो, प्रकट है कि उसकी सामाजिक अवस्था क्या होगी ?

मैंने बहन खातून से कहा—'बहन, तुमने वास्तव में कमाल किया; परन्तु ऐसे आदमी का क्या ठीक।' 'क्या ठीक ?' खातून ने जरा तीव्र होकर कहा—'बहन अब तो मेरा पल्ला भारी है। बस आँखें खुलने की देर थी, और मैंने आँखें खोल दी हैं। बाजारू प्रेम एक खोटी वस्तु है, कब तक चलती।'

देर तक विस्तारपूर्वक खातून से बातें किया कीं! अपनी कथा सुनाने के बाद उन्होंने शाहिदा की वार्ता छेड़ी। मैंने उनसे साफ कह दिया 'बहन मैं तुम्हारे सिद्धान्त के विरुद्ध हूँ। शाहिदा के स्वभाव में और तुम्हारे स्वभाव में आकाश-पाताल का अन्तर है। तुम तो झटकी हुई हो। आखिर वह सम्बन्ध किस काम का कि दोनों पार्टी में खींचा तानी रहे। शाहिदा

यह सम्बन्ध बिलकुल नहीं पसन्द करती और न कोई उपाय है कि वह मान जाय। यह बात और है कि उसके साथ जबरदस्ती की जाय।' खातून ने मेरी बातों को बड़े ध्यान से सुना और मेरे विचार से सहमत भी हुई; परन्तु अपने स्वार्थ की फिलासफी को किसी दूसरी प्रकार समझाने की कोशिश करते हुए बताया कि उनकी कोशिश बिलकुल ठीक है और यह कि शाहिदा का विरोध केवल मानसिक है। जो ब्याह के उपरान्त तुरन्त जाता रहेगा। मुझसे उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि इस कार्य में मैं उनकी सहायता करूँ; परन्तु मैंने साफ कह दिया—'इसमें मैं कुछ नहीं कर सकती, क्योंकि अभाग्य से बहन शाहिदा जब तक स्वीकार न करेंगी, तब तक उनके विचारों से मैं भी सहमत हूँ। उन्होंने सुनाया कि सन्देशा भी भेज दिया गया है। शाहिदा के पिता ने वादा तो किया है; परन्तु पक्का उत्तर नहीं दिया है। कुछ परामर्श के बाद वह भी मिल जायगा।'

चलते चलते कहती गई कि शाहिदा को समझाना-बुझाना। मैंने फिर जोर देकर कह दिया कि यदि शाहिदा स्वीकार करले तो अच्छा है, नहीं तो शाहिदा की सब सहेलियाँ शाहिदा से पहले इसके बिरुद्ध खड़ी होंगी और उनसे जो बन पड़ेगा, करेंगी।

जिस प्रकार हँसती हुई बहन-खातून आई थी, उसी प्रकार हँसती हुई चली गई।

फीरोजा

'फीरोजा!' मौलाना के मुँह से निकला।

'जाहिदा!' मेरे मुँह से निकला।

मेरा हाथ खुद-बखुद चित्र की ओर बढ़ गया। मैंने मौलाना

को ओर देखा और उन्होंने मेरी ओर। मैं चित्र की ओर देखने लगी और वह पृथ्वी की ओर।

यह किसका चित्र था? मेरी प्रिय सखी, मेरा भेद जानने वाली और मुझसे सहानुभूति रखने वाली मेरी प्रिय जाहिदा या फीरोजा का चित्र था।

पहले मौलाना का इन्हीं से ब्याह ठीक हो रहा था। हम दोनों पति-पत्नी अत्यन्त लज्जित थे। मैंने कनखियों से मौलाना के गम्भीर परन्तु सुन्दर मुख को देखा·····सहसा मुझे कुछ अकथनीय कष्ट-सा हुआ। क्योंकि वह पश्चात्ताप कर रहे थे! अवश्य पश्चाताप कर रहे थे और वह भी इस कारण से कि उन्होंने स्वयम् ही तो फीरोजा के यहाँ की बात-चीत नहीं तोड़ी थी; परन्तु हाँ, इस सम्बन्ध में एक प्रकार की ज्यादती अवश्य की थी। स्त्री-स्वभाव भी एक विचित्र वस्तु है। मुझे यह कदापि स्वीकार न था कि उनको इस बात के लिए परचाताप हो। मैं यह चाहती थी कि मैं खुद पश्चाताप कर लूँ कि ईश्वरेच्छा से मैंने एक अच्छे पति से बेजाने-बूझे और केवल घटनावश, महरूम कर दिया। हालाँकि अगर देखा जाए तो उनका अफ-सोस करना ठीक था और मेरा बेकार। उनका थोड़ा बहुत अपराध था भी कि उन्होंने जान-बूझ कर ऐसी लड़की को खामखाह मेरे लिए ठुकरा दिया। परन्तु मेरा तो किञ्चित-मात्र अपराध न था। तो भी यदि ध्यान से देखा जाय तो उनका भी कोई ऐसा अपराध न था; क्योंकि उन पर मेरे जीवन को नष्ट करने का ऐसा लाँछन लगता था, जिसके उत्तरदायित्व का भार सोलह आने उन्हीं पर था। फिर भी मुझे यह स्वीकार न था कि मौलाना किञ्चित-मात्र भी पश्चाताप करें।

मेरे ब्याह का अन्धकार-पूर्ण परिच्छेद यदि कोई था, तो केवल यही था। मैंने फिर मौलाना के गम्भीर मुख को ध्यान से

देखा। मुझे अधिक कष्ट हुआ। मुझे बुरा मालूम हुआ और मैंने मुरझाये हुए मुख से कहा—'तुम खामख्वाह क्यों इस प्रकार की बातें करते हो ?' पर बाहरे नाड़ी-विज्ञान कि इसका उत्तर भी उन्होंने विचित्र रूप में दिया। 'हैं !' मेरे मुँह से निकला परन्तु वह मेरे हाथ से चित्र लेकर फाड़ चुके थे। क्या मैं उनके इस कार्य से प्रसन्न हुई ?·····खेद है, मैं स्वीकार करती हूँ कि मैं अवश्य प्रसन्न हुई। अब मैं जो सोचती हूँ, तो ऐसा मालूम होता है कि शायद दुनियाँ में इसके अतिरिक्त कोई और उत्तर न था, जो मुझे सन्तोष दे सकता। चित्र फाड़ कर मौलाना बोले—'और तो कुछ नहीं, मुझे सिर्फ इतना ख्याल आता है कि वह आगरा से आकर चुपके से मुझे देख गई थी। यह मुझे पीछे से मालूम हुआ।'

पहले भी कह चुके थे और मुझे यह बात मालूम ही थी। फीरोजा मुझे तीन पत्र लिख चुकी थी और मैंने एक का भी उत्तर न दिया था। उसको यह तक न मालूम था कि मेरे ब्याह के महीने भर बाद ही, बल्कि इससे शायद कुछ पहले जो उसका पत्र मेरे पास आया था, वह मेरे लिए आवश्यकता से अधिक कष्टदायी था, उसने मुझे लिखा था—'बहन, मेरा भाग्य भी तुम्हारा ही ऐसा हो गया।' फिर एकदम से अपने मंगेतर के ब्याह हो जाने का हाल विस्मयपूर्वक लिखा था। उसमें लिखा था— 'या तो सुना था कि अब ब्याह-तिथि निश्चित होगी और या फिर सहसा सुना कि न जाने किस लड़की को रेल में देखकर उससे ब्याह भी कर कर लिया।' यह पत्र मेरे घर के पते पर गया और फिर वहाँ से यहाँ आया।

मैं भला इसका क्या उत्तर देती ? बल्कि यह कहिये कि कैसे देती। एक दो नहीं बल्कि दर्जनों पत्र लिखने के कागज

खराब किये। नित्य नियम ही यह हो गया कि इसी बीच में कोई पंद्रह बीस दिन बाद उसका दूसरा पत्र आया।

इस पत्र में पहले पत्र का उत्तर न मिलने की शिकायत थी और फिर अपनी मानसिक अवस्था का हाल लिखा था। वास्तव में यहाँ कुछ-कुछ शाहिदा से मिलती-जुलती समस्या आ गई थी। घटना यों हुई कि दो जगह से उसके ब्याह के सन्देश आये। एक तो मौलाना का, एक और दूसरी जगह से। दोनों जगहें अच्छी थीं; बल्कि आर्थिक अवस्था में दूसरी जगह हमारे यहाँ से अच्छी थी। पर बहन फीरोजा ठहरीं नवीन विचारों वाली, और यह न समझीं कि बाद में यही नवीन विचार कहीं दुखदायी न हो जायँ। स्वतंत्र तो हैं ही, शौक चर्राया कि लाओ मंगेतर को देखूँ। अतः दौड़ी देखने। आगरा तो था ही, किसी मिलने वाली के द्वारा ताक-झाँक करके और अपना सन्तोष करके चलीं गईं। इसके बाद घटना ने एक नया रूप धारण किया। वह यह कि एक को तो देख कर पसन्द कर लिया और दूसरा देखने ही में न आया। अतः उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि उसको बिना देखे ही अस्वीकार कर दिया जाय। इनसे जब घरवालों ने किसी तरकीबों से पुछवाया तो इन्होंने मौलाना के लिए स्वीकृति दे दी।

दूसरे मंगेतर या उम्मेदवार का नाम यूसुफ था और घटना चक्र तो देखिये कि इनके भी खातून की तरह एक बहन थीं। अतः वह हाथ धोकर फीरोजा के पीछे पड़ गईं। परन्तु वह गलती पर थीं। क्योंकि फीरोजा के यहाँ आवश्यकता से अधिक स्वतंत्रता थी और अपने निजी कार्यों में वह इतनी स्वाधीन थी कि उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी कार्य के करने का विचार भी उसके माता-पिता दिल में न ला सकते थे।

परन्तु उद्योग करने वाले यह बातें थोड़ा देखा करते हैं। अतः भाई और बहन ने उद्योग करना शुरू किया। वह इस प्रकार कि फीरोजा के सगे-सम्बन्धियों के द्वारा सिफारिश पहुँचाई गई।

हर मिलनेवाले और मिलनेवाली को बीच में डाला गया और अन्त तक उद्योग किये गये। पर इस प्रकार के कार्य एक लड़की कहाँ तक पसन्द कर सकती है।

फीरोजा का कहना था—'लड़कियों के सर पर यह एक नवीन कर्तव्य थोप दिया है और नई ड्यूटी लगा दी गई है कि वह हरदम इस बात का उद्योग करती रहें कि कहीं उनका ब्याह उन लड़कों के साथ पक्का न हो जाय जिनके साथ शादी करने के लिए वह राजी नहीं हैं।'

अतः फिर इस सिलसिले में फीरोजा ने बड़े कठोर पत्र यूसुफ साहब की बहन को लिखे। हद कर दी और उनको और उनके भाई को 'कमीना' तक लिख मारा।

जब दोनों ओर इस सीमा तक घृणा हो गई, तब जाकर फीरोजा की जान छूटी और जब उस ओर से कोई शंका न रही और मौलाना के साथ ब्याह पक्का होने को हुआ तो यह गुल खिला अर्थात् मेरा ब्याह हो गया। जब तक फीरोजा पर कुछ न गुजरी थी, उस समय तक यह सब बातें उसने मुझे नहीं लिखीं। परन्तु जब उसका भी ब्याह छूट गया, तो उसने अपने दूसरे पत्र में सारा कच्चा चिट्ठा मुझे लिखा और यह भी लिखा कि अब वह फिर उद्योग में है। परन्तु मैंने इस पत्र का भी कोई उत्तर न दिया। बल्कि यह कहो कि देना तो बहुत चाहा, परन्तु दे न सकी। घंटों सोचती, दुखित हो जाती, लिखने के उद्योग में कागज पर कागज बिगाड़ती; परन्तु पत्र

न लिख सकती, लाचार हो जाती और फिर धीरे-धीरे ध्यान से बात उतर जाती।

इसके बाद उसका तीसरा पत्र रजिस्ट्री किया हुआ आया। इसमें मेरे उत्तर न देने पर क्रोध नहीं प्रकट किया गया था; बल्कि मेरे साथ सहानुभूति की गई थी; क्योंकि वह बेचारी तो यही जानती थी कि मैं और मेरी माता दोनों मेरा ब्याह न होने के कारण परेशान हैं। उस बेचारी को क्या मालूम कि मैं न जाने कब की ब्याहा जा चुका हूँ। इस पत्र में उसने लिखा था कि धन्य भाग्य हैं, जो यूसुफ साहब से जान छूटी। बड़े विस्तार से उसने यूसुफ साहब की कमीना हरकतों का जिक्र किया था—'अब जब कि दूसरी जगह कोई सम्बन्ध न रहा, सम्भव था कि मैं इतनी विरुद्ध न होती; परन्तु यह कमीना हरकतें ऐसी हैं कि मरते मरते मर जाऊँ; परन्तु ब्याह कदापि नहीं हो सकता।'

इस पत्र का जवाब मैंने दिया था। इसमें बिना कुछ घटाए बढ़ाए सच्ची-सच्ची घटना को 'क' से 'ह' तक लिख दिया था और यह भी लिख दिया था कि तुम्हारे पहले के दोनों पत्रों का किस प्रकार उत्तर लिखने की कोशिश की।

अब मजा देखिए कि मेरे इस पत्र का जवाब नदारद। मैं भी चुप हो गई। आखिर को एक पत्र आया और उसमें मेरे इस विचित्र शादी पर धन्यवाद दिया गया था। प्रसन्नता भी प्रकट की गई थी और पत्र अनेक प्रकार के विचारों से भरा था।

यह भी लिखा था कि उसका ब्याह दूसरी जगह तय हो रहा है, बल्कि पक्का ही समझना चाहिए। फिर, इन होने वाले पति का संक्षेप में जीवन चरित्र भी लिखा था और मजा यह कि साथ ही फिर यूसुफ साहब को बुरा-भला भी लिखा था।

जिनके कमीनेपन और स्वार्थ का उदाहरण दुनिया में मिलना मुश्किल है।

इस पत्र को पढ़कर मैं बहुत प्रसन्न हुई, क्योंकि इसी बहाने से मेरा भी धन्यवाद देना सम्भव हुआ। तनिक विचार करने की बात है कि फीरोजा इतने समीप थी; परन्तु मेरी हिम्मत न पड़ती थी कि उसे बुलाऊँ कि बहन, सुबह आना और शाम को चली जाना और न उनके ख्याल कि लिखें कि बहन मुलाकात किये बहुत दिन हो गये; एक दो दिन के लिए आऊँगी।

जब इस प्रकार मेरे सर से एक बोझा-सा उतर गया तो हम दोनों सखियों में पत्र-व्यवहार फिर शुरू हो गया और पत्रों में ज्यादातर एक-दूसरे के ब्याह ही का जिक्र रहता था।

[२]

इसके बहुत दिन बाद का किस्सा है कि बाहर मौलाना से मिलने दो-तीन लड़के आये। मौलाना तेजी से मेरे पास आये और उन्होंने मुझे चुपके से बताया कि 'वह देखो, टेनिस का बल्ला लिए दाहिना पैर कुर्सी पर रक्खे जो खड़े हैं, यही हैं वह यूसुफ।'

मौलाना यह कहकर झपटकर सिगरेटों का डब्बा लेकर पहुँचे और शायद इस ख्याल से कि मैं अच्छी तरह देख लूँ, सामने के पेड़ के पास से साथियों को लिए निकले चले गये।

मैंने मिस्टर यूसुफ को बड़े ध्यान से और अच्छी तरह देखा। खूबसूरत आदमी थे। बिलकुल साफ और रोशन चेहरा था। घने बाल थे और अच्छा बड़ा क़द था। स्वस्थ और बलवान मालूम होते थे। सारांश यह कि डील-डौल से बहुत अच्छे और सुन्दर नवयुवक थे। जहाँ तक वस्त्र और दूसरी ऊपरी वस्तुओं का सम्बन्ध था, आवश्यकता से अधिक रुपया-पैसा वाले और अच्छे घराने के मालूम होते थे। मेरी समझ में न आया कि

इनमें कौन-सी कमी है जिसकी वजह से कोई भी लड़की इनको नापसन्द कर सके; परन्तु फिर मैंने सोचा कि ऊपरी तो सबको दिखाई पड़ती है परन्तु भीतर का हाल ईश्वर जाने। परन्तु मेरी समझ में न आया कि ऐसा अच्छा नवजवान भला किस तरह कमीनापन पर उतर आयगा, हालाँकि स्वयम् अबुलहसन साहब की घटना मेरे सामने थी। परन्तु इनमें और अबुलहसन साहब में वह अन्तर था, जो पृथ्वी और आकाश में संभव है।

शाम को मौलाना से और अधिक विस्तार में हाल पूछा। मौलाना ने भी उनसे मिलकर कुछ हालत बताये और सुना और पूछा और सुन चुके थे। हालाँकि यह पहली ही मुलाकात थी और परिचय आज ही हुआ था। जरा मजा तो देखिये कि यह महाशय भी मानो देखने में भले-चंगे थे; परन्तु केवल अपनी बहन के कहलाने पर फीरोजा पर कुछ आसक्त से हो चुके थे। चूँकि उन्होंने फिरोजा को नहीं देखा था (यह भी इत्तिफाक ही कहिये या इन महाशय की सुस्ती, नहीं तो वह तो बुरका का पर्दा सर पर डाले दनदनाती फिरती थी। वह अपने नाना के कारण कसम खाने को बुरका जरूर पहने रहती थी) अतः न तो उन्हें फीरोजा के न मिलने का अफसोस था और न ख्याल ही था। यह जरूर कहते थे कि 'मेरी बहन मारे तारीफ के मरी जाती थी और उसने जरूर बेहद कोशिश की और थोड़ी बहुत मैंने भी की।'

उस कमीनेपन का, जिसका जिक्र फीरोजा ने बार-बार अपने पत्रों में किया था, कुछ और अधिक विस्तारपूर्वक हाल मालूम हुआ। यूसुफ साहब इस बात को मानते थे कि उन्होंने तो कम परन्तु हाँ, उनकी बहन ने अलबत्ता यह किया कि मालूम भी हो गया कि फीरोजा की मरजी नहीं है। फिर भी एक विशेष उपाय से फीरोजा के चचा और मामूँ साहब से ऐसा जोर डल-

बाया था कि सफलता हो ही गई थी। परन्तु यूसूफ साहब ने दिल की बात कह दी 'सच पूछते हो तो जब मुझे यह मालूम होगया कि दूसरी पार्टी का मर्जी नहीं है, तो मेरा आकर्षण ही जाता रहा और अब तो कभी भूलकर भी ख्याल नहीं आता।'

कुछ भी हो, यह बातें तो अब बिल्कुल बेकार थीं, क्योंकि उधर फीरोजा का ब्याह तय हो रहा था; बल्कि हो चुका था और इधर यह महाशय विलायत जाने के लिए पर तौल रहे थे। मैंने फीरोजा को लिखना उचित न समझा कि यूसुफ साहब को देखा। और नहीं तो उनको कम से कम 'यथा नाम तथा गुण' तो अवश्य पाया।

इस किस्सा को सुनाने की मुझे इस कारण से और भी अधिक आवश्यकता हुई कि और सहेलियों के हाल तो मैंने बताये। यदि अपनी सबसे पहली मुँह बोली बहन के हाल केवल इस कारण से छिपाती कि जहाँ उसका ब्याह हो रहा था, वहाँ मेरा हो गया, तो यह सरासर ज्यादती होती।

अल्टीमेटम

खातून का अल्टीमेटम!—शाहिदा ने उसे हँस के उड़ा दिया। उसे पूरी आशा थी कि उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी की न चलेगी, ऐसी अन्धा-धुन्ध बातें शिक्षित घरानों में होना ही असम्भव है, और विशेषकर इस नई सभ्यता के युग में। जब छोटे-बड़े सबकी जबान पर यही हो कि लड़की की इच्छा के विरुद्ध ब्याह न हो और बिना लड़की से परामर्श किये कहीं बातचीत पक्की न की जाय, तो फिर भय ही काहे का। बल्कि

शाहिदा ने कहा 'देखना उसकी अक्ल ठिकाने न कर दी, तो मेरा जिम्मा।'

'बहन खातून, मैंने सुना है कि तुम्हारे बाबा ने किसी कोयले की खान का ठेका लिया है।' शाहिदा ने एक जगह अपनी सहेलियों के जमघट में खातून और उनके घराने की साँवली रङ्गतों पर चोट करते हुए कहा। परन्तु खातून तो शाहिदा पर जी जान से आसक्त थीं। उनके इतने कटु और कटाक्षपूर्ण वाक्यों से बुरा न माना। उत्तर दिया—'बहन, कोयले में तो घाटा आया। अब यह व्यवसाय ही छोड़ देंगे।'

एक कहकहा लगा और शाहिदा चमक कर बोलीं—'फिर क्या करोगी?'

'करेंगी! खातून अपने नमकीन चेहरे पर शरारत का भाव प्रदर्शित करते हुए बोलीं—'ईश्वर की कृपा से कुछ खड़िया के व्यापारियों से बातचीत हो रही है। देखो, क्या होता है!'

यह चुभता हुआ वाक्य शाहिदा पर जम गया। फिर एक कहकहा लगा।

शाहिदा की दिल्लगी की मैगजीन समाप्त हो चुकी थी। अतः आगई वह पत्थरों पर। तीर की तरह उन्होंने यह चोट खाई और बिलबिलाकर और जलकर बोलीं—'यह मुँह और मसूर की दाल! बहन, तुम्हारे पास तो रुपया है। फिर बीस हजार में तो चार हबशिनें आयँगी। अच्छा आनन्द रहेगा।'

इस कटु वचन को खातून ने बिल्कुल नए ढग पर लिया; बोलीं—'हम क्यों हबशिनों को लाएँ। हम तो एक तुर्किन

लाएँगी।' यह कहकर शाहिदा की ओर मुस्कुरा कर खातून ने आँखें झपकाईं।

'कभी देखी है तुर्किन तुमने?' शाहिदा सर हिला कर बोली 'कभी स्वप्न में भी देखा है? मुई हबशिन! कोई देखी होगी अपनी सरीखी·····।'

'हाँ देखी है। हबशिन नहीं तुर्किन। बल्कि तुर्किन क्या चीज है असली कोहकाफ की परी हैं·····अरे भाभी जान! ·····ऐ·····यह देखो। कोहकाफ की परी है·····।' यह कहकर खातून ने लपककर मेज पर से शीशा उठाकर शाहिदा के मुँह के सामने कर दिया 'यह देखो!'

बस, जो आनन्द आया, वह बयान से बाहर है। एक जबर्दस्त कहकहा लगा और शाहिदा ने भी खिसियानी हँसी हँसकर शीशा पर ऐसा हाथ मारा कि खातून के मुँह पर जा लगा।

मारे क्रोध के उसके मुख से कुछ अशिष्ट वाक्य निकल गये 'चुड़ैल, कम्बख्त तेरी भाभीजान होगी कोई गवाँरिन·····!' 'कोहकाफ की परी' चमककर खातून ने कहा और जलकर शाहिदा ने खातून के घर के घर को इस बुरी तरह ले डाला कि हम लोगों ने बीच बचाव किया। शाहिदा के यह सब कटु और कठोर शब्द खातून ने सुना, परन्तु चेहरे पर जरा भी शिकन न डाली। बड़ी कठिनता से खातून को रोका गया कि वह भविष्य में भाभीजान न कहें। वह राजा हो गईं और हम लोगों ने चाहा कि शाहिदा से इनका मेल करा दें।

खातून ने शाहिदा के गले में बाहें डालीं। हाथ जोड़े, खुशामद की, परन्तु शाहिदा न मानती थी, न मानी। बल्कि फिर कटु वाक्यों का प्रहार आरम्भ कर दिया। अन्त में जल कर चुपके से खातून ने कहा—'देखना है, आखिर वह बन्नो

बीबी जाती कहाँ हैं। न भाभीजान बनाकर छोड़ूँ, तो खातून नाम नहीं।'

जब शहीदा ने यह बात सुनी तो कहा—'चुड़ैल कहीं की, आई है वहाँ से गुलामों का सन्देश लेकर। परमात्मा गुलाम बनाए, परन्तु गुलामों की सी सूरत न दे।' परिणाम यह हुआ कि दोनों में लड़ाई ठन गई। परन्तु खातून का पल्ला भारी पड़ रहा था। सूरत शक्ल तो परमात्मा की दी हुई है। मिस्टर अबुल हसन वैसे बहुत ही तेज और चतुर विद्यार्थी थे और फिर शिक्षा की भी अन्तिम मञ्जिल थी।

इसके अतिरिक्त रईस के लड़के और कम खर्चीले नवजवान ऐसे कि इस प्रकार रहते थे मानो किसी को विश्वास नहीं होता था कि यह रईस बाप के बेटे हैं। फिर ऐसे लड़के का सन्देशा किसी के यहाँ जाय बीस हजार नकद मेहर के साथ और कोठी मुँह दिखाई को तो भला कौन होगा जो इनकार कर दे। पुरुष के गुण देखे जाते हैं, सूरत नहीं देखी जाती। और फिर यहाँ तो दुलहा में बुद्धि, धन और विद्या यह तीनो अनमोल गुण मौजूद थे। शाहिदा के माता-पिता भी बहुत ही नवीन विचार वाले थे और पहला कर्तव्य उन्होंने यह समझा कि लड़की की राय लें। और लड़की की राय सब लोगों पर प्रकट ही थी। इसलिए शाहिदा की माता ने एक दिन हम लोगों को बुलाकर और सभा करके कहा कि हम सब शाहिदा को समझाए। हम सब ने वादा तो कर लिया, परन्तु ईमान की बात है कि मिस्टर अबुल हसन की बातें सुन सुनकर बजाय समझाने के हम लोगों ने और उल्टा भड़काया। साथ ही यह भी ध्यान था कि कहीं दूसरी जगह बातचीत हो तो अच्छा है; परन्तु बस न चलता था। इसी प्रकार की खींचमखानी चल रही थी और केवल इस कारण कि शाहिदा के पिता ने अबुलहसन साहब

के यहाँ के सन्देश का उत्तर न दिया था, बल्कि कह दिया था कि हम सोच रहे हैं। इसी बीच में जब हर तरह खातून का पल्ला भारी पड़ता मालूम होता था और शाहिदा बुरी तरह घबड़ा रही थी कि एक विचित्र घटना घटित हुई।

[३]

एक दिन का जिक्र है कि मैं अपने कमरे में बैठी सी रही थी कि एक ताँगा कमरे के सामने आकर रुका। बहन शाहिदा झट से उतरीं। मैं ताँगेवाले को किराया देने में लगी और शाहिदा कमरे में जाकर लेट गई।

'मैं क्यों आई हूँ ?' शाहिदा ने मुस्कुराते हुए कहा।

मैंने देखा कि शाहिदा बेतरह मुस्कुरा रही है। कहाँ तो खातून का अल्टीमेटम जब से आया था, चिन्तित रहती थी और कहाँ मुख पर वह प्रसन्नता। मैंने सर से पैर तक शाहिदा को देखा तो अत्यधिक प्रफुल्ल पाया। 'कुशल तो है' मैंने कहा, 'क्या कोई नवीन समाचार ?'

'हाँ, नवीन समाचार यह कि दुष्ट मर गया।'

'कौन !' मैंने कहा—'कौन मर गया ?'

'वही कम्बख्त··· ··गुलाम·····खातून वाला !'

मैंने विस्मित होकर कहा—'हैं, नहीं।' हँसकर शाहिदा ने कहा, 'परसों।' और यह कह कर मुँह पर एक पत्र फेंक मारा। मैंने पत्र उठाकर खोला और पढ़ा। मारे खुशी के मैं उछल पड़ी। यह शाहिदा के छोटे मामा का पत्र था, जो उन्होंने अपनी बहन को लिखा था। शाहिदा के ब्याह के बारे में अपने साले मियाँ शाहिद के साथ, वही गुलाबजामुन वाले शाहिद !

मेरा यह हाल हो गया कि ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की नीचे। मारे खुशी के शाहिदा से लिपट गई। उफ ओह ! मैं

किस कदर खुश थी, बयान नहीं कर सकती। मैंने पत्र को फिर पढ़ा और फिर पढ़ा। मामा साहब को नई-नई दुलहिन की माँग थी। उन्होंने किस जोर से अपनी बहन को लिखा था—'शाहिदा को तुम्हें देना पड़ेगा। मैं कोई बहाना न सुनूँगा।' फिर लड़के की तारीफ थी। हम दोनों से अधिक भला लड़के की तारीफ कौन जानता था।

शाहिदा ने कहा—'मुझे तो बस यह खुशी है कि उस कलमुँही की अच्छी तरह खबर लूँगी। उसका जीना कठिन न कर दूँ, तो मेरा नाम नहीं।'

बात अब पक्की हो गई थी। कल पत्र लिख दिया जायगा कि हमें स्वीकार है। यह सब बातें खूब अच्छी तरह चुपके से सुनकर आई थी। पत्र अपने पिता के कोट की जेब में से उड़ा लाई थी। कहने लगी कि अब मैं जाती हूँ, इस बीच में कहीं पिता जी न आ जायँ। मैंने उससे कहा—'कम्बख्त, अब खिला एक दावत अच्छी सी।' उसने तुरन्त स्वीकार कर लिया। कहने लगी—'तू अपने यहाँ चुपके से कीजियो। बल्कि कल ही कर दे। मैं दस रुपये तक खर्च कर दूँगी, परन्तु हाँ, जरा उस कलमुँही को जरूर बुलवाइयो।'

यह कहकर शाहिदा चली गई। रुपये उसी दिन शाम को उसने भेज दिये; परन्तु यह प्रस्ताव किया कि जब मामा के ससुर साहब के यहाँ से नियमानुसार सन्देश आ जाय और इधर से उसका उत्तर चला जाय, तब दावत हो। क्योंकि अभी तो केवल मामा को पत्र लिखा जा रहा था कि आप सन्देश भिजवाइए। [४]

कोई दस दिन मुश्किल से लगे होंगे कि उधर से सन्देश आ गया और इधर से उसकी स्वीकृति का उत्तर भी लिख दिया गया, और अब रीति के अनुसार केवल ब्याह के नियम तय

होना शेष रह गये। अतः अब मैंने एक ज़ोर की चाय पार्टी बोल दी। पाँच रुपये शाहिदा की गर्दन दबाकर और लिये गये। किसी को कानो-कान खबर तक न हुई कि यह पार्टी शाहिदा की ओर से मँगनी की खुशी में हो रही है; क्योंकि मैंने निमंत्रण पत्र बहुत सादगी से भेज दिये थे कि आज शाम को मेरे यहाँ चाय की पार्टी है। और बस।

मैंने, जिमवाली ने, जीनत ने और सभों ने शाहिदा को ब्याह के उपलक्ष में बधाई स्वरूप खुरा हो-होकर खूब मारा। शाहिदा यह कहने लगी कि चलो बहन, खातून को तंग करें, परन्तु मैंने साफ कह दिया कि मैं इसके विरुद्ध हूँ और फिर मेरी वह मेहमान होंगी। मजा यह कि उस बेचारी को पता तक न था कि शाहिदा की बातचीत ऊपर ही ऊपर दूसरी जगह पक्की भी हो गई।

जैसे ही खातून उतरी, शाहिदा लपककर पहुँची और बड़े आदर से नमस्कार किया। फिर बड़े प्रेम से उनके गले में हाथ डाल दिया और बोली—'हटो सामने से, अल्लाह रखे यह हमारी ननद हैं! रिश्ते में ननद बनेंगी। हमें ब्याह कर ले जायँगी, भाभी जी बनाकर हमें।'

कहाँ तो इस शब्द से शाहिदा के आग लगती थी। और कहाँ यह बातें। खातून जरा चकराई कि यह मामला क्या है। हम लोगों की सूरत जो देखी तो समझ गई कि दाल में कुछ काला है। कुछ चुप सी हो गई कि परमात्मा यह क्या बात है। शाहिदा ने लाकर बिठाया और एक झोंका दिया 'बहन बोलती क्यों नहीं हो? क्या हमसे नाराज हो गईं?'

'मैं क्यों तुमसे नाराज होने लगी?' मुस्कुरा कर खातून बोलीं।

'हाँ बहन, नाराज न हो' शाहिदा ने कहा—'बन्दी तो जाती है अब.....।'

'कहाँ ?' मुस्कराकर खातून ने कहा 'बहन, कहाँ जाती हो ?'

'गुलाबजामुन खाने' शाहिदा ने हँसकर कहा 'और कहाँ ? .....ऐ लो बहन, तुम्हें नहीं मालूम ! गुलाबजामुन मुझे अत्यन्त प्रिय हैं' यह कहकर सामने मिठाई की टोकरी से एक गुलाबजामुन निकालकर उन्हें दिखाई और खाने लगी।

खातून का मुख एक दम से सूख-सा गया। हवाइयाँ उड़ने लगीं; क्योंकि शाहिदा का गुलाबजामुन वाला किस्सा वह सुन ही चुकी थीं और अब शाहिदा की प्रसन्नता और गुलाबजामुन का नाम सुनकर उनको मालूम हो गया कि क्या मामला है।

सारांश यह कि अनेक प्रकार से शाहिदा इन पर छींटे कसती रही और वह कुछ घबराई-सी सुनती रहीं। उन्होंने जब मुझसे इसकी सत्यता पूछी तो मैंने सारा घटना बता दी कि सब बातें तय हो चुकी हैं और पत्र भी भेज दिया गया है। बेचारी पर ओस सी पड़कर रह गई।

इस पार्टी में कोई बात सिवाय इसके वर्णन योग्य नहीं कि शाहिदा ने खातून को अनेक प्रकार से बनाया और क्यों न बनाती ? उसकी तो बन आई थी।

चाय के बाद ही मुझसे आज्ञा लेकर बहन खातून चुपके से ऐसी रफूचक्कर हुईं कि शाहिदा ढूँढ़ती ही रह गई। 'अरे वह कहाँ गईं मुझे भाभी बनाने वाली ?.....अरी मेरी ननद बनने वाली कलूट.....' इत्यादि न जानें प्रसन्नता में क्या-क्या कहा। 'न बहन, कोई गुलाबजामुन बिना मेरे पूछे न खाना' गरज इस प्रकार की बातें शाहिदा फुलझड़ी की तरह कर रही थी। रात को शाहिदा ने खूब गाना सुनाया, परन्तु कोई गाना ऐसा न था, जिसमें उपहास से खातून का जिक्र न घुसेड़ा हो।

गुड़ के लड्डू

महीना भर मुश्किल ही से गुजरा होगा, जब हम सबने शाहिदा के मँगनी की दावत खाई थी। मेरे यहाँ चाय-पार्टी के बाद इसी बीच में दो बार और शाहिदा खातून की मिट्टी पलीद कर चुकी थी। और अब खातून और शाहिदा में खट-पट हो चुकी थी। शाहिदा के बातचीत का ढङ्ग खातून के लिए बिल्कुल अशिष्ट हो चुका था और अपनी सहेलियों में खातून का उठना-बैठना भी कठिन हो गया था। गरज मेरे यहाँ की दावत को महीना भर मुश्किल से हुआ होगा कि हम सबको स्कूल के एक ड्रामा में जाना हुआ।

हम में से किसी को ख्याल भी न था कि ड्रामा देखने बहन खातून भी अवश्य ही आयगी। हम लोगों के पहुँचते ही सहसा बाईं ओर से खातून आईं। इस समय इनके मुख पर आवश्यकता से अधिक नमक और निखार था। उन्होंने मुस्कुराकर ताने से कहा—'सलाम आलेकुम भाभीजान को.....।'

उनकी ओर देखा तो एक विचित्र अर्थयुक्त मुस्कुराहट उनके चेहरे पर नाच रही थी। एकदम से शाहिदा जैसे धक से हो गई। परन्तु केवल क्षण भर के लिए यह बातें थी कि वह चिल्ला उठी—'अहा..... बहन खातून .....हमारी कोयला जैसी ननद बनेंगी!'

यह कहकर मुस्कुराती अठलाती शाहिदा बहन खातून को बनाने के लिए बढ़ीं।

खातून ने मुस्कुराकर अत्यधिक प्रफुल्लता से कहा—'क्यों नहीं! अपना अपना भाग्य है! कोयले समान ननद को ईश्वर ने चन्द्रमा के समान भाभी दी.....भाभीजान तनिक

इधर देखो·····वह तुम्हारा गुलाबजामुनों का भरा दोना क्या हुआ ? वह गुलाबजामुन खाने का शौक किधर गया ?'

'किधर गया !' शाहिदा ने व्यङ्ग से कहा—'कुछ होश में हो ! आज रोटी काहे से खाई थी ?'

'कुछ बसन्त की भी खबर है ?' खातून ने कुछ विजेता के-से ढंग से कहा।

'भाभीजान कुछ बसन्त की भी खबर है ? कुछ खबर भी है ? कोई तार ? ·····कहिए !·····कुछ खबर है ?·····गुलाबजामुनों का पारसल सात समुन्दर पार !····· अब तो काले-काले गुड़ के लड्डू हैं। खाओ तो, न खाओ तो·····।'

इस बात को सुनते ही शाहिदा का चेहरा एकदम से पीला पड़ गया और खातून के मुख से एक आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ा। परन्तु सौभाग्य से चार छः स्त्रियाँ आ गईं और उनसे बातें होने लगी। शाहिदा अत्यन्त विकल थी कि 'यह क्या ?' मैंने उससे पूछा तो मालूम हुआ कि तार तो कल एक आया था, परन्तु यह नहीं मालूम कि कैसा तार था।

मामा साहब की ससुराल से जरूर आया था। पहले के पत्रों ही में यह लिखकर आया था कि लड़के को विलायत भेजने का इरादा है। अब खातून के अपूर्ण वाक्यों का ठीक अर्थ समझ में आया, अर्थात् शायद तार इस आशय का आया है कि लड़का विलायत जा रहा है, अतः खातून को आशा हो गई। शाहिदा ने और मैंने बहुत सोच-विचारकर दिल को तो समझा लिया कि वह बकती हैं और केवल तनिक सी बात पर आशा का पुल बाँधती हैं; परन्तु इस प्रकार से दिल को समझा लेने से काम चलना कठिन था। मैंने खातून को एकान्त में ले

जाकर पूछा तो उसने यह समाचार सुनाया कि गुलाबजामुन वाले मियाँ शाहिद सरकार से पारितोषिक (बर्जाफा) पाकर चार वर्ष के लिए विलायत गये। शाहिदा के पिता ने इतने दिन इन्तजार करने से इन्कार कर दिया। और आज ही शाम को हमारे यहाँ आकर केवल बात ही नहीं पक्की कर ली, बल्कि मंगनी और ब्याह की तिथि भी निश्चित हो गई है। खातून बहुत प्रसन्न थीं और मुझसे कहने लगीं—'अब हमारी भाभी-जान से सन्धि करा दो। डेढ़-दो महीना की तो बात ही है। बहन, अब गुलाबजामुनों को भूल जाओ।

कहाँ का ड्रामा और कहाँ का खेल। शाहिदा वापस घर भागी और मैं भी इसके साथ। शाहिदा की माता से मैंने पूछा तो खातून का कहना एक-एक शब्द ठीक पाया।

मंगनी करने की आवश्यकता ही न थी, ब्याह की तिथि भी निश्चित हो गई और डेढ़ महीना बाद ही शाहिदा की बिदाई। शाहिदा ने दाँत पीसकर चुपके से कहा—'कुछ परवाह नहीं। मैं साफ इन्कार कर दूँगी।' मैं जल्दी घर लौट आई।

[२]

मैं मौलाना की प्रतीक्षा कर रही थी कि वह आ गये। पहला प्रश्न जो मैंने किया वह यह था—'आपका अबुल सहन साहब से परिचय है?'

मौलाना ने कहा—'चूल्हे में डालो अबुल हसन को। मैं नाम तो उनका सुन-सुन कर अलबत्ता तङ्ग आ गया हूँ; परन्तु मुझे नहीं मालूम कि वह कौन हैं। हुलिया और बातें सुनकर एक महाशय पर मैंने सन्देह किया तो वह बङ्गाली निकले।'

कपड़े फेंककर मौलाना भोजन करने चले तो अकड़ गए कि मैं अकेले खाना नहीं खाऊँगा। वास्तव में वह अकेले कभी खाना खाते न थे। और उन्हें इससे बहुत चिढ़ थी। मैंने हँस-

कर कहा—'तुम न खाओ तो इसमें मेरा अपराध नहीं है। मैं शाहिदा के यहाँ से भोजन कर आई हूँ।'

'शाहिदा के यहाँ!·····परन्तु हाँ, तुम तो ड्रामा देखने गई थी।'

इस पर मैंने उनको सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। मौलाना भी शाहिदा के बड़े पक्षपातियों में थे। कहने लगे—'कल अवश्य अबुल हसन से मिलूँगा और अन्त तक यही कोशिश करूँगा कि वह ब्याह खुद न करें।' मैंने कहा—कल उनको यहाँ बुला लाओ। मैं भी देख लूँ कि कैसे आदमी हैं।' अतः यही निश्चय हुआ कि कल अवश्य लाएँगे।

[३]

दूसरे दिन मौलाना कालिज जाते ही तुरन्त वापस आये और बोले 'अबुल हसन साहब अभी आते होंगे।' मैंने पूछा—'क्यों? कैसे ढूँढ़ा तुमने?' मौलाना बोले—'अजी, वह तो बहुत ही कुरूप आदमी हैं। लेकिन वैसे विद्वान और तेज मालूम होते हैं। मैंने उनका क्लास में पता लगाकर उनसे कहा 'क्या श्रीमान ही का नाम अबुल हसन है?'

वह बोले—'जी हाँ। क्या आज्ञा है?' मैंने कहा—'क्या आप मुझे दस-पन्द्रह मिनट दे सकते हैं। मुझे आपसे कुछ जरूरी काम है।' इतना कहने पर उन्होंने मेरी ओर देखा और वे मुझसे हाथ मिलाकर और मेरा नाम लेकर बोले—'महाशय, मुझे तो स्वयम् आपसे मिलना था।' सारांश यह कि हम और वह दोनों समझ गये कि क्यों एक दूसरे से मिलना चाहते हैं। मैंने मौलाना से कहा—'फिर क्या हुआ? तुम उनको साथ क्यों न ले आये।'

मौलाना ने उत्तर दिया—'उनसे तय हो गया है कि आज

के क्लास को 'गोला' किया जाय। वह अपनी और मेरी दोनों की हाजिरी बनवा कर आते ही होंगे।

मौलाना इतना ही कह पाये थे कि वह आ पहुँचे। मैंने जल्दी से कमरे का पर्दा खींच दिया। हमारा कमरा काफी बड़ा है, अतः बीच में पर्दा लटका कर उसको दो भागों में बाँट दिया है। एक भाग सोने का कमरा बन जाता है और दूसरा भाग ड्राइङ्ग-रूम का काम देता है। मैं पर्दे के पीछे गुमसुम होकर बैठ गई और मौलाना ने अबुल हसन साहब को लाकर कमरे में बिठाया। मैं पर्दे के एक सूराख में से कोना से झाँक रही थी ताकि अबुल हसन साहब को पता भी न चल सके। वह बिल्कुल मेरे सामने थे और उनकी सूरत देखते ही मैंने 'लाहौल' पढ़ी। मौलाना ने सिगरेट पेश किया। शायद तीसरे दिन डाढ़ी साफ करते होंगे। जगह-जगह से सिकुड़नें पड़ी हुई पुरानी शेरवानी थी। और उसी तरह की उजड़ी-सी एक तुर्की टोपी थी। यह सज-धज देखकर मेरा दिल बैठ गया।

मौलाना ने उनसे बातचीत करना शुरू किया। 'शायद आपको मालूम हो कि मैं आपसे क्यों मिलना चाहता हूँ ?'

अबुल हसन साहब मुस्कुरा कर बोले—'मैं नहीं कह सकता किसलिए, परन्तु मेरा विचार है कि शायद इसलिए कि आप मुझसे कहें कि मैं इस शादी के ख्याल को छोड़ दूँ। नहीं कह सकता कि मेरा विचार कहाँ तक ठीक है।'

मौलाना ने कहा—'अच्छा यह तो आपको मालूम है। आपका बिचार ठीक है; परन्तु·····।' बात काट कर अबुल हसन साहब बोले—'अरे मुझे यह भी मालूम है कि मुझे सख्त ना पसन्द किया जाता है।'

'तो फिर ऐसी अवस्था में तो आप मेरी राय से सहमत होंगे कि·····।'

बात काट कर अबुल हसन ने इस प्रकार वाक्य पूरा किया—'मैं आपकी राय से सहमत हूँ कि मुझे अन्त तक कोशिश करना चाहिए और बात भी ठीक है। जभी तो आपकी और आपकी बेगम-साहबा की सिफारिश की मुझे जरूरत है।'

मौलाना कुछ झल्लाकर बोले—'महाशय आप बहुत ही बुद्धिमानी से काम ले रहे हैं, परन्तु मेरा मतलब यह है कि जब आपको मालूम है कि लड़की ही आपसे ब्याह नहीं करना चाहती तो आपको ही यह सम्बन्ध अस्वीकार कर देना चाहिए। क्योंकि अनमेल ब्याह से बढ़कर बुरी वस्तु संसार में कोई और नहीं है—घर नर्क समान हो जाता है और जीवन का आनन्द जाता रहता है!'

वह बोले—'मुझको यह बातें आपसे पहिले मालूम थीं और मैंने इस विषय पर बहुत अच्छी तरह विचार कर लिया है।'

कुछ तेज होकर मौलाना ने कहा—'और फिर भी आप बाज नहीं आते!'

अबुल हसन साहब बोले—'अजी महाशय! यहाँ बाज आने और न आने का सवाल ही नहीं। यहाँ तो यह सवाल है कि आप और आपकी बेगम साहिबा इस मामले में मेरी क्या सहायता कर सकती हैं।

मौलाना ने कहा—'खेद है कि मैं अथवा मेरी पत्नी इस मामले में आपको किंचित-मात्र सहायता नहीं दे सकते, बल्कि हम तो लड़की की सहायता करेंगे; क्योंकि वह आपको स्वीकार नहीं करती।'

'लाहौल बिला कुवत।' अबुल हसन साहब ने कहा—'आप धोके में पड़े हुए हैं। इस मामले में मैं आपसे केवल इस बात की सहायता चाहता हूँ कि उनके दिल में मेरी ओर से जो बुरे विचार न मालूम किस तरह पैदा हो गये हैं, उनको आप कोशिश

करके दूर करा दीजिये। मेरा यह मतलब नहीं कि उनके विरोध करने पर भी आप मेरे ब्याह कराने में सहायक हों, बल्कि मैं यह चाहता हूँ कि वह विरोध करना छोड़ दें और स्वयं इस सम्बन्ध को पसन्द करें। मैं स्वयं बेमन का ब्याह नहीं चाहता।

मौलाना ने जलकर ताना मारते हुए कहा—'आपके कहने का अर्थ यह है कि वह आपको पसन्द करने लगें।' हँसकर अबुल हसन साहब बोले—'जी हाँ, और क्या, सूरत-शकल परमात्मा की दी हुई है। इसको छोड़कर मुझमें जो खराबी नजर आये, आप या आपकी बेगम साहिबा या खुद वह मुझको बताएँ कि तुझमें यह खराबी है और जब तक यह दूर न हो जायगी, तू घृणा का पात्र बना रहेगा। फिर यदि उसके दूर करने में मेरी ओर से कुछ कोताही हो या मैं असफल रहूँ, तब आप शौक से इस ब्याह का विरोध करें; नहीं तो दूसरी सूरत में मेरी सिफारिश करें और मेरे लिए कोशिश करें। वैसे बात तो पक्की हो ही चुकी है; परन्तु 'हाँ' या 'नहीं' कहना तो अन्त में उन्हीं के हाथ में है।'

वास्तव में बात तो अबुल हसन साहब ने बड़े पते की कही थी; परन्तु मौलाना ने भी खूब जवाब दिया। कहने लगे—'आप का कहना बहुत ठीक है; परन्तु क्या मालूम कि लड़की आपको केवल सूरत-शकल ही की वजह से नापसन्द कर रही है। क्षमा कीजियेगा, मेरा इससे कोई और मतलब नहीं, सिवाय इसके कि नापसन्द करने में कोई वस्तु विशेष नहीं देखी जाती; बल्कि सभी बातों पर विचार किया जाता है।'

अबुल हसन साहब बोले—'महाशय, मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं सुन्दर या भड़कीला और फैशनेबुल नवयुवक नहीं हूँ। परन्तु यह भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि एक अच्छे पति बनने के लिए न तो सुन्दर होने की आवश्यकता है और न

फिर ब्याह के अनन्तर पत्नी ही को यह ध्यान रहता है कि मेरा पति कुरूप है। यह सब लड़कियों का बचपना है, नहीं तो सुन्दर से सुन्दर स्त्री भी अपने कुरूप पति को प्रियतम पति समझती है और किसी सुन्दर से सुन्दर मुख वाले से अपने पति को किसी प्रकार कम नहीं समझती। और न फिर कोई स्त्री ऐसी है जो केवल अपने पति की सूरत-सकल के कारण अपना घर बिगाड़ दे। यह सब बच्चों की बातें हैं, जिनका सम्बन्ध केवल अवस्था से है।'

मौलाना ने कहा—'अबुल हसन साहब! आप तनिक विचार तो कीजिये कि वह लड़की कोई दार्शनिक (फिलासफर) नहीं है। और आपने जो कहा है, यदि वह ठीक है, तो उसको केवल हम या आप समझ सकते हैं, न कि एक नव-वयस्क लड़की।'

वह बोले—"कृपानिधान! बस इसी कारण से तो मुझे लड़की के इस प्रकार के विचारों का कुछ परवाह नहीं है। परन्तु फिर भी आप लोगों के विचारों की परवाह करता हूँ, और जिम्मा लेता हूँ कि लड़की को सुख से रक्खूँगा। शायद आपको मालूम होगा कि ईश्वर की कृपा से मेरे पिता के पास सब कुछ है। एक बहन के अतिरिक्त और कोई नहीं है। भाई, क्षमा करना; शेखी नहीं बघारता। लाचार होकर कहता हूँ कि आजकल की लड़कियाँ इस बात पर बिल्कुल विचार नहीं करतीं कि पति और पत्नी चाहे जितने सुन्दर हों और चाहे एक दूसरे से अत्यन्त प्रेम रखते हों, परन्तु यदि घर में रुपया पैसा और इतमीनान न हो तो वही घर नर्क समान हो जाता है। परिणाम यह होता है कि धनाभाव के कारण एक दूसरे की सूरत तक देखना नहीं पसन्द करते। आप और आपकी बेगम साहबा उनको अच्छी तरह ऊँच-नीच समझा दें कि मैं उनको

बड़ी अच्छी तरह रक्खूँगा। आप तो समझदार हैं। यह कहावत तो मशहूर ही है कि कुरूप आदमी उत्तम पति होता है; क्योंकि उसको लाचार होकर दबना पड़ता है।'

मौलाना ने कहा—'आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। परन्तु यहाँ तो विवाह का विषय ही दूसरा है। अब आप जानें और आपका का काम। परन्तु मैं साफ-साफ कहे देता हूँ कि आपको सोच समझकर काम करना चाहिये। मेरा कर्तव्य है कि मैं आपको चेतावनी दे दूँ कि आपके बजाय वह मृत्यु को कहीं अधिक पसन्द करती है।'

वह मुस्कुराकर बोले—'माशा अल्लाह।'

मौलाना बोले—'आप फिर दार्शनिक की भांति हठ करते हैं। मेरी समझ में·····मेरी समझ में इस बात को जानकर कि वह आपको बिल्कुल पसन्द नहीं करती, आपको खुद ऐसी स्त्री से घृणा पैदा हो जानी चाहिए।'

अबुल हसन साहब हँसते हुए बोले—'परन्तु मैं इस मामले में अव्वल दर्जे का बेहया हूँ। आवश्यकता से अधिक निर्लज्ज·····नहीं तो और कोई होता तो, जो बातें मैंने सुनी हैं केवल उन्हीं के कारण वह इस मामले से कभी का पृथक हो गया होता।'

'फिर आप क्यों अपनी जिद पर अड़े हैं?'

वह बोले—'केवल इस कारण कि फिर मुझको ऐसी सुन्दर लड़की नहीं मिलेगी। ऐसी अच्छी लड़की, जो प्रत्येक कार्य में चतुर हो और विशेषतः गायन विद्या में। मुझे जरा गाने से ज्यादा शौक है। सारांश यह कि जो लड़की सम्पूर्ण सोसाइटी का पुष्प हो, उसको मैं कैसे छोड़ दूँ। मैंने उनको देखा नहीं; परन्तु उनका चित्र नित्य देखता हूँ। और वह मुझे अत्यधिक पसन्द हैं।'

मौलाना ने पूछा—'आपके पास उनका चित्र कहाँ से आया ?'

'यह देखिए·····।' यह कहकर उन्होंने बगल से चित्र निकाल कर दिखलाया और कहा—'यह न बताऊँगा कि यह कहाँ से आया है।'

'हैं ! यह आप कहाँ से पा गये ?' मौलाना ने चित्र को देख कर कहा—'यह तो मेरे हाथ का फोटो है और मेरे अलबम का।'

यह कह कर मौलाना उठे और अपनी अलबम देखी। तसवीर का स्थान खाली दिखाकर मौलाना बोले, 'क्यों महाशय, यह मेरे यहाँ से चोरी। क्या मैं आपकी छोटी बहन को·····।'

'कदापि नहीं, 'कदापि नहीं' अबुल हसन बोले—'मेरी बहन द्वारा यह मुझे नहीं मिली, परन्तु यह मानता हूँ कि यह चोरी का काम है। चोर ने मुझे यह नहीं बताया कि यह उसे कहाँ से मिली। आपकी सही, परन्तु अब तो यह मेरी है और मैं इसको किसी मूल्य पर भी नहीं लौटा सकता और न चोर का पता बता सकता हूँ।'

मौलाना ने उनको बहुत कुछ समझाया, और उन्होंने मौलाना को समझाया। मौलाना ने अबुलहसन साहब से बहुत वादाविवाद करके यह वादा ले लिया कि वह कोशिश करेंगे।

अबुलहसन साहब चले गये और कम से कम मैं तो उनसे और भी अधिक घृणा करने लगी। उनकी बातें सुनकर मेरी तबियत जल उठी। अब यह निश्चय हुआ कि अबुल हसन साहब को एक रोज फिर बुलाया जाय, जिसमें शाहिदा भी उनको देख ले। अतः मौलाना ने कहा—'परसों हम उन्हें तीसरे पहर को बुला लायँगे और तुम और शाहिदा दोनों कमरे में

चिक के भीतर से उनको खूब अच्छी तरह देख लेना और फिर अपनी राय कायम करना।'

[४]

मौलाना ने जब अबुल हसन साहब से पूछा कि बोलो बर दिखावे को चलोगे तो उनकी बाछें खिल गईं। तुरन्त यह कह कर कि अहो भाग्य! राजी हो गये। और फिर शाहिदा को भी पूछा कि वह होंगी या नहीं, परन्तु मौलाना ने साफ न बतलाया। बस, यही कहा कि तुमको इससे क्या मतलब! कुछ लोग तुम्हें देखना चाहते हैं।

मैं समझती थी कि अबुल हसन साहब 'बर दिखावे' को सुनकर आयेंगे, तो शायद कुछ बन-ठन कर आयें; परन्तु वह भी एक विचित्र आदमी हैं। उसी दिन की तरह तजड़ी खूसटी शकल बनाये चले आये, अर्थात् बासी डाढ़ी, वही नित्य पहनने वाली अचकन, और तीन दिन का मैला पायजामा। उन्होंने जैसा कि मौलाना से मुस्कुरा कर कहा था, इसीलिए इस प्रकार आये थे कि 'ग्राहक को माल बना कर दिखाना ठीक नहीं।'

वह सामने बरामदे के चबूतरे पर आकर बैठ गये। मैंने और शाहिदा ने उनको अच्छी तरह देखा और बहुत नापसन्द किया। शाहिदा ने कहा—'बहन, यह तो बड़ा असभ्य दिखाई पड़ता है। मैं इस गुलाम से, ब्याह तो बड़ी चीज है चाहे जान तक चली जाय, जूते तक न उठवाऊँगी।'

मैंने चुपके से शाहिदा का निर्णय मौलाना के कान में कह दिया, और उन्होंने जाकर अबुल हसन साहब के कान में कह दिया। आखिर वह आदमी थे, जलकर उन्होंने भी मौलाना से कह दिया—'परमात्मा मालिक है, देखा जायगा, कहीं खुद उन्हें ही मेरे जूते न उठाने पड़ें।'

हालांकि उनको सिर्फ देखने ही के लिए बुलाया गया था,

परन्तु उन्हें चाय पिलाई गई और मौलाना से उनका खूब वाद-विवाद हुआ; परन्तु वह तनिक भी टस से मस न हुए। वह किसी प्रकार शाहिदा को छोड़ने के लिए तैयार न थे।

[५]

अबुल हसन साहब का पल्ला तो भारी हो ही चुका था; परन्तु अब और भी सोने पर सुहागा हुआ। शाहिदा के सगे सम्बन्धियों ने भी इस रिश्ते को बहुत पसन्द किया। परन्तु हमारी वर्तमान सोसाइटी की लड़कियों के स्वतन्त्र ढंग देखते हुए यही मालूम हो रहा था कि न जाने यह ब्याह क्या-क्या रंग लायेगा!

शाहिदा मेरे यहाँ आ-आ कर रोती थी और कहती थी कि कोई उपाय निकालो। फिर शाहिदा के पिता भी यह सब कुछ जानते थे; परन्तु सब लोग अपने निश्चय पर तुले हुए थे। मैं जो कुछ कर सकती थी कर चुकी थी; परन्तु सब निष्फल।

मौलाना स्वयम् अबुलहसन को समझाते-समझाते थक गए। फिर नौबत खुशामदों पर पहुँची, परन्तु अबुल हसन अटल थे। दिन हवा के समान गुजर रहे थे। शाहिदा की मुसीबत को देख-देख कर मेरी अवस्था स्वयम् शोचनीय होती जाती थी। इधर मौलाना तंग आ चुके थे। मैंने अब अन्तिम बार कोशिश करने की ठानी और मौलाना से कहा—'एक दिन अबुल हसन साहब को बुला लाओ। मैं स्वयं उनसे भेंट कर के कुछ बातें करूँगी।' मैंने इस कारण से अबुल हसन साहब से कहलवाया कि वह कई मर्तबा मुझसे कहलवा चुके थे कि शाहिदा से उनको पाँच मिनट के लिए मिलवा दूँ।

जब मौलाना ने अबुल हसन साहब से मेरी ओर से भेंट का सन्देश दिया तो वह तुरन्त राजी हो गये और प्रसन्न होकर मौलाना से बोले 'अब तो विजय है।'

[६]

उसी उजड़ी, खूसटी सजधज से अबुल हसन साहब मुझसे भेंट करने आये। रीत्यानुसार मौलाना ने उनसे मेरा परिचय कराया। नमस्कार, प्रणाम के बाद प्रथम इसके कि मैं कुछ कहती, वह बोले, 'मैं आशा करता हूँ कि आप अपनी सहेली से मेरी सिफारिश कर देंगी।'

चूँकि मैं जली बैठी थी, मैंने कुछ रुखाई से जवाब दिया, 'बहुत दुःख की बात है कि आप विद्वान होकर इस प्रकार की बातें करते हैं। कितने खेद का विषय है कि भारतीय स्त्रियों को वैसे ही पशुवत समझा जाता है, और फिर यह कि आपके ऐसे नवयुवक उनके साथ वह व्यवहार भी करने से बाज नहीं आते जो बर्बर जातियों में भी प्रचलित नहीं है। क्या आप अपने इस कार्य का समर्थन किसी भी प्रकार कर सकते हैं? क्या यह अत्याचार दुनिया के पर्दे पर सिवाय भारतवर्ष के किसी और भी सभ्य देश में सम्भव है!'

अबुल हसन साहब कुछ सिटपिटा से गये। रुक कर बोले, 'मेरी प्यारी बहन, आपका कहना बिल्कुल सही है; परन्तु मैं आपसे बिल्कुल ठीक कहता हूँ कि भारतवर्ष ऐसे देश में यह सब बातें लाचार होकर कहनी पड़ती हैं।'

मैंने कहा—"वह कौन-सी लाचारी है? जरा साफ तौर से कहिये कि आपका मतलब क्या है।'

अबुल हसन साहब ने उत्तर दिया—'मैं आपकी सहेली साहिबा से नहीं मिल सकता। इससे अधिक अत्याचार न तो उनके साथ सम्भव है और न मेरे साथ। वह मेरे बारे में अच्छे विचार नहीं रखतीं, और उनके इन विचारों के बारे में मैं क्या जान सकता हूँ, जब तक केवल पर्दा ही नहीं, बल्कि दीवारें उनके और मेरे बीच में उपस्थित हैं। मुझसे भेंट करने

के पश्चात् और मेरी बातें सुनने के बाद यदि वह मुझको अस्वीकार कर देतीं तो उनका निश्चय मेरी दृष्टि में कुछ मूल्य भी रखता। परन्तु वर्तमान स्थिति में मैं किस प्रकार विश्वास कर लूँ कि उनका निश्चय ठीक है। उनका इस प्रकार का निश्चय इधर-उधर की अविश्वसनीय बातों पर अवलम्बित है। अतः यह मानते हुए कि उनका निश्चय गलत है, भारतवर्ष में इसी प्रकार काम चल रहा है और चलता रहेगा।

वास्तविक बात तो यह है कि अबुल हसन साहब ने बड़ी बारीक बात निकाली थी; परन्तु मैंने एक न सुनी और कहा—'मैं आपको पूर्ण विश्वास दिलाती हूँ कि उनका निश्चय ठीक और अटल है। भलाई इसी में है कि आप एक नवयस्क बालिका को जीवित ही मृत-तुल्य न बनावें। परमात्मा के लिए दया कीजिए। परमात्मा के कोप से डरिये। पीड़ित की आह कभी खाली नहीं जाती। आप इसको अच्छी तरह समझ लीजिए कि अत्याचार का फल कभी अच्छा नहीं होता। आप उसको असमय में ही मृत्यु का ग्रास बना रहे हैं।'

अबुल हसन साहब पर इन बातों का कुछ प्रभाव न हुआ और वह हँसकर बोले—'आपका विचार ठीक नहीं है। मैं गारन्टी करता हूँ कि अच्छी तरह रहेंगी। पहले से अधिक स्वस्थ्य और बलिष्ट हो जायँगी। बीमार तक नहीं पड़ेंगी।'

मैंने उनके इन वाक्यों पर कुछ भी ध्यान न दिया और कहा—'उसको जबरदस्ती ब्याह करने पर बाध्य किया जा रहा है। धर्म से यह ब्याह, ब्याह न कहा जायगा।' परन्तु अबुल हसन साहब मुझसे कहीं अधिक कानून जानते थे। बोले, 'ठीक है, प्रतिज्ञा के समय वह इनकार कर दें। यदि उन्होंने जरा भी 'हूँ' या 'हाँ' कह दिया तो धर्मानुसार वह शादी नियमा-

नुकूल हो जायगी। कुछ बच्चा तो हैं नहीं। बस एक यही बचने की सूरत है।' मैंने कहा—'क्या और कोई नहीं ?'

'नहीं।'

फिर मैंने कहा—'कोई नहीं ? क्या आपकी जान में और कोई नहीं·····आप गलती पर हैं। एक अत्याचार-पीड़ित इन बातों पर दूसरे प्रकार भी विजय पा सकती है।'

अबुल हसन साहब समझ गए कि मेरा क्या मतलब है और बोले—'आत्मघात दूसरी तरकीब बचने की है, परन्तु इसका पाप आपकी गर्दन पर·····आप समझदार होकर ऐसी बातें कर रही हैं। आपकी जबान से और फिर ऐसी बातें ! आपको चाहिए कि आप उनको समझातीं न कि बहकातीं। आखिर आप मुझमें क्या खराबी पाती हैं।'

मैंने कहा—'वह यह कि आप शाहिदा को बहुत नापसन्द हैं। और फिर अब मालूम हुआ कि आप बड़े अत्याचारी भी हैं; क्योंकि आप पढ़े-लिखे होते हुए और यह जानते हुए कि भारतवर्ष में स्त्रियों की अवस्था दिन-पर-दिन खराब होती जा रही है, ऐसी बातें करते हैं, अतः मेरी समझ में तो कोई समझदार लड़की आपको पसन्द न करेगी।'

इन तानों को सुनकर अबुल हसन साहब हँसने लगे और बोले—'फिर एक दूसरी तरकीब यह है कि आप अपनी सहेली से बस केवल दस मिनट के लिए भेंट करवा दीजिए।' 'आप उनसे भेंट करके क्या करेंगे और उसका क्या परिणाम होगा। मान लो उन्होंने आपसे भेंट भी की और आपको अस्वीकार कर दिया तो क्या आप मान जाएँगे।' वह बोले—'मैं तो समझता हूँ कि मैं अवश्य मान जाऊँगा; परन्तु मैं पक्का नहीं कह सकता, क्योंकि वर्तमान स्थिति में वह जो मुझसे भेंट

करेंगी तो निश्चय करने के पश्चात ! उनको अपनी राय बदलने का ख्याल ही न होगा।'

मैंने कहा—'आप तो किसी बात पर जमते ही नहीं। यदि आप उनके ही मुख से इनकार सुनना चाहते हैं तो कल ही सुन लीलिए।'

अबुल हसन साहब ने कुछ सोचा और फिर कुछ राय बदल कर बोले,—'मुझे स्वीकार है। आप मेरी उनसे भेंट करा दीजिए, यदि वह इनकार कर देंगी तो मैं हट जाऊँगा।'

मैंने खुश होकर खुशामद करते हुए कहा,—'परमात्मा के लिए उन पर दया कीजिए। वह जीवन-पर्यन्त आपको आशीर्वाद देंगी।' अबुल हसन साहब बोले,—'आप कौन होती हैं जो अब उनकी तरफ से अपील करती हैं। अब हम जानें और वह।' मैंने कहा—'मर्दों की बात एक होती है।' अबुल हसन साहब मुस्कुराकर बोले—'परन्तु शर्त यह है कि आप उनको न बहकायें।'

शाहिदा किसी प्रकार उनसे भेंट करना स्वीकार ही न करती थी। उसकी सारी तेजी और शरारत गायब हो चुकी थी। वह चिन्ताओं के मारे घुली जा रही थी और उसका शरीर मानों निर्जीव सा हो रहा था। वह कहने लगी—'बहन, तू क्यों मेरा अपमान करा रही है। वह तो एक अत्याचारी है। वह तो मेरा जान लेना चाहता है।

वह किसी प्रकार राजी ही न होती थी, परन्तु मैंने समय निश्चित कर लिया और जाकर उसे घर से पकड़ लाई, फिर उसी उजड़े हुलिया से अबुलहसन साहब पधारे। शाहिदा ने समय पर भेंट करने से इनकार कर दिया; परन्तु मैंने और मौलाना ने जबरदस्ती उसको लाकर कुर्सी पर बैठा दिया। मैं क्या बताऊँ कि उसकी क्या अवस्था थी। हैं ! यह वही शाहिदा

थीं, आफत की परकाला ! शरारत की पुड़िया, जो अब एक भीगी बिल्ली बनी बैठी थी।

अबुलहसन साहब अपनी नाराज मंगेतर को देखते ही सीधे खड़े हो गये। कुछ योंही शाहिदा ने मुँह छिपाने की कोशिश की। मैं ठोका पर ठोका दे रही थी और वह बिल्ली बनी हुई बैठी थी। मौलाना चाय बना रहे थे।

अबुलहसन साहब ने चाय की प्याली बनाकर उस पर मन्त्र पढ़कर फूँका; और शाहिदा से कहा—'परमात्मा का नाम लेकर इसको पी जाइये।' मुझे बेहद हँसी आई, क्योंकि कहाँ तो अबुल हसन की पोजीशन, उनकी उजड़ी हुलिया, और कहाँ यह दिल्लगी। परन्तु शाहिदा मूर्तिवत आँखें नीचे किए बैठी थी, जैसे कोई साँप सूँघ गया हो। मैंने कहा भी कि, 'कम्बख्त क्या तुझे साँप सूँघ गया है ?' चाय की प्याली पर और मेरे हँसने पर उसके चेहरे पर और हवाइयाँ उड़ने लगी। मैंने उसके कान में कहा—'जब तुझसे पूछें कि मेरे साथ ब्याह स्वीकार है, तो फट से इनकार कर दीजियो।'

मुझे भी अबुल हसन साहब ने चाय दी और मौलाना भी बैठ गए। चाय पी जाने लगी, परन्तु शाहिदा ने इनकार कर दिया। बड़ी मुश्किल से उसने हाथ में चाय की प्याली ली। इतने में अबुलहसन साहब ने बिना किसी प्रस्तावना के शाहिदा से प्रश्न कर दिया—'आप मुझसे इतना क्यों नाराज हैं ?'

मैं बोल उठी—'नाराज कुछ नहीं हैं।' अबुल हसन साहब ने कहा—कृपया आप बीच में न बोलें।' और फिर शाहिदा से पूछा—'आप मुझसे इतना क्यों नाराज हैं ?' मैंने और चुटकी ली कि जल्दी बोल। शाहिदा ने कहा—'जी नहीं।' अबुल सहन साहब बोले—'आप मुझसे नाराज नहीं हैं न।'

मैंने फिर चुटकी ली तो फिर शाहिदा ने कहा—'जी नहीं।'

'मैं किस मुख से आपको धन्यवाद दूँ' झुककर शाहिदा से अबुल हसन साहब ने कहा और फिर मेरी ओर देखकर कहा—'बहन साहिबा, तस्लीम।'

मैं चौंक-सी पड़ी और अबुल हसन साहब के 'धन्यबाद' और 'तस्लीम' शब्दों के अर्थ अब समझी। मैंने घबड़ाकर चाय की प्याली रख दी। शाहिदा की ओर देखा, वह घबड़ाई हुई थी। अबुलहसन साहब को देखा तो उनके मुख पर विजय की मुस्कुराहट थी। इस चालाकी पर मेरे सारे शरीर में आग-सी लग गई और मैंने झल्लाकर कहा—'आप गम्भीर होने की जगह इस समय दिल्लगी करने पर उतारू हुए हैं। आप खाम-खाह किसी के लज्जा से बेजा लाभ उठाते हैं' फिर मैंने शाहिदा से कहा—'देखती क्या है, कम्बख्त पत्थर बनी बैठी है, कहती नहीं कि मैं तुम्हें कदापि पसन्द न करूँगी·····।' अबुल हसन साहब चिल्लाकर बोले—'हैं! हैं। यह क्या, यह क्या जनाब!·····वाह आप कौन·····?'

मैंने जलकर कहा—'अच्छा है कि बात यहीं की यहीं समाप्त हो जाय।' इतना कहकर और शाहिदा का हाथ पकड़कर मैंने उसे पर्दा में कर दिया। फिर अबुल हसन साहब से क्रोध से कहा—आप एक निरपराधिनी की जान लेने पर तुले हुए हैं।'

अन्तिम वाक्य कठिनता से मेरे मुख से निकले। मारे क्रोध और सोच के मेरी आवाज घुट गई; और मैं भी पर्दा में चली गई और शाहिदा से लिपटकर आँसू बहाने लगी।

अबुल हसन साहब मौलाना से क्षमा माँगने लगे और इन सब बातों का उत्तरदायित्व मेरे सर थोपा। मौलाना ने अबुल हसन से कहा—'केवल शब्द पकड़ना कोई विशेष अर्थ नहीं रखता। आप तो शब्दों से खेल रहे थे।'

अबुल हसन साहब तेज होकर बोले—'यह बड़ी विचित्र

बात है कि शब्दों की मर्यादा आप नहीं करते और मुझसे कराना चाहते हैं। मुझसे साफ-साफ कहा जाता है कि मुझसे नाराज नहीं हैं अर्थात् ब्याह करने को राजी हैं, और फिर उद्योग यह किया जाता है कि मैं विश्वास कर लूँ कि मुझसे राजी नहीं हैं।'

[८]

परिणाम यह रहा कि अबुल हसन साहब जीते और हम हारे। मैंने कहा कि आप प्रतिज्ञा-पत्र लिखना स्वीकार करें, परन्तु इसमें उन्होंने इतने वन्धेज लगाए कि कोई निर्णय होना असम्भव था। सभा विसर्जित होने लगी तो मैंने अबुल हसन साहब से बहुत अनुनय विनय किया और बड़े दुख भरे शब्दों में अपील की; परन्तु वह यह कहकर इनकार कर गये कि उन्होंने अपने कान से और उनके (शाहिदा) मुख से निर्णय अपने अनुकूल सुन लिया है। अब उनको किसी की सिफारिश का विश्वास नहीं है।

मैंने शाहिदा से बहुत कुछ कहा कि एक मर्तबा निकलकर 'नाहीं' कर तो दे, परन्तु उसका कहना भी ठीक था। वह कहने लगी 'वह कहेंगे कि तुमने भड़का दिया, हम नहीं मानते, तब इसका क्या उत्तर होगा।'

अबुल हसन साहब चले गये। मैं शाहिदा से गले मिलकर खूब रोई। और कर ही क्या सकती थी, क्योंकि यह हमारा अन्तिम उद्योग था। क्या वास्तव में शाहिदा के भाग्य में अब गुड़ के लड्डू ही रह गये। मैं यही सोचती थी और रोती थी।

घृणा का परिणाम

समय समय पर फीरोजा के पत्रों से उसके ब्याह के समाचार मालूम होते रहते थे। बहुत कुछ तय हो चुका था और अब केवल बात इस पर अटकी थी कि पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात् निकाह हो या पूर्व; क्योंकि फीरोजा की पढ़ाई में अभी पूरे दो वर्ष शेष थे। फीरोजा के पिता का विचार था कि पढ़ाई समाप्त होने के पश्चात् निकाह हो, परन्तु फीरोजा यह चाहती थी कि निकाह अब हो जाय और ब्याह पढ़ाई समाप्त करने के बाद हो। परन्तु इसका पता मेरे अतिरिक्त और किसी को न था। वास्तव में फीरोजा भी कुछ गड़बड़ का स्वाद चखे हुये थी और इसी कारण चाहती थी कि बात पक्की हो जाय, अर्थात् निकाह हो जाय। एक लड़की के लिये शायद इससे अधिक कोई दूसरी बात दुखदायी नहीं हो सकती कि साल डेढ़ साल एक जगह से बात चलती रहे और फिर उसके बाद वह टूट जाय।

अतः फीरोजा चाहती थी कि मैं किसी प्रकार उसके विचारों को उसके पिता के सामने रख दूँ। फीरोजा के लम्बे-चौड़े पत्र आ रहे थे, और उन सब में यही बात रहती थी। मैंने फीरोजा की माता को पत्र भी लिखा था, परन्तु वहाँ से विचित्र ही उत्तर आया। उन्होंने यह लिखा था कि फीरोजा की यही इच्छा है कि पढ़ने के बाद ब्याह हो। वास्तव में उन्होंने ठीक ही लिखा था, क्योंकि भीतरी बात तो और थी। परन्तु ऊपर से फीरोजा ने यही कह रक्खा था कि ब्याह पढ़ाई के बाद हो।

ज्यों-ज्यों फीरोजा को यह सम्बन्ध पसन्द होता जाता था, त्यों-त्यों यह शंका भी बढ़ती जाती थी कि कहीं कुछ गड़बड़ न

हो जाय। अतः अब मुझसे परामर्श करने के लिए भेंट करना चाहती थीं, और इसीलिए वह आने वाली थीं।

परन्तु इसी बीच में उन्हें बड़े दूर की सूझी और उन्होंने आने का निश्चय बदल दिया। बम्बई में एक पारसी महिला रहती थीं। एक तरफ तो वह फीरोजा की बड़ी मित्र थीं, और दूसरी तरफ उनकी माता से भी उनकी अच्छी मुलाकात थी। फीरोजा ने उनको एक-आध पत्र भी लिखा। बम्बई वालों की यह आदत है कि वे बुलाने के लिए तुरन्त लिख भेजते हैं, शायद यह सोचकर कि कोई न आएगा। परन्तु फीरोज को तो उनसे काम लेना था, अतः तुरन्त तैयार हो गईं। उसने उनको लिखा कि पत्र लिखकर घर से आज्ञा और रुपया दिलवा दें।

फीरोजा नवीन विचारों के माता-पिता की शिक्षित और अपना उत्तरदायित्व समझने वाली लड़की थी। अकेले यात्रा करना उसके लिए कोई नवीन बात न थी।

पिता ने जाने की आज्ञा दे दी। उसका पत्र मेरे पास आया कि यह मामला है और इस तरह बम्बई जा रही हूँ, ताकि उद्योग करूँ कि बहुत जल्दी निकाह हो कर बात बिल्कुल पक्की हो जाय, और लगे लगाये ब्याह छूट जाने का भय जाता रहे। कहाँ तो मुझसे मिलने के लिए आ रही थी और कहाँ सीधे बम्बई को सिधारीं। मुझे लिखा कि बम्बई से लौटते समय तुमसे भी मिलूँगी।

इस पत्र के आने के सातवें दिन का जिक्र है कि एकदम से तार आया कि शाम को पहुँचूँगी। मैं स्टेशन पर उनको लेने गई। गाड़ी से उतारा। वेटिङ्ग रूम में लाकर इतने दिनों के वियोग की अग्नि को शान्त किया। मौलाना से पहली बार भेंट हुई। दोनों ओर से अत्यन्त ही शुष्क और रूखा-सा नमस्कार-प्रणाम हुआ। किसी ने भी एक-दूसरे की ओर दृष्टि तक न उठाई। मैं उनको

घर पर ले आई। मुझे उनसे बहुत बातें करनी थीं, परन्तु इस समय तो केवल बम्बई के मिशन का परिणाम पूछना था कि कहाँ तक सफलता मिली। बजाय इसके कि दो शब्द कह देती कि बम्बई जाने का क्या परिणाम रहा, उसने चुप-सी होकर कहा कि पहले तुम मेरा किस्सा सुनो और बताओ कि अब क्या करूँ। अतः फीरोजा ने अपनी कहानी इस प्रकार वर्णन करना आरम्भ किया।

[१]

………आगरा फोर्ट से मैंने बम्बई का सेकण्ड क्लास का टिकट लिया और जनाने दर्जा में बैठ गई। भरतपुर पहुँच कर फ्रॉंटियर मेल मिला। मेरे साथ बहुत सूक्ष्म सामान था, एक बिस्तर, एक खाने की टोकरी और एक सूटकेस।

गाड़ी में सब चीजें ठिकाने से लगाकर मैंने अपनी सीट पर बिस्तरा लगा लिया। भरतपुर स्टेशन पर दो-तीन समाचार-पत्र ले लिये थे! डिब्बा मेरा बिल्कुल अकेला था, और मैं इतमीनान से समाचार-पत्र पढ़ने बैठ गई। फिर यह विचार करके कि समय क्यों नष्ट करूँ, अपने क्लास की एक पाठ्य पुस्तक निकाल कर पढ़ने लगी। फिर सो गई।

सन्ध्या का समय आया। कुछ ठण्ढक-सी मालूम हुई तो मैं उठी और बुरका उतार कर सिरहाने रख दिया, और बिस्तर में कम्बल ओढ़कर निश्चिन्तता से बैठ गई।

गाड़ी बियाना स्टेशन से गुजर चुकी थी। सन्ध्या का समय था। बी० बी० ऐन्ड सी० आई (B. B. & C. I.) का डेडनाट इञ्जिन गाड़ी को हवा की तरह उड़ाए लिए जा रहा था।

कितनी आनन्ददायक यात्रा थी! एकान्तता से मुझे बड़ा आनन्द मिल रहा था। मैं अपने मिशन के विचारों में लीन

थी। पुस्तक मैंने रख दी थी, और खिड़की से बाहर की ओर देख रही थी। यात्रा बड़ी ही आनन्ददायक थी। गाड़ी बिजली के समान अवर्णनीय तेजी के साथ सनसनाती हुई चली जा रही थी। दूर-२ तक बस्ती का पता न था। सारा इलाका बञ्जर और जंगल दीख पड़ता था।

सूर्य्यास्त हो चुका था और रात्रि थी। बड़ी देर तक मैं पाठ्य पुस्तक पढ़ती रही। जब रात अधिक हो गई तो मैंने कुछ हल्का-सा भोजन किया। जूता उतार कर और हाथ में पुस्तक लेकर इतमीनान से लेट गई।

इतने में हवा के ठण्ढे झोंके कष्ट देने लगे। मैंने उठ कर सिवाय एक खिड़की के सबको बन्द कर दिया। बड़ी देर तक मुझे निद्रा न आई और मैंने पुस्तक पढ़ा की। जैसा कि मैं कह चुकी हूँ कि यह यात्रा अत्यन्त ही सुखदाई थी, परन्तु इस समय मुझे एक विचित्र प्रकार की विकलता मालूम पड़ी। तुम जानती हो कि स्त्रियों में मैं एक निडर स्त्री हूँ। मुर्दे चीरे हैं; भय से मेरा क्या सम्बन्ध ? परन्तु रात की भयानक एकान्तता, और फिर यह ज्ञान की अँधेरी रात्रि में रेलगाड़ी एक भयानक और वीभत्स राक्षस की तरह चीखती, चिंघाड़ती, बल खाती, सुनसान जंगलों और भयानक पर्वतों में गूँजती, दनदनती चली जा रही है ! रेल का एक स्वर से भयानक शब्द करना और उसकी चाल का सन्नाटा ! मेरे लिए यह समय एक विचित्र ही भयानक दृश्य उत्पन्न कर रहा था !.....। मैंने किताब से आँख हटाकर छत की ओर देखा। फिर चारों ओर देखकर खिड़की से बाहर जो दृष्टि डाली तो एक विचित्र और अवर्णनीय भय-सा मालूम पड़ा। खिड़की से मैंने देखा कि जैसे अन्धकार का भूत गाड़ी के साथ साथ हँसता हुआ दौड़ रहा है। गाड़ी की खिड़की में से भयानक अन्धकार ही नहीं दिखाई दे रहा है,

बल्कि साक्षात् अन्धकार ही मेरे डिब्बे में झाँक रहा है। उधर से अपना ध्यान हटाकर पुस्तक पढ़ने लगी।

मैं ब्यालोजी (Biology) की एक पुस्तक पढ़ रही थी। उसमें एक अस्थिपंजर का चित्र था। जैसे ही मेरी दृष्टि उसपर पड़ी मैंने तेजी से पन्ना उलट दिया। तुरन्त पुस्तक रखकर खिड़की की ओर देखा। बड़ी भयानक और अन्धेरी रात थी, और अंधकार का राक्षस मेरी खिड़की में मुँह डाले झाँक रहा था! परन्तु मैंने कुछ परवाह न की। पुस्तक अलबत्ता रख दी और अब समाचार-पत्र पढ़ने लगी। विकलता करीब करीब दूर हो चुकी थी कि मेरी दृष्टि समाचार पत्र के कालम की एक खूनी सुर्खी पर पड़ी।

एकदम से मेरा दिल धड़कने लगा। सारे शरीर के रोएँ खड़े हो गये। अन्धकार और भी अधिक भयानक मालूम देने लगा; क्योंकि उसकी सुर्खी ही ऐसी थी·····रेल में हत्या··· मैं डर-सी गई और लाचार होकर उसको पढ़ाना पड़ा।

समाचार-पत्र पढ़ने के बाद मेरी अवस्था ही और हो गई। मैंने अपने डिब्बे में चारों ओर शंकित और भयातुर दृष्टि डाली। डरते डरते अपनी बेंच के नीचे देखा कि कहीं कोई हत्यारा डाकू तो नहीं बैठा है। भय और बढ़ा और अनेक प्रकार की शंकाएँ दिल में उठीं। उठकर मैंने बाथ-रूम को देखा। समाचार का विषय यह था कि एक यूरोपियन महिला, जो सेकेण्ड क्लास के जनाना डब्बा में कलकत्ता से देहली आ रही थी, रास्ते में मार डाली गई। किसने हत्या की थी, इसका कुछ पता न चला। पुलिस पता लगा रही है। तुरन्त मैंने विचारा कि मेरे लिए भी पुलिस पता लगाती ही रह जायगी।

अब मुझे याद आया कि इस प्रकार के समाचार मैं पहले भी पढ़ चुकी हूँ; परन्तु यह अवसर और था। मैं कभी डरने

वाली नहीं; परन्तु इस समय मुझे मालूम पड़ा कि मुझे भय लग रहा है। खुली हुई खिड़की की ओर मैं बार बार देख रही थी। अपनी दुर्बलता पर मैंने हँसने का उद्योग भी किया, और हृदय को दृढ़ भी बनाना चाहा; परन्तु सब बेकार। अब मैं परेशान होकर उठ बैठी। चारों ओर बड़े ध्यान से देखा। एक झटके के साथ रेल की चाल में कुछ कमी मालूम हुई, और थोड़ी ही देर पश्चात् एक छोटा-सा स्टेशन आया। मैंने खिड़की से सर निकाल कर देखा। लालटेन के शीशे पर स्टेशन का नाम पढ़ा।

टाइम-टेबुल उठाकर देखा और हिसाब जो लगाया तो मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। कितना जन-शून्य इलाका है कि अब दूसरा स्टेशन पूरे घण्टे भर बाद आयेगा। और फिर उसके बाद जो गाड़ी चलेगी तो लगभग पूरे दो घण्टे बाद रुकेगी।

गाड़ी चली, और स्टेशन आने से जो डर लगना बन्द हो गया था उसका फिर आभास होने लगा। थोड़ी देर बाद मेरी फिर वही अवस्था हो गई। अब मैं अपना इतमीनान करने उठी और बाहर झाँक कर अपने डब्बा के पायदानों की ओर बड़े ध्यान से देखा कि यदि कोई मनुष्य चलती गाड़ी में दूसरे डब्बा से आना चाहे तो आ सकता है या नहीं। डब्बा के पायदान ऐसे थे कि चलती गाड़ी में बराबर वाले डब्बे से किसी को आने का उद्योग करना अपने को मृत्यु के मुख में डालने से कम नहीं। अब मैंने खिड़की बन्द कर लेने का निश्चय किया; हालांकि मैं जानती थी कि खिड़की बन्द करना बेकार है; क्योंकि दरवाजा खोलने का हैंडिल बाहर ही था। परन्तु मैं लाचार थी; क्योंकि बाहर एक अत्यन्त भयानक दृश्य था। खिड़की खुली रहने से मुझे भय लग रहा था; अतः मैं खिड़की बन्द करके अपने बिछौने पर आ गई और पुस्तक सिरहाने रख

कर सोने के लिए लेट गई। थोड़ी देर तक तो भय के कारण निद्रा न आई, परन्तु अन्त में निद्रा ने भय पर विजय पाई और मैं सो गई।'

फीरोजा ने जिस प्रकार यह किस्सा सुनाया कि मैं वर्णन नहीं कर सकती। उसकी सुन्दर और चमकीली आँखों में गम्भीरता बसी हुई थी। मुख का साफ और स्वच्छ रंग बिल्कुल उड़ा हुआ था। मैं उसके हृदय की गहराई की थाह पर पहुँचना चाहती थी और विकल होकर कुछ पूछना ही चाहती थी कि उसने तुरन्त ही अपने किस्से को आगे बढ़ाया—

[२]

·····मैं सो गई थी·····मैं नहीं कह सकती कि कितनी देर तक सोती रही। मैं बड़ी गहरी नींद में सो रही थी कि मैंने अपनी गर्दन के पास कुछ सोते और कुछ जागते में एक ठंडक का आभास किया। औंघाई हुई अवस्था में ही मैं कुछ कुल-बुलाई, और कम्बल को सर पर करने लगी कि सहसा मुझे घटना की वास्तविकता का ज्ञान हुआ!·····मारे भय के मेरे मुख से एक चीख निकल गई। एक यूरोपियन गार्ड मेरे मुँह पर हाथ रखे था।

मैं उछल पड़ी और झिटककर अपना मुख कम्बल में छिपा कर बैठ गई। इसके उत्तर में एक भयानक गुर्राहट का शब्द हुआ, और उस कम्बख्त ने इस जोर से कम्बल पकड़कर झटका कि मेरा सिर और मुख खुल गया। उसने मेरा हाथ अपने लोहे के समान हाथों से पकड़ लिया। मुझे ऐसा जान पड़ा कि बस मेरी कलाई टूटी। दूसरे हाथ से मैंने अपना सर ढक लिया और अपना मुख कम्बल और घुटनों के बीच में छिपा लिया। मेरा दिल बल्लियों उछल रहा था और भय के कारण मेरी बुरी अवस्था थी।'

मैं विकल होकर बीच ही में बोल उठी और मैंने कहा—'बहन फिर क्या हुआ, जल्दी बतलाओ।'

फीरोजा ने कहा—'तुम निश्चिन्त होकर सारी घटना सुनो। घबड़ाओ मत·····वह हत्यारा उसी प्रकार मेरा हाथ मजबूती से पकड़े था। अब उसने अपने दूसरे हाथ से मेरा सिर उठाया। मेरे मुख से एक जोर की चीख निकली, तो कम्बख्त ने जोर से मेरा हाथ झटका और गुस्सा होकर कहा; 'अबकी चिल्लाई तो मार डालूँगा।'

क्या बताऊँ बहन, मेरी जान ही निकल गई जब उसने यह कहते हुए बड़ा-सा चाकू निकाल कर दिखाया और कहा 'जो मुख से एक भी शब्द निकाला तो मार ही डालूँगा।'

अब मैं इतना डर गई मानों मेरी जान निकल गई हो।

उसने मुझे इस प्रकार देखकर सामने वाली बेंच पर चाकू रख दिया, और मेरे समीप बैठ गया। मुझे उसकी समीपता से इस प्रकार घृणा हुई और इतना भय लगा कि मैं वर्णन नहीं कर सकती। मारे परेशानी के मेरे मुख से चीख निकलते निकलते रह गई! मैं कोने की ओर अपने को कम्बल में लपेट कर सिकुड़ गई कि जितना उससे दूर हो सकूँ अच्छा है।

मेरा हाथ तो उसकी पकड़ में था ही, अब उसने झटके के साथ मुझे अपनी ओर घसीटा।

डर कर मारे अब चीख तो मैं न निकाल सकती थी, अतः मैंने भी अन्तिम बल लगा कर उस हत्यारे से दूर ही रहना चाहा और साहस बटोर कर मैंने उससे कहा; तुम मुझे मारो नहीं, मैं तुम्हें सब रुपया पैसा जो मेरे पास है दे दूँगी।

उसने अत्यन्त ही कटु शब्दों में कहा, 'बीबी' मुझे तुम्हारा रुपया नहीं चाहिये।' इधर उसने यह कहा और उधर मैंने देखा·····उसके नेत्रों से कामाग्नि की ज्वाला निकल रही थी!

मैंने पूछा, 'जब आप को रुपया नहीं लेना है तो फिर मुझे क्यों मारते हैं ?'

उस हत्यारे ने उत्तर दिया, 'यदि तुम चिल्लाओगी तो देखो वह चाकू रक्खा हुआ है। तुम्हारा गला काट डालूँगा और यदि चुप रहोगी तो कुछ न कहूँगा।' मैंने उत्तर दिया, 'खुदा के लिए मुझे छोड़ दीजिये·····टिकट।'

उसने कहा, 'बीबी न हम टिकट मांगते हैं और न रुपया। हम तो तुमको माँगते हैं।' यह कहकर मेरी गर्दन में हाथ डाल कर बलात् मुझे ऐसा खींचा कि बस मुझे अपनी गोद में कर लिया। मैं अपनी कायरता को छोड़कर और इसको जीवन और मृत्यु की समस्या समझकर बिजली की तरह से इस जोर से तड़पी कि नीचे गिरी और उधर उसने मुझे एक जोर के झटके के साथ उठाकर बेंच पर दे पटका। मेरे मुख से चीख पर चीख निकल रही थी और उसने मुझे अवश कर ही लिया था कि जोर से किसी ने दरवाजे को एक चिल्लाहट के साथ झटका दिया। 'बदमाश' कह कर गरजकर दरवाजा से बिजली की तरह एक नवयुवक इस फुर्ती से निकला कि जब तक गार्ड सम्हले २; सजग हो, और इस आकस्मिक शत्रु का सामना करने के लिये तैयार हो, उसने लपककर गार्ड की गर्दन पर इस जोर का मुक्का मारा कि उसने एकदम से घबड़ाकर मुझे छोड़ दिया। दोनों एक दूसरे के साथ एक जबरदस्त युद्ध में लीन हो गए।

गार्ड भी बलवान आदमी था। मुझे छोड़कर वह अपने आक्रमणकारी पर झपट कर बढ़ा, और अपने पूरे बल से उस नवयुवक के कन्धे पर इस जोर का घूँसा दिया कि याद ही तो करते होंगे। अब दोनों में घूँसम-घूँसा और हाथापाई होने लगी। दोनों बलवान आदमी थे। नवयुवक में यदि फुर्ती अधिक थी तो गार्ड में बल और वीर्य अधिक था। गार्ड का

घूँसा बहुत इतमीनान से, परन्तु जोर के साथ, पड़ता था। नवयुवक की तेजी दर्शनीय थी। मारपीट में इसकी कोशिश थी कि वह गार्ड से गुथ जाय और लपट पड़े। परन्तु गार्ड चूँकि मोटा और भारी-भरकर आदमी था इसलिए उससे लपट पड़ना सम्भव न था। इसी लड़ाई के बीच में गार्ड ने लपक कर अपना बड़ा सा चाकू, जो सामने की बेंच पर रक्खा था, उठा लिया।

नवयुवक के ठीक सीने पर इस जोर का एक भरपूर हाथ मारा कि मैं देख न सकी, और मेरी आँखें स्वयम् ही बन्द हो गईं। मैं चिल्ला पड़ी। नवयुवक ने लाचार होकर चाकू का वार अपने बाएँ हाथ पर लिया और गार्ड का हाथ पकड़ना चाहा। मैंने देखा कि चाकू उसकी हथेली पर पड़ा परन्तु इतने में उसको अवसर मिल गया, और पहले इसके कि गार्ड अपने आक्रमण के झोंक से सम्हले नवयुवक ने गोता खाकर और चाकू की सीध से साफ निकल कर गार्ड की बाईं कनपटी पर इस जोर का घूँसा दिया कि वही सरीखा था जो झेल सका। फिर उसने गार्ड की कमर में हाथ डाल कर फुर्ती से टाँग से उसकी टाँग लड़ाई कि वह बोरी की तरह गिरा। इसने उसकी गर्दन दबाकर उसका सर बेंच के पावा में फँसा दिया गार्ड के हाथ में चाकू था और उसने अब उसको अन्धाधुन्ध चलाना शुरू किया परन्तु नवयुवक अब उसकी पीठ पर सवार था और उसने हाथ बचाकर गार्ड की कलाई पकड़ ली और गार्ड की गर्दन को जूता से जोर से दबा कर और हाथ मोड़ कर चाकू छीन लिया और खिड़की से बाहर फेंक दिया। अब गार्ड की गर्दन अच्छी तरह दबा कर घूँसे पर घूँसे मारना शुरू किए, और मारते मारते उसका मुँह तोड़ दिया। मुझे ऐसा लग रहा था कि शायद नवयुवक पागल हो गया है।

इतने क्रोध और प्रचण्ड वेग से उसने गार्ड को मारा कि मेरा दिल धड़कने लगा। गार्ड भी बड़ा बलवान आदमी था और अब उसने जोर लगा कर उठना चाहा तो फिर उसने भूखे बाघ की तरह गार्ड की गर्दन अपने जूते से दबाई और भीतर को बेंच के पावा में कोने की तरफ घुसेड़ दी; और फिर वही दीवानों की तरह, दे घूँसा दे घूँसा, उसको बुरी तरह मारना शुरू किया। गार्ड ने फिर करवट बदली और अब की मर्तबा जोर करके सिर बाहर निकाल लिया।

मैं समझी कि अब यह निकल आया परन्तु उस नवयुवक ने उसको चित करके उसकी गर्दन अपने दाहिने पैर के जूते की एड़ी से दबा कर इतने जोर से मसली कि उसके हलक और नाक से एक भयानक चीत्कार का शब्द निकला। मैं समझी कि अब यह मरा, और उस नवयुवक ने और भी अधिक बल से उसका गला दबाया। अब मेरे होश जाते रहे। अब तक मैं मूर्तिवत बैठी थी परन्तु अब सहसा मैंने चिल्लाकर कहा, 'परमात्मा के वास्ते उसका गला मत घोंटिए, यह कहकर और बड़ी परेशानी में गार्ड की जान बचाने के लिए मैंने नवयुवक का हाथ पकड़ कर खींचा। इसका यह प्रभाव हुआ हुआ कि उसने अपने पैर का दबाव जरा हल्का किया और मेरी ओर देखा। मैंने उसका हाथ छोड़ दिया और कहा'—ईश्वर के लिए ·····आप तो मारे डाल रहे हैं। मार न डालिएगा।'

नवयुवक ने कुछ न कहा। सिर से पैर तक मुझे, एक नजर भरकर, बड़े ध्यान से देखा और फिर मेरे होल्डाल का तस्मा, जो ऊपर से लटक रहा था, पकड़कर खींचा। इस तस्मा से गार्ड के दोनों हाथ, मरोड़ कर और अच्छी तरह वश में करके, बाँध दिये और छोड़ कर एक दो ठोकरें कसकर लगाईं। वह उठा तो उठते ही उसको सामने वाली बेंच पर

ढकेल कर अपने सम्पूर्ण बल से एक ऐसा चाँटा मारा कि उसका मुँह फिर गया।

उस समय मेरे मुँह से फिर निकल गया, "परमात्मा के वास्ते मेरे ऊपर दया कीजिए·····इनको मत मारिए।···मेरा दिल परेशान हुआ जाता है।" इसके उत्तर में उन्होंने फिर मेरी ओर बड़े ध्यान से देखा और मुझसे कहा, "यह इसी योग्य है। मुझे खेद है कि आपको कष्ट पहुँचा। अगले स्टेशन पर इसको पुलीस को दे दूँगा।"

अब मेरे चित्त में कुछ शान्ति थी, क्योंकि मैं जानती थी कि अब मेरा जीवन और सतीत्व दोनों सुरक्षित हैं। परन्तु मेरे चित्त की दुर्बलता को तो देखो। जब मुझे अपना भय न रहा तो अब गार्ड पर गुस्सा होने की अपेक्षा मुझे एक प्रकार की दया हो आई। उसको देख-देखकर मुझे बड़ी लज्जा आ रही थी कि वह मूर्ख अपनी मूर्खता के कारण मेरे बहाने इस बुरी तरह मारा गया। अतः जब उन्होंने कहा कि आगे चलकर इसे पुलिस में दे देंगे, तो मैंने कहा—"नहीं, नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं है। उसको पर्य्याप्त दन्ड मिल चुका है। मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम हो रहा है कि आप ने इन्हें इतना क्यों मारा?"

मैं कम्बल को अच्छी तरह ओढ़े और उसे लपेटे बैठी थी; परन्तु स्वभावानुसार मेरा सम्पूर्ण मुख खुला हुआ था और मैं बराबर बातें कर रही थी। मेरे इतना कहने पर उन्होंने फिर मेरी ओर देखा, और शायद आश्चर्य से देखा। परन्तु प्रथम इसके कि वह कुछ बोलें, गार्ड ने दबी ज़बान से कहा—"एक तो मैं नशे में था दूसरे मुझे पर्य्याप्त दण्ड मिल चुका है। अब मेरा अपराध क्षमा कीजिए।" इसके उत्तर में उन्होंने फिर गुस्सा होकर घूँसा ताना और वे मारने को ही थे कि सहसा

मैंने चिल्ला कर कहा,—" इनका अपराध क्षमा कर दीजिए।" तब वे रुक गये। मेरी ओर बड़े आश्चर्य से उन्होंने देखा और कहा—"आप जानें। अपराध आपका किया है। यदि इनका अपराध क्षमा भी कर दिया जाय तो इसके यह अर्थ तो नहीं हैं कि इन्हें पुलिस में भी न दिया जाय।"

यह सुनकर गार्ड ने बड़ी नम्रता से मुझको सम्बोधित करके कहा—"मैं आपसे क्षमा का प्रार्थी हूँ। यदि आपने न क्षमा किया, तो मेरे बाल-बच्चे भूखों मर जायँगे। मैं जेलखाना भेज दिया जाऊँगा और मेरी नौकरी जाती रहेगी।" उसके बाल व बच्चों की परेशानी का ध्यान करके अब मैं बिल्कुल पिघल गई और मैंने कहा,—" मैं कदापि नहीं चाहती कि आपके बाल-बच्चे परेशान हों।"

यह कहकर मैंने उनकी ओर देखा और अबकी मर्तबा बहुत अच्छी तरह दृष्टि गड़ाकर सिर से पैर तक बड़े ध्यान से उनको देखा। मैं एकदम से चौंक पड़ी, क्योंकि मैंने देखा कि उनकी बाईं हथेली से खून बह रहा था, जिसको वह आड़ में किये हुए थे। मैंने एक बारगी कहा—"अरे! यह आपके हाथ से खून बह रहा है।"

यह जानकर कि अब तो मैंने देख ही लिया है, उन्होंने कुछ उपेक्षा के भाव से कहा,—"योंही जरा-सा जख्म आ गया है।"

यह कहकर उन्होंने हाथ ऊपर को किया। उसमें से तेजी से खून बह रहा था। मैं तो इसकी आदी ही ठहरी। मेरे लिए यह कोई नयी बात न थी। मैंने कम्बल अलाहदा किया और कहा,—"लाइये, अभी ड्रेस कर दूँ।"

इस पर वह नहीं-नहीं करते रहे और मैंने जल्दी से अपना सूटकेस खोलकर यात्रा वाला डब्बा निकाला, और उसमें से एक साफ पट्टी और लोशन की शीशी निकाली। मैं यह थोड़ा

सा सामान सदा अपने पास रखती हूँ। इसके पश्चात् मैंने जग (Jug) लेकर उनका हाथ धोया। वह "नहीं-नहीं" करते रहे परन्तु मैं न मानी, और मैंने हाथ धोकर, शीशी से लोशन लेकर, कपड़े की गद्दी बनाकर बड़ी शीघ्रता और सफाई से पट्टी बाँध दी। उन्होंने पहले पट्टी को बड़े ध्यान से देखा, फिर मुझे देखा और कुछ मुस्कराकर बोले—'क्षमा कीजियेगा, आप तो पूरी डाक्टर हैं।'

मैंने भी हँसकर कह दिया—'पूरी तो नहीं हाँ, आधी अवश्य हूँ।'

परन्तु इस बीच में गार्ड साहब बराबर क्षमा याचना करते जा रहे थे। अत्यधिक अनुनय-विनय कर रहे थे। मैंने उनकी ओर देखा और उनकी अवस्था दया के योग्य पाई। बहन, न तो मैंने कभी किसी मर्द के हाथ मर्द को इस प्रकार पिटते देखा था, और न इस प्रकार गिड़गिड़ाते और क्षमा-याचना करते। शायद मेरे दिल की बात और मेरी स्वाभाविक दुर्बलता का पता गार्ड को चल गया, जो वह बेंच से उतर कर, घुटनों के बल मेरे सम्मुख सर झुकाकर क्षमा माँगने लगा।

मेरे लिए इसका सहन करना आवश्यकता से अधिक था। विकल होकर मैं सहसा चिल्ला उठी—'क्षमा किया। क्षमा किया। मैंने क्षमा किया।' और फिर अपने कृपा-पात्र से मैंने सिफारिश के ढङ्ग पर कहा 'आप भी इनको क्षमा कर दें।'

गार्ड फिर अपनी जगह पर बैठ गया था। बड़ी नम्रता से वह उनकी ओर देख रहा था। उन्होंने कुछ सोने के पश्चात् मुझसे कहा—'जब आपने स्वयम् इन्हें क्षमा कर दिया है, तो अब मेरे लिए क्या स्थान शेष रह गया है जो मैं इनकी ताड़ना करूँ। परन्तु इस प्रकार छोड़ देना अच्छा नहीं है। यह छोड़ देने से फिर इस प्रकार के कार्य करेंगे।

'कदापि नहीं। कदापि नहीं।' गार्ड साहब बोले।

मैंने कहा—'अब यह कदापि ऐसा न करेंगे। यदि इनमें तनिक भी मनुष्यता है, तो ऐसा अपराध यह फिर कभी न करेंगे। मैं इनकी सिफारिश करती हूँ। आप भी इनके बाल-बच्चों पर दया कीजिये।

मेरी सिफारिश पर उन्होंने उठ कर गार्ड साहब के हाथ खोल दिये। गार्ड साहब ने धन्यवाद के लगातार पुल बाँध दिये। और मजा तो देखो कि लगे मेरा पता माँगने। इस पर उन्होंने इस बुरी तरह गार्ड साहब को घूरा, कि वह घबड़ा कर चुप हो गये।

गाड़ी की चाल में कमी हुई। उन्होंने कुछ रुकते हुए, कुछ सर झुकाकर, कुछ हकलाकर बड़े तकल्लुफ से मुझसे पूछा—'क्षमा कीजिएगा।.....क्या आप मुझे अपना अथवा अपने पिता जी का नाम .....या पता बता सकती हैं? आप शायद विद्यार्थिनी मालूम होती हैं।'

मैंने कहा—'जी हाँ। मैं आगरा मेडिकल स्कूल की छात्रा हूँ और.....'

सहसा बात काटकर और चौंककर वह बोले—'तो क्या आपका नाम.....फी.....फी.....'

'जी हाँ' मैंने कुछ आश्चर्य से कहा—'मेरा नाम फीरोज़ा है। परन्तु आपको कैसे मालूम हुआ?'

बस बहन, अब मैं तुमसे क्या बताऊँ कि क्या हुआ। एक दम से उनका मुख अत्यन्त गम्भीर हो गया। उन्होंने एक विचित्र रूप से मौन धारण कर लिया। मूर्तिवत खड़े-के-खड़े रह गये। नीचे फर्श की ओर उनकी नज़र थी। बजाय उत्तर देने के उन्होंने मेरी ओर एक बड़ा पाप-रहित दृष्टि से देखा।

मैं कुछ विस्मित-सी थी। परन्तु मैंने फिर पूछा—'आपको मेरा नाम किसने बताया है।

परन्तु इसके उत्तर में उन्होंने फिर अपनी नजर नीची कर ली, और दो-चार सेकन्ड के बाद मेरी ओर कुछ रंजीदा-सा मुख बनाकर देखा। अब मुझे सन्देह हुआ कि यह कौन हैं। मैं कुछ डर-सी गई कि इन्हें क्या हो गया। मैंने उनका गंभीर और रंजीदा मुख देखकर कहा—'हैं, यह आपकी अवस्था ?··· आप मेरी बात का उत्तर भी नहीं देते !'

इसका उत्तर उन्होंने इतने रूखे और कठोर शब्दों में दिया कि मैं ठिठक कर रह गई। वह बोले 'कुछ नहीं। मुझको मालूम ·····मैंने सुना·····सुना था। आपको इससे क्या बहस ?'

अन्तिम शब्द उन्होंने इतने जोर से कहा कि एक लड़की के लिए किसी प्रकार भी सहनीय न थे। मैंने इस झिड़की को बड़ी कठिनता से सहन किया, क्योंकि उन्होंने मेरे साथ कृतज्ञता की थी। अतः मुझे कुछ रोना-सा आ गया और उन्होंने उपेक्षा से खिड़की की ओर झाँकना आरम्भ किया।

मैंने अपने को सम्भाल कर कहा—'आप मुझको इससे भी अधिक झिड़की दें तो भी मुझे कोई शिकायत नहीं हो सकती। मैं जीवन-पर्यन्त आपकी कृतज्ञ रहूँगी।

आशा के विरुद्ध उन्होंने तनिक भी मेरे रंजीदा शब्दों की ओर ध्यान न दिया। वे तनिक भी प्रभावित न हुए, बल्कि उनके मुख पर और अधिक कठोरता के भाव दिखाई पड़े, मानों वह मुझे कमीनी और तुच्छ समझते हों। अब मैं पूरी तरह समझ गई कि यही मेरे मंगेतर हैं और मेरी इस स्वतन्त्रता और एकान्त यात्रा करने के नितान्त विरुद्ध हैं। मेरा दिल जैसे बैठ गया। अब मैंने यह सोचकर कि इन्होंने मेरे जीवन और सतीत्व की रक्षा की है, लाओ इनसे यह तो पता लगा ही लूं कि

यह मेरे मंगेतर ही हैं और बन पड़े तो कायल भी कर दूं। अतः दिल में यह सोचकर मैंने अन्तिम बार उनसे पूछा,—"कम से कम अपना नाम और पता तो मुझे बता ही दीजिये, जिससे मेरे पिता जी आप को धन्यवाद का पत्र तो लिख सकें। क्यों·····क्या आप मुझसे घृणा करते हैं?"

इसके उत्तर में उन्होंने एक दम से जैसे चौंककर मुझे घूर कर देखा। उनके चेहरे का भाव और भी कठोर हो गया। उन्होंने बड़े तिरस्कार से मेरी ओर देखा। फिर देखा कि गाड़ी प्लेट-फार्म पर आगई। वह उसी प्रकार मुझे घूरते रहे। एक झटके के साथ गाड़ी रुकी और जैसे वह चौंक से पड़े। गाड़ी रुकने के साथ ही उन्होंने अत्यन्त कठोर और तिरस्कारपूर्ण शब्दों में, जैसे कुछ बिगड़कर मुझसे कहा, "क्षमा कीजिएगा। मैं आप से घृणा करता हूँ या नहीं, इसका तो प्रश्न ही बेकार है। परन्तु यह बात सत्य है कि मैं महानीच हूँ और आप मुझसे घृणा रखती हैं·····मेरा नाम यूसुफ है।" मेरे ऊपर एक वज्र सा गिरा और मेरे मुख से एकदम से निकल पड़ा, "अरे" और मैं हाथों से अपना मुख छिपा कर बेंच पर गिर पड़ी।

मुख पर से हाथ हटा कर जो देखती हूँ तो न वहाँ गार्ड है और न मिस्टर यूसुफ। खिड़की के बाहर झाँक कर देखा तो एक उजड़ा-सा छोटा स्टेशन था और किसी ने आवाज दी "पानी, हिन्दू पानी।" मैंने फीरोजा से कहा कि मैं तो यह समझ ही रही थी कि तुम्हारे नये मंगेतर निकलेंगे।

[५]

फिरोजा ने कहा कि अभी पूरी कहानी सुनो:—

रेल चल दी और मैं अपनी गाड़ी में फिर उसी प्रकार अकेली रह गई। सबसे पहले जो मैंने झाँककर यह देखा कि मिस्टर यूसुफ कैसे और किधर से आये थे, मुझे मालूम हुआ कि बरा-

बर के कम्पार्टमेंट से आये क्योंकि मेरा जनाना डब्बा एक बड़े सेकंड क्लास का टुकड़ा था। अतः मेरी बुद्धि काम न करती थी कि वह कैसे आये। क्योंकि आने वाला केवल एक प्रकार से आ सकता था। वह ऐसे कि पहले अपनी खिड़की से वह चलती गाड़ी में लटके, और फिर झूलकर, झटका देकर अपने मजबूत हाथों के बल पर भरोसा करके, फलाँग मारकर मेरे डब्बे की खिड़की या सलाख पकड़ने की कोशिश करे, और (यह काम साधारण न था) तब जाकर लटककर पावदान तक पहुँचे। यह विचार करके कि वह किस प्रकार अपनी जान जोखों में डालकर आये होंगे, मेरे रोंये खड़े हो गये।

यह देख कर मैं अब अपनी जगह आकर बैठी। पूर्व की घटनाएँ मेरी आँखों में एक दम से फिर गईं। मैं कुछ हारी-सी हो रही थी। मुझे अत्यन्त कठोर और मुँह तोड़ उत्तर मिला था। मैंने उन्हें और उनके सम्पूर्ण कुटुम्ब को कमीना कहा था, नीच कहा था, कायर कहा था। अब मैंने दिल में सोचा तो मालूम हुआ कि भला ऐसा आदमी किस प्रकार कायर और नीच हो सकता है, जिसने एक असहाय और दुर्बल लड़की की रक्षा करने के लिए अपना जीवन खतरे में डाल दिया। उचित समय पर वे ठीक इस प्रकार पहुँचे हैं मानो कोई देवदूत अवतरित हुआ हो। फिर किस प्रकार उन्होंने बाघ के समान एक राक्षस से युद्ध किया, और किस बहादुरी से उसे परास्त किया। उसका चाकू छीनकर उसको मारा नहीं, बल्कि उसे बाहर फेंक दिया। किस प्रकार गार्ड ने भरपूर हाथ सीने पर तान कर मारा था, यदि ठीक बैठ जाता, तो क्या होता? जीवन की कुशल न थी। भला ऐसा बहादुर और सिंह के समान आदमी किस प्रकार कायर और नीच हो सकता है।

मैंने विचार किया कि आखिर मैंने इनको नीच क्यों कहा,

तो मालूम हुआ कि केवल एक कारण कि इन्होंने और इनकी बहन ने इस सम्बन्ध के लिए अत्यधिक कोशिश की। एँड़ी-चोट का जोर लगाया, दुनिया भर की सिफारिशें इकट्ठी कीं, और हर प्रकार के प्रभाव काम में लाया। बस·····यही नीच बात थी और इसके सिवाय कोई दूसरी बात नहीं थी। अतः जब मैंने इन तमाम बातों पर ठण्डे दिल से विचार किया तो मेरी आत्मा ने मुझको बहुत धिक्कारा कि मैंने बहुत ज्यादती की, बहुत अन्याय किया, जो ऐसे आदमी को कमीना और नीच कहा।

मुझे अपने व्यवहार पर बेहद दुःख हो रहा था। बड़ी आत्म-ग्लानि से भर गई थी, कि सहसा मेरी नजर बेंच के पास एक लाल तथा काले धब्बे पर पड़ी! मैं तनिक आगे को झुकी, क्योंकि मुझे जरा भी ख्याल न रहा था। रुपये बराबर जगह में खून जमा हुआ था और उसके समीप ही एक दूसरा खून का धब्बा था; परन्तु वह मिटा हुआ और घिसा हुआ था, जैसे किसी चीज से रगड़ गया हो। तुरन्त ही बिजली के समान यह विचार मेरे दिल में आया कि यह एक शरीफ और बहादुर आदमी का खून है।···वह खून, जो मेरे जीवन और सतीत्व की रक्षा करने के लिए बहा है। मुझे कुछ सन्देह हुआ, और मैंने अपने दाहिने पैर के जूते को देखा·····हे ईश्वर! मैंने इस खून को अपने जूते से रगड़ा था! मेरी अवस्था कुछ बिगड़ सी गई। इतना भारी धक्का मेरे दिल पर पड़ा कि मैं ठण्डी-सी हो गई। इतना जघन्य पातक!·····एक दम से बेसुध होकर मैंने अपना रूमाल निकाला और इस पवित्र रक्त को उससे अच्छी तरह रगड़-रगड़कर पोंछ लिया फिर जूते को उतार कर उसे भी अच्छी तरह रूमाल से पोंछा। उस रूमाल को आँखों में लगाया। मुझे इतना अधिक मानसिक क्लेश

हुआ कि इससे पूर्व जीवन में कभी नहीं हुआ था। मैं रो रही थी। मेरी हिचकी बँध गई। मैं इतना फूट-फूट कर रोई कि परमात्मा ही जानता है। मैंने उसी रूमाल में अपने भीगे नेत्र पोंछे। सफ़ेद रेशमी रूमाल था और सारा-का-सारा रक्त-रंजित हो गया था।

थक कर और तकिया लगाकर टिक गई। कम्बल को मैंने अच्छी तरह ओढ़ लिया। रक्तरंजित रूमाल मेरे सीने पर रक्खा हुआ था, और मैं मानो शोक से कुछ विश्राम पाकर उस रूमाल को ध्यान से देख रही थी। देखते-देखते मुझे कुछ सोते और कुछ जागते में ऐसा जान पड़ा कि जैसे कोई स्टेशन आया। और वास्तव में स्टेशन आ गया था। स्टेशन का शब्द मुझे ऐसा मालूम हो रहा था जैसे कोई दूर से बोल रहा है। मुझे यह भी न मालूम हुआ कि गाड़ी कब चली। इसी समय सहसा एक खटका-सा हुआ। आँखें खुलते ही मैंने देखा कि कोई मनुष्य काले कपड़े पहने हुए मेरे डब्बे में घुस आया। भय के मारे मेरे मुख से एक जोर की चीख निकली और मैं बेहोश हो गई।

थोड़ी देर बाद मुझे होश आता मालूम हुआ। बहुत जोर लगाकर मैंने आँखें खोली किन्तु वे फिर बन्द होगईं। फिर जोर लगाकर मैंने जो आँखें खोली, कुछ धुँधली छाया सी जान पड़ी। मैंने फिर आँखें बन्द कर जो खोली, तो मिस्टर यूसुफ को अपने ऊपर झुका हुआ पाया। उनके एक हाथ में मेरे बाएँ हाथ की नाड़ी थी और दूसरे हाथ से वह मेरे ऊपर कम्बल ढक रहे थे। मैंने बड़े ध्यान से उनकी ओर देखा और तुरन्त उठने का उद्योग किया। वह संकेत से मना करके सामने वाली बेंच पर बैठ गये। मेरे होठ सूख रहे थे और गले में काँटा सा पड़ा था। मैंने जग (jug) की ओर देखा, तो उन्होंने तुरन्त गिलास भर कर मुझे पानी दे दिया। मैं उठने लगी, तो सहारा देकर उन्होंने

मुझे उठाना चाहा परन्तु मैं स्वयं उठ बैठी और पानी लेकर पिया तो मेरी अवस्था ठीक हो गई।

अब मैंने, जिस प्रकार सम्भव हो सका; उनके आगे कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, 'मैं किस मुख से आपको धन्यवाद दूँ। आपने दुबारा मेरी जान बचाई।'

उन्होंने हँस कर कहा—'लाहौल बिला कूवत! मैं प्रत्येक स्टेशन पर आपके डब्बे की देख-भाल करता हूँ। घटना-चक्र तो देखिये कि जैसे ही गाड़ी चली मैंने देखा कि एक व्यक्ति काला वस्त्र धारण किये हुये आप के डब्बे में घुस रहा है। मैं तुरन्त कूद कर चढ़ आया, परन्तु इसी बीच में वह कूद कर दूसरी ओर निकल गया था। मैंने सामने उसे एक दूसरे आदमी के पास खड़ा देखा। वह रेलवे का कुली था। मैं उस पार जाना चाहता था; परन्तु मैं स्वयं डर गया। फिर आपका भय-भीत होना बिल्कुल ठीक था।'

इतना कहकर उन्होंने खून में तर उस रूमाल पर, जो मेरे सीने पर कम्बल के ऊपर रक्खी थी, बड़े ध्यान से नजर डाली। उन्होंने उसको इतने ध्यान से देखा कि लाचार होकर मुझे भी रूमाल को देखना पड़ा। बस, एकदम से मेरा चेहरा फीका पड़ गया। उन्होंने तुरन्त ही अत्यन्त आश्चर्य से पूछा—'यह रूमाल! क्या·····?'

मैं शर्म से पानी-पानी हो गई। स्वभावतः मेरी दृष्टि रूमाल से हटकर उनके दिव्य मुख पर पड़ी। फिर उसी स्थान पर जहाँ से मैंने खून पोंछा था, मेरी और उनकी, दोनों की, नजर साथ साथ पड़ी। उन्होंने खून के पोंछने का साफ निशान देखा। फिर रूमाल को देखा, और फिर उस धब्बे को। एक बारगी उनका चेहरा तमतमा उठा और उन्होंने मेरी विकलता और दुर्बलता को देखकर अपनी नजर नीचे करली। वे तुरन्त ही

बोल उठे,—"आपने अपनी रूमाल नाहक खराब किया। किसी कागज से पोंछकर फेंक दिया होता तो आप के जूतों में तो न लग जाता।"

ये व्यंग पूर्ण शब्द मुझसे सहन न हो सके; और मैंने एक-दम से कम्बल में मुख छिपा लिया। मेरा दिल भर आया। आँखें डबडबा आईं। मैं फिर नितांत बेसुध होगई। अभी-अभी बेहोश हो ही चुकी थी, इसलिए सहन करना कठिन हो गया। मैं कम्बल में मुँह छिपाये रोती रही। बहुत जल्द स्टेशन आ गया और पूर्व इससे कि रेल रुके, मैंने मुख पर से जो कम्बल हटाया, तो वहाँ कोई न था।

दूसरे दिन मैं बम्बई पहुँच गई, परन्तु न तो उन्हें कहीं रास्ते में देख पाई, न बम्बई में। वहाँ दो दिन भी रहना मेरे लिए कठिन हो गया। फलतः जिस प्रकार हो सका, मैं वहाँ से जल्दी करके भाग खड़ी हुई। लौटते वक्त भय के कारण मैंने तीसरे दर्जे का टिकट लिया।

अब तुम इन तमाम घटनाओं पर विचार करो और सलाह दो कि मुझे क्या करना चाहिये।

मैंने सम्पूर्ण कहानी बड़े इतमीनान से सुनी और कहा—"बहन, अब करना यह चाहिये कि जिस प्रकार बन पड़े, यूसुफ साहब को राजी किया जाय। मेरे जान में उनसे अधिक कोई दूसरा हकदार नहीं है। मैं इसमें तुम्हारी भरसक सहायता करूँगी।"

[६]

मैंने सम्पूर्ण घटना मौलाना को सुनाई। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—"यह कौन बड़ी बात है। कल ही लो। यूसुफ साहब ऐसे नीच आदमी नहीं हैं जो एक लड़की के विरुद्ध इस प्रकार के विचार अपने हृदय में रक्खे रहेंगे।"

मैंने कहा—"आप तो विचार लिये फिर रहे हैं। अरे, दोनों का ब्याह करवाओ।"

इसका भी उत्तर उन्होंने यही दिया कि यह कौन बड़ी बात है।

मौलाना रात ही में यूसुफ साहब के पास बोर्डिंग में गये। उन्होंने इस प्रकार असमय में आने और इस बात पर असाधारण रूप से ध्यान देने का कारण पूछा। बातों के बीच में किसी प्रकार उनको मालूम हो गया कि फीरोजा आई है। अतः उन्होंने आने से बिल्कुल इन्कार कर दिया और कहा कि मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा। मौलाना ने बहुत कुछ जोर दिया, और बेहद समझाया तो उन्होंने कहा कि मैं किसी उच्च कुल की युवती से इस प्रकार भेंट करना बहुत बुरा समझता हूँ। पर जब मौलाना ने कहा, कि वह क्षमा मांगेगी और आप को धन्यवाद देंगी, तो उन्होंने कहा "तब तो और भी मुझे न जाना चाहिए, क्योंकि मैंने जो कुछ भी किया वह एक कर्तव्यपरायण नवयुवक का कर्तव्य था। रह गई क्षमा प्रार्थना की बात सो उसकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है।"

जब वे इस प्रकार भी वश में न आये तो मौलाना ने कहा कि "भाई अब साफ साफ सुन लो। हमारी यह राय है कि इस सेवा के उपलक्ष में हम तुम्हारा और उनका ब्याह पक्का करा दें।" इस दिल्लगी पर वे बड़े दार्शनिक के ढंग से बिगड़ कर बोले "वाह अच्छी रही! लाहौल-विला-कूवत! इसका तो कभी विचार ही दिल में न लाना। जीवन में शायद मैंने एक ही काम किया है जिस पर मेरा अन्तःकरण मुझे शाबाशी देता है कि मैंने निःस्वार्थ भाव से अपनी जान संकट में डाल कर एक असहाय कुमारी की सहायता की है; और तुम यह चाहते हो कि मेरे सारे जीवन का यह अकेला पवित्र कार्य, स्वार्थ और

बदले के प्रलोभन में पड़कर मिट्टी हो जाय। इसका तो मुझे ख्याल भी न करना चाहिए। तुम भी इसका ख्याल न करना।"

सारांश यह कि मौलाना बहुत लज्जित हुए, और कुछ झेंपकर लौट आये। दूसरे दिन फिर गये तो फिर उन्हें अपने निश्चय पर आवश्यकता से अधिक अटल पाया। उन्होंने लाख-लाख उद्योग किये परन्तु वह टस-से-मस न हुए। फीरोजा हार कर और झखमार कर चली गई, क्योंकि वह अधिक दिनों तक न ठहर सकती थी।

यह हुआ उस घृणा का परिणाम जो फीरोजा अपने हृदय में मिस्टर यूसुफ के लिए रक्खे थीं। वह विकल और हारी-सी थीं। उनका जीवन, स्वयम् उनके कथनानुसार एक नीच जीवन था। सारांश यह कि उनके जीवन का लक्ष्य उनके सम्मुख था। सबसे पहले तो वह उस जगह की बातचीत को तोड़ना चाहती थीं, जिसके छूट जाने का सन्देह किसी समय उनको विकल किए हुए था। उनकी समझ ही में न आता था कि किस प्रकार उनका उससे पीछा छूटेगा।

वास्तव में हमारा आचरण भी कभी-कभी बड़ी विचित्र और पेचीली समस्याएँ ला उपस्थित करता है। ऐसे अवसर पर स्वयम् बालिका की अवस्था दयनीय हो जाती है। यदि वह तनिक भी अपनी रुचि अथवा अपने उचित और परिपक्व विचार प्रकट करती है, अथवा उनके अनुसार कार्य करना चाहती है, तो उसके इन सम्पूर्ण कार्यों तथा विचारों का सब ओर से उपहास किया जाता है। संसार की बात तो दूर रही, उसके सगे सम्बन्धी तक उसके इन कार्यों को बाजारू प्रेम और दुराचरण से संलग्न कहते हैं। सब यही कहते हैं कि जरा स्वतन्त्रता तो देखो! यह दुराचरण तो देखो। यह कोई नहीं समझता कि बेचारी लड़की प्रेम और मुहब्बत का नाम तक नहीं

जानती। उसके जीवन का लक्ष्य एक अच्छे पति के साथ आज्ञा-कारिणी पत्नी बनकर रहना होता है। उसके सारे कार्य बाजारू प्रेम, दुराचरण और गन्दगी से परे होते हैं। वह एक दूसरी ही शक्ति है जो लड़की को किसी कारण विशेष से किसी पुरुष की प्रेमिका बना देती है। परन्तु हाँ, यह भी सत्य है कि ईश्वर ने पाँचों अगुलियाँ समान नहीं बनाई हैं। भेड़ के भेस में भेड़िए भी हैं। फीरोजा की अवस्था पर विचार कीजिए कि क्या उसके लिए यह उचित नहीं है कि वह जीवन-पर्यन्त यूसुफ की आज्ञा-कारिणी पत्नी बनने की आशा पर मर मिटे।

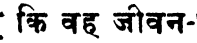

शाहिदा का ब्याह

शाहिदा एक कली थी, जो कुम्हला कर रह गई थी। ब्याह के शोक में वह सूख कर काँटा हो गई। उसका अन्न-जल छूट गया। रोते-रोते वह अचेत हो जाती थी। न जाने वह कौन-सी वस्तु थी, कौन-सा ऐसा कारण था, जो उसको आत्मघात करने से रोके हुए था। मैं बहुत समझती थी परन्तु उसका शोकसागर अथाह था। पहले जब कभी वह मिलती थी तो हँसती और हँसाती थी और अब जब मिलती है तो रोती और रुलाती है। उसका सारा रंग-रूप विदा हो चुका था। उसके खिले मुख पर मुर्दनी छाई रहती थी। खेद है कि वह सुन्दरता और युवा-वस्था की सुन्दर और चुलबुली तस्वीर अब दुख और शोक से घुल-घुल कर केवल खासा मात्र रह गई थी।

अबुल हसन साहब जब कभी मौलाना से शाहिदा की हालत सुनते, तो मुस्कराकर कहते, 'सब ठीक हो जायगी। मैं उन्हें काश्मीर ले जाऊँगा' इत्यादि-इत्यादि। फिर भी मौलाना ने अपने

उद्योग में कमी न की। मैंने कैसे-कैसे पत्र अबुलहसन साहब को लिखे, परन्तु सब निर्मूल। किस-किस प्रकार हम लोगों ने शाहिदा की माता से कहा परन्तु वह भी टस से मस न हुई। उल्टा यही उत्तर देती—"बेटी, क्या अपने खानदान की इज्जत गवाऊँगी। बुढ़ापे में मुँह काला कराऊँगी। तुम सब लोग उस कम्बख्त को समझाओ।" हम सब देखते थे कि अबुलहसन साहब के रुपये का जोर कैसा है। जो देखता और सुनता वही शाहिदा के लिए प्रार्थना करता।

शाहिदा की अब यह अवस्था थी कि यदि उसकी सहेलियाँ उससे बातें करतीं तो वह उनकी दुःख भरी बातें सुनकर, मुख मोड़ कर, ठंडी सांस लेकर और अपनी आँखें पोंछकर रह जातीं। वह कितनी अच्छी गानेवाली थी! एक दिन उसी का दिल बहलाने के लिए हम दो चार लड़कियों ने गाना आरम्भ किया। फिर शाहिदा को भी गाने के लिए मजबूर किया। पहले उसने इनकार किया परन्तु हम लोगों के हठ करने पर लाचार होकर गाना शुरू किया। उसके सुरीले स्वरों में अब एक विचित्र दुख भरा हुआ था। ऐसा जान पड़ता था कि बाजा से रोने का स्वर निकल रहा है। गाते-गाते उसका स्वर बदल गया और घुट कर बन्द हो गया। वह खुद रो रही थी और उसके साथ हम सब भी। पलक मारते में गाने की सभा रोने की सभा में परिणत हो गई।

ब्याह वाले सप्ताह में वह सब से मिलकर बिदा हुई। खुद रोती और मिलने वालियों को रुलाती। सब लोग प्रार्थना करते थे कि परमात्मा उसकी कठिनाइयाँ दूर करे परन्तु वह तो निश्चय ही कर चुकी थी।

वह मेरे यहाँ आई। उसके चित्त में दृढ़ता और निश्चय पाया जाता था। बड़ी गम्भीरता से उसने अपना निश्चय मुझे

बतलाया। मैं सन्न होगई। मेरे पैरों तले से पृथ्वी निकल गई। वह आत्म-हत्या करने पर उद्यत थी। मैंने लाख समझाया परंतु उसको अपने निश्चय पर अटल पाया। मुझसे अन्तिम भेंटकर के वह विदा हुई। मैंने मौलाना से पूछा—'क्या वास्तव में वह आत्म-हत्या कर लेगी?' उन्होंने कहा—'कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि उसके लिए जीवन बड़ा कष्टमय हो गया है।'

मैं सारी रात बेचैन रही। सुबह उठते ही जो दौड़ी गई तो क्या देखती हूँ कि शाहिदा जीती जागती बैठी है। मुझे देखकर वह बेमौका मुस्करा दी! मुझसे तो रात में इतनी भयानक बातें करके आई थी कि मैं समझती थी कि शायद सुबह शाहिदा की मृत्यु का समाचार आयेगा। मैंने कहा—'कम्बख्त तू और मुसीबत में मुसीबत किये दे रहा है।"

इस पर वह शपथ खाकर कहने लगी, 'बहन, पहले मैंने रस्सी का फन्दा गले में डालकर कसा, तो जब गला घुटने लगा तो फड़क कर मैंने उसे दूर फेंक दिया। फिर रात को उठी और जाकर सिल पर चूड़ियाँ पीसीं कि उन्हें घोलकर पीलूँ, परन्तु विचार किया कि इससे आँतें कट जायँगी, और मृत्यु अत्यन्त दुखदायी होगी, पेट की पीड़ा से मैं वैसे ही डरती हूँ। फिर इसके पश्चात् चुपके से कोठे पर चढ़ी कि नीचे कूद पड़ूँ, किन्तु नीचे अन्धकार में झाँक कर देखा तो मारे भय के दम निकल गया। सीधी वहाँ से भागी। चाकू छुरी से गला काटना मेरे बस की बात नहीं और विष मिलता नहीं। मैं तो अब घुल घुल कर मरूँगी।"

मैं वहाँ से तय करके चली आई कि ब्याह से पाँच दिन पहले आ जाऊँगी।

दूसरे दिन घर पर जीनत का पत्र मिला। वह इतनी सावधानी से लखनऊ में दिन बिता रही थी कि यहाँ की उसकी

खबर ही न थी। उसने अपना पता भी न लिखा था जो पत्र लिखकर नजमी की कुछ हाल चाल पूछती।

मैं अपने कपड़े-लत्ते और सूट-केस ठीक कर रही थी, क्योंकि शाम को शाहिदा के यहाँ जाना था और कम से कम पाँच छः दिन के लिए, इसी बीच में जिमवाली आईं। कुछ दिनों से अपने झगड़ों के कारण वे वैसे ही अलग अलग रहती थीं। उनके झगड़े यही थे कि प्रत्येक रविवार को जिम के पत्र के साथ-साथ अनेक प्रकार की बातें और फुलझड़ियाँ छूटती थीं। प्रत्येक सप्ताह कुछ नवीन विचार कुछ नवीन चिन्ताएँ, यही उनके जीवन के सुख-स्वप्न थे। वैसे तो हम सब में परस्पर बड़ी गहरी मित्रता थी, परन्तु फिर भी शाहिदा को मुझसे ज्यादा प्रेम था और जिमवाली को जीनत से। सम्भव है कि बातें एक दूसरे के घर निकट होने से सम्बद्ध हों। सारांश यह कि जिमवाली बहुत विकल और परेशान हालत में हमारे यहाँ आ पहुँची। मैंने उन्हें विचलित देख कर पूछा—"बहन कुशल तो है ?"

घबड़ा कर जिमवाली बोलीं—"वह आगया.....। नजमी।"

मैंने बड़े आश्चर्य से कहा - "हैं ! नजमी !" जिमवाली बोली "हाँ, और मेरे यहाँ है ! भाई जान के यहाँ ! फिर भाई जान ने मुझे स्वयम् बुलाकर और यह कहकर उससे भेंट कराया "यह नजमी जिम के बड़े मित्र हैं इनसे भेंट करो।"

मैं बड़े आश्चर्य में खड़ी की खड़ी रह गई। भला क्या करती। लाचार होकर ऐसे मिली मानों कभी पहले की मुलाकात ही न थी।"

मैंने जिमवाली से पूछा "फिर तुम क्या करोगी ?"

"करूँगी क्या ? मैं डर रही हूँ।"

"तुम अपने भाई से कह दो न, और नहीं तो लाओ, मैं कहलवा दूँ।" जिमवाली डरकर बोली,—"न बहन, मुझे मार डालेगा। मुसीबत तो यह है कि मैंने शाहिदा के यहाँ जाने की कोशिश की, भाई जान ने कहा, "अभी से जाकर क्या करोगी। घर में मेहमान आया है।"

अब मैं घबड़ा रही हूँ कि क्या करूँ।

मैंने भी यही राय दी कि अपने भाई साहब से साफ-साफ कह दो नहीं तो ठीक नहीं। अतः जिमवाली वादा करके गई कि अवश्य कह दूँगी। वह कहने लगीं कि 'भाई साहब तो उनसे ऐसी बेतकल्लुफी से मिले मानों वह उनके पूर्व परिचित हों। परन्तु जब मैंने पूछा, तो मालूम हुआ कि जिम के मित्र होने के कारण बेतकल्लुफी है। नहीं तो वह कभी पहले उनसे नहीं मिले। वह कमबख्त जिम का कोई पत्र लाया है, जिसके कारण उन्होंने मुझसे कह दिया है कि शाम को इनके साथ मोटर पर घूमने जाया करो। अब मैं और भी डर रही हूँ। मैं तो कदापि न जाऊँगी।"

अतः इसी प्रकार की सन्देह-जनक बातें करके जिमवाली चली गई, मैं बड़े सोच में पड़ गई। जिमवाली की ओर से बड़ी चिन्तित थी कि देखो क्या होता है। शाहिदा की ही चिन्ता क्या कम थी, जो वह दूसरी चिन्ता सर पर सवार हो गई।

शाहिदा का ब्याह मेरे लिए बड़ी मुसीबत थी कि उसने तीन दिन पहले ही से खाना बिल्कुल छोड़ दिया था। मैं इसलिए आई थी कि उसे दिलासा दूँगी, परन्तु मेरी तो उससे भी अधिक शोचनीय अवस्था होगई। परन्तु तनिक बिचार तो कीजिए कि आने वाली क्या कहती थीं।

एक बोली, "माता-पिता के वियोग के सोच में हमारी स्वयं ही इससे अधिक बुरी अवस्था हो गई थी।" दूसरी बोली, हमने दस दिन खाना नहीं खाया था" तीसरी बोली, "हम इससे भी अधिक दुर्बल हो गई थीं।" चौथी बोली,—"हम महीना भर रात-दिन रोती रही थीं।" सारांश यह कि वहाँ कोई ऐसी स्त्री न थी, जिसको शाहिदा की अवस्था दया के योग्य असाधारण मालूम होती।

ठीक विदा वाले दिन मौलाना की एक चिट्ठी आई कि मुझसे दस मिनट के लिए मिल लो। ज्यों-त्यों करके मैं उनसे मिली तो उन्होंने ऐसा भयानक समाचार सुनाया कि मेरे पाँव तले से पृथ्वी निकल गई।

वह समाचार क्या था, मानों मेरे लिए मृत्यु का सन्देशा था। थोड़े में कहती हूँ, सुनो। नजमी जिमवाली को मोटर में लेकर शाम को हवा खाने गया। बस्ती से दूर, सूर्यास्त के समय, एकान्त सड़क पर उन्होंने एक दूसरा मोटर खड़ा देखा। नजमी ने ड्राइवर से कहा—"मोटर रोको।" ड्राइवर ने मोटर के पास मोटर रोक लिया। दूसरे मोटर का ड्राइवर अपना मुँह कपड़े से छिपाए था कि पहिचाना न जा सके। नजमी ने अपनी पिस्तौल निकाल कर और जिमवाली का हाथ पकड़ कर उसको दूसरे मोटर में डाल दिया। जिमवाली को गोली मारने की धमकी देकर आज्ञा दी कि मेरे साथ बैठो। कोई आठ मील अपने साथ ले जाकर छोड़ दिया कि भाग जाओ। रात के दस बजे बिचारा ड्राइवर घर पहुँचा और नवीन सभ्यता के प्रेमी भाई से बहन के भागने का समाचार विस्तार-पूर्वक सुनाया। भाई ने डाँटकर कहा—"भाग जाओ, फजूल मत बको, खबरदार इसका किसी से जिक्र न करना।"

मैं इस समाचार को सुन कर सिर पकड़ कर बैठ गई।

मौलाना ने कहा कि इसकी बड़ी चर्चा हो रही है कि स्वयं भाई ने ब्याही लड़की को दूसरे को सौंप दिया। मान लो, यह भी किया, तो भी जो कष्ट विचारी जिमवाली को हुआ, उसको कोई क्या जान सकता है! मैंने दुखित होकर दिल में कहा कि शाहिदा और जिमवाली दोनों के भाग्य फूट गये! शाहिदा तो फिर भी शायद बच जाय, परन्तु जिमवाली के लिए मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि वह सर पटक-पटक कर जान दे देगी।

अब मैं अपने समाज की वर्तमान भयानक अवस्था पर विचार कर रही थीं। मैंने दिल में कहा,—"क्या उनको इसी पर अपनी शिक्षा और सभ्यता का दावा है। क्या नवीन सभ्यता के यही भयानक परिणाम हैं। क्या इसी भलमन-साहत पर नवीन सभ्यता के यह ठेकेदार अपने आदर्श की नीव रक्खेंगे?

इसमें अपराध किसका था? न जिमवाली का, न उनके भाई का, और न अत्याचारी नजमी का; बल्कि उस नवीन लहर का जिसकी चाल हमारे समाज को अन्धाधुन्ध बहाए लिए जा रही है। इस समय मेरे मानस पट में दो प्रकार की भावनायें थीं। शाहिदा का ब्याह और जिमवाली का शोक! मुझे अपने ब्याह के पहले की सारी मुसीबतें याद आ गईं। परन्तु इनमें और उनमें बड़ा अन्तर था। उनका परिणाम अच्छा हुआ। पर इनका? बस यही एक प्रश्न मेरे सामने था।

विदा के समय जो रोना पीटना होता है, वह सभी जानते हैं। परन्तु जब मैं शाहिदा से गले मिलकर अचेत हो गई, तो यह रोना-पीटना और अधिक हो गया। अतः शाहिदा इधर विदा हुई और उधर मैं बीमार पड़कर घर आई। मियाँ अबुल-हसन ऐसी अनमोल बीबी लेकर सीधे काश्मीर सिधारे। उसी दिन उसी गाड़ी से वह सीधे काश्मीर चल दिये।

एक सप्ताह तक मेरी अवस्था बहुत खराब रही। जब ज़रा रोग कम हुआ तो न दिल ठीक न तबियत ठिकाने। अपनी प्रियतम सहेलियों का उपवन इस प्रकार उजड़ गया, यह सोच कर मैं रह-रह कर रोती, साथ ही शाहिदा और जिमवाली के सुन्दर और पवित्र मुख मेरे नेत्रों के सम्मुख आ-आकर मुझे तड़पा जाते। मैं बहुत दिनों तक अपने कमरे में मुँह लपेटे अपनी सहेलियों की याद में बिकल रही।

!

मेरे लिए शाहिदा का और जिमवाली का अस्तित्व ही मानो समाप्त हो चुका था। जिमवाली का तो पता ही न चला कि उसको पृथ्वी खा गई या वह आकाश में उड़ गई। जीनत लखनऊ में रह गई और वास्तव में यहाँ तो वह अस्थाई थी। अब तो शायद उनके लौटने की आशा नहीं थी।

शाहिदा को विदा कराकर मिस्टर अबुलहसन काश्मीर ले गए। वहाँ जाकर उन्होंने वह ढङ्ग पकड़ा कि सुनकर मेरे दिल में नासूर पड़ गया। मैंने दो पत्र शाहिदा को लिखे; परन्तु एक का भी उत्तर न आया। एक और लिखा, तो शाहिदा का छोटा सा उत्तर आया "पत्र मिला। विस्तार पूर्वक फिर लिखूँगी।" इसके बाद फिर चुप्पी। मैंने फिर लिखा तो फिर यही उत्तर आया, "पत्र मिला। विस्तार से फिर उत्तर दूँगी।"

इससे साफ प्रकट था कि मिस्टर अबुलहसन ने उसकी ऐसी अवस्था कर रक्खी थी कि न तड़पने की इजाजत है न फरियाद की है।" शाहिदा को वह दिल का हाल क्यों लिखने देंगे। मैंने दिल में कहा कि वह कम्बख्त उसे मार कर ही चैन लेगा।

जब शाहिदा के कष्टों का विचार हो आता तो दिल मसोस कर रह जाती, नेत्र गीले हो जाते, दिल से एक दुख भरी आह निकलती कि ईश्वर की महिमा तो देखो कि जो हर समय पुष्प के समान खिली रहती थी और जिसकी नस-नस में शरारत, तेजी और मजाक भरा रहता था, उसको भाग्य चक्र ने इस प्रकार पीस कर मिट्टी कर दिया।

इस प्रकार के सोच के साथ २ मैं फिरोजा की उलझनों में भी पड़ी हुई थी। मिस्टर युसुफ के समान हठी मनुष्य भला देखने में काहे को आया होगा।

मिस्टर यूसुफ ने एक दिन मौलाना से पूछा—"आखिर आप कौन हैं? क्या आप सन्देश लानेवाले दूत हैं अथवा खुदाई फौजदार। और फिर कुछ मतलब भी तो मालूम हो कि जनाब किस हैसियत से और क्या फरमाते हैं?"

मौलाना बोले, "भाई मैं यह कहता हूँ कि उस बेचारी ने जो कुछ किया, वह मूर्खतावश और अनजाने में किया। उसको बहुत लज्जा और दुःख है।"

"आप को कैसे मालूम?"

"अपनी स्त्री द्वारा।"

"अच्छा तो फिर?"

"फिर यह कि एक तो आपने इतने कठोर वाक्य प्रयोग किये और दूसरे उस बेचारी की हार को भी आप नहीं स्वीकार करते।"

वह बोले—"यह गलत है। मैं मानता हूँ कि मैंने कठोर वाक्यों का प्रयोग किया; परन्तु वह बिलकुल स्वाभाविक था। आपको मालूम है कि उन्होंने मेरे लिए किस २ प्रकार के सभ्य वाक्य प्रयोग किये थे। परमात्मा को कोटिशः धन्यवाद है कि आकाश में थूका गले में आया। मुझे तब भी

खेद था और अब भी है। मैं उनकी क्षमा-याचना के लिए उनका आदर करता हूँ। अब और क्या करूँ, क्या अपना सर फोड़ डालूँ।"

मौलाना ने उनकी ओर देखा कि कितनी मूर्खतापूर्ण बातें कर रहे हैं। परन्तु फिर भी उन्होंने कहा—"फिर आपका क्या विचार है?" वह बोले—"मेरा विचार यह है कि वह एक अच्छी सूरत शकल की, बल्कि बहुत ही सुन्दर लड़की है; एक अत्यन्त भोली और पवित्र हृदय वाली।"

'तो फिर आप उनसे ब्याह करेंगे?'

उन्होंने पूछा, 'आप की क्या राय है?'

'मेरी राय है कि आप उनके यहाँ ब्याह का सन्देश भेजें।'

'सन्देश भेजूँ? ·····और वह फिर उसी प्रकार मेरी मिट्टी पलीद करें। मैंने अपने जी में, बिना किसी सांसारिक लोभ के केवल एक कर्तव्य पूर्ण किया है, और वह इस प्रकार नष्ट हो। शायद आप को मालूम नहीं कि किस प्रकार मैंने अपनी जान संकट में डाल दी थी।'

मौलाना बोले,—'मुझे सब मालूम है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि ऐसा नहीं होगा। आप सन्देश तो भेजें।'

"परन्तु इसका प्रमाण?"

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ।"

"क्षमा कीजिये·····मान लो, मैं विश्वास न करूँ तो क्या हर्ज है?"

"फिर आप जिस प्रकार कहें आपको इतमीनान कराया जा सकता है।"

"परन्तु यदि मैं ब्याह न करना चाहूँ तो?"

"शादी तो आप की होगी और अवश्य होगी, और आप करेंगे। अतः मेरी प्रार्थना पर यही न हो?"

"आप की प्रार्थना या और किसी की ? देखिये वही बातें तो आपको अविश्वासनीय बनाती हैं। किसकी प्रार्थना है कि मैं उनसे ब्याह करूँ ?"

"मेरी ! मेरी !! मेरी !!!" मौलाना तीव्र होकर बोले—"मेरी स्त्री की प्रार्थना पर।" "क्षमा कीजिएगा, आप और आपकी बेगम साहिबा की, दोनों की प्रार्थनाएँ बिल्कुल अस्वीकार। अब मालूम हुआ कि आप दूत नहीं, बल्कि खुदायी फौजदार हैं। महाशय आप हैं कौन ?"

मौलाना हँसकर बोले, "मैं खुदाई फौजदार नहीं हूँ, बल्कि ईश्वर जानता है कि मैं उनका दूत हूँ।"

उन्होंने उत्तर दिया—"और मैं, दूत तो बड़ी चीज है, डाकिया के अस्तित्व को भी अस्वीकार करने की चिन्ता में हूँ। क्या वह खुद लिखना नहीं जानतीं ? यदि उन्हें मुझसे कुछ कहना सुनना अथवा मुझे सन्देश भेजना है, तो वही श्रीगणेश करें। लेकिन मुझे खेद है कि मुझे कोई सन्देश उन्हें नहीं देना है। न ब्याह का, न वैसा।" मौलाना बोले—"तो फिर आप प्रतिज्ञा करते हैं।"

"किस बात की।"

"कि आप ब्याह का सन्देश देंगे।"

"मैं नहीं दूँगा। न मैं चाहता हूँ। उनकी इच्छा हो, तो वह सन्देश भेजें। अभी-अभी तो सब कुछ समझा दिया और आप फिर भी सब भूल गये।"

"अरे भाई, साफ-साफ बात है कि यदि उनकी इच्छा हो कि उनसे ब्याह करूँ, बल्कि मैंने गलत कहा, मेरा आशय यह है कि यदि वह चाहती हों कि वह मुझसे ब्याह करें तो वह स्वयम् मेरे पास अपने हाथ से पत्र लिखकर सन्देश भेजें।" मौलाना बोले "यह आपकी ज्यादती है। आप एक भलेमानुस

होकर एक मुसलमान लड़की से इस प्रकार की आशा कर सकते हैं।"

वह बोले—"मैं इसलिए आशा कर सकता हूँ कि सबसे प्रथम मुसलिम महिला ने स्वयम् सन्देश भेजकर अपना ब्याह किया था। कोई कारण नहीं है जो वर्तमान समय की मुसलिम कन्यायें अपना पद उनसे भी अधिक समझें। यदि आवश्यकता पड़ जाय तो क्या हर्ज है। उन्हें यदि आवश्यकता हो, तो ऐसा करें नहीं तो जाने दें। जो उनको निर्लज्ज समझे वह महा नीच है। वह मुसलमान नहीं। रह गया उनके सन्देश को सो उसे स्वीकार करना, तो वह मेरा काम है। अपने कामों में मैं स्वतन्त्र हूँ। जैसा जी चाहेगा वैसा करूँगा।"

मौलाना हार कर लौटने लगे कि यूसुफ साहब दौड़े और पुकार कर बोले "अजी महाशय, यह बात अच्छी तरह विदित रहे कि मैं उनकी लिखावट अच्छी तरह पहचानता हूँ।"

मैंने मौलाना से यह बातें सुनकर यह बात निश्चय रूप से जान ली कि यह स्त्री जाति का तिरस्कार है। फीरोजा यह बात कदापि नहीं चाहती। वह धोखे में है। वह ऐसा तिरस्कार कदापि नहीं सहन कर सकती। वह इससे अधिक और कुछ नहीं चाहती कि यदि ऐसा होता, तो अच्छा था। इससे अधिक और दूसरी बातों का उससे सम्बन्ध जोड़ना केवल उसका ही नहीं, बल्कि स्त्री-मात्र का तिरस्कार है। उसके जीवन का लक्ष्य यदि कुछ है, तो केवल मर्यादा, मान और लज्जा। मुझे यूसुफ साहब पर अत्यन्त गुस्सा आया। मैंने निश्चय कर लिया कि सम्पूर्ण हाल फीरोजा को लिख दूँगी।

परन्तु मौलाना ने मुझसे कहा कि, 'यूसुफ साहब के विचार बिल्कुल ठीक हैं। तुम्हें क्या मालूम कि उनके साथ कैसा व्यवहार किया गया है। जब पहले पुरुष का तिरस्कार हुआ

तो अब स्त्री का भी होना चाहिए। कभी नाव गाड़ी पर, तो कभी गाड़ी नाव पर। सचमुच मेरा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ जब उन्होंने खूब खरी-खोटी सुनाई कि लाख बार उसकी इच्छा हो, तो सन्देश देती। फिर नहीं तो वह अपने घर खुश और वे अपने घर।"

न्याय की बात यह है कि थोड़ी-सी मेरी भी गलती थी, जो मैंने फीरोजा की ओर से दिल में सोचकर तय कर लिया था कि अब सिवाय इसके कोई उपाय ही नहीं है। परन्तु यदि यथार्थ पूछा जाय तो इसके अतिरिक्त कुछ न था कि फीरोजा के ऊपर यूसुफ़ साहब की बहादुरी और सेवा का इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि उसको स्मरण करके उसका दुखित होना आवश्यक था। फिर घटना भी नई ही थी।

अतः मैंने जलकर और नमक मिर्च लगाकर फीरोजा को जब पत्र लिखा, तो उसने वही उत्तर दिया जिसकी मुझे पूर्ण आशा थी। बड़े कटु शब्दों में उसने लिखा, "परमात्मा न करें कि मैं किसी की खुशामद करती फिरूँ। यह सच है कि युसुफ साहब ने जो उपकार मेरे साथ किया है, उसका बदला कभी नहीं पूरा हो सकता! और यदि उनके साथ मेरा ब्याह हो जाता, तो मेरे अहोभाग्य थे। परन्तु इसके यह अर्थ तुमने या उन्होंने किधर से ले लिए कि मैं उनके लिए पागल हो रही हूँ। हाँ, यदि पागल हो रही हूँ, तो केवल इस कारण कि किसी प्रकार मैं अपनी कृतज्ञता उनसे प्रगट कर सकूँ। उनको अधिकार है कि जो जी में आये भला बुरा कहें। फिर भी मेरे ऊपर कोई ज्यादती न होगी।

मेरी अवस्था अधिक-से-अधिक अब यह है, और यदि मैं भलीमानुस हूँ, तो होना भी चाहिये और वह यह कि मुझे चाहे वह कुछ भी कहें, उनका कहना बिल्कुल ठीक है। मेरा

अपमान करने का भी उन्हें अधिकार है। वे मुझे तिरस्कार की दृष्टि से देखें तो ठीक है। और फिर इन सब बातों के पश्चात् भी यदि वह मेरे साथ ब्याह करने का सन्देश भेजें तो मेरी हिम्मत नहीं कि इनकार कर सकूँ। इससे अधिक यदि तुम कुछ और समझो, तो तुम्हारा प्रेम है और यदि उनके जूतों को सर और आँखों पर रखना अपनी मर्यादा समझती हूँ, तो यह नहीं हो सकता कि मैं अपनी स्त्रीत्व, अपनी मर्यादा और सभ्यता को खो बैठूँ!

पत्र पढ़कर मेरा चित्त प्रसन्न हो गया और मौलाना को भी मालूम हो गया कि मामले का क्या रङ्ग है। वह कुछ दुखित से हो गये और होना भी चाहिए। क्योंकि वह यह भी तो विचार करते होंगे कि केवल मेरे कारण फीरोजा ने यूसुफ ऐसे पुरुष को ठुकरा दिया था। साथ ही वह यह भी जानते थे कि फीरोजा दब जायगी। उन्होंने कहा,—"यदि वह स्वयम् पत्र लिख दे, तो क्या आपत्ति है।" मैंने उत्तर दिया,—"वह कदापि नहीं लिख सकती। परन्तु ब्याह अवश्य होना चाहिए।"

बहुत शीघ्र दोनों से निराशा हो गई। न यह दबे और न वह। देखा जाय तो दोनों ठीक थे। यदि यूसुफ को अपने कार्य पर घमण्ड था, तो फीरोजा की उससे ब्याह की इच्छा रखनेवाला बड़ी ही नम्रता से उसके पास ब्याह करने की प्रार्थना उपस्थित करे।

हृदय की बात तो ईश्वर जाने, परन्तु बाहर से दोनों अपनी अपनी मर्यादा और पोजीशन पर अटल थे। परन्तु एक मजे की बात यह थी कि बहन फीरोजा, उस सम्बन्ध को तोड़ने की चिन्ता में लगी हुई थी, जिसको पक्का करने और निकाह में परिणत करने वह बम्बई दौड़ी थी। यह क्यों? परमात्मा

जाने। मौलाना कहते थे, "तुम देख लेना कि फीरोजा को हार माननी पड़ेगी।"

अब एक और दिल्लगी सुनिए। एक दिन का जिक्र है कि दरवाजों और शीशों पर रङ्ग करने के लिए मैंने सफेदा और दूसरे रङ्ग तैयार किये थे। मौलाना मजाक में कह रहे थे। "यह क्या बात है कि तुममें (कोलतार में) कोई रङ्ग नहीं मिलाया जा सकता।"

यह उनका अत्यन्त मनोरञ्जक वाक्य था। एक मर्तबा मुझसे पूछा—"तुम्हारा डब्बा कहाँ गया?" उनका तात्पर्य कोलतार के डिब्बे से था। उस समय मैं बड़े ध्यान से सफेदा हरा रङ्ग फेंट रही थी कि इतने में डाकिया आया और मेरे नाम का एक बड़ा-सा पत्र लाया। पत्र देखते ही मैं जान गई कि किसका है। पत्र बहन शाहिदा का था। सहसा मेरे मुख से एक ठण्ढी साँस के साथ यह शब्द निकले, "बेचारी शाहिदा का भाग्य फूट गया।"

यह कह कर और अपना मुख गम्भीर बना कर मैंने पत्र खोला, क्योंकि मैं जानती थी कि इस पत्र में दुःख भरी कहानी होगी, जो मुझे घंटों रुलाएगी पर पत्र खोल कर जो पढ़ना आरम्भ किया, तो तुरन्त ही रुकना पड़ा। मेरे मुख से निकला, 'हैं!' मौलाना की भी आँखें फटी की फटी रह गईं! उन्होंने भी कहा—"धोखेबाज कहीं का!" आप विश्वास करें कि पत्र निम्नलिखित था :—

मेरी प्यारी बहन,

तुम्हारे पत्र पर पत्र आये। मैंने उनके उत्तर दिये; परन्तु सच पूछो तो एक का भी उत्तर नहीं दिया। क्योंकि उनमें इसके अतिरिक्त कुछ न लिखा कि तुम्हारा पत्र मिला, विस्तार-पूर्वक फिर लिखूँगी। प्रतिदिन यही कहती थी कि कल लिखूँगी।

परन्तु यह 'कल' भी विचित्र ही कल था कि आज आया। अब इसका कारण क्या बताऊँ। यथार्थ में इससे कहीं पहले पत्र लिख चुकी होती, न जाने कितनी मर्तबा तुमको पत्र लिखने बैठी, परन्तु यही समझ में न आया कि लिखूँ तो कैसे लिखूँ। अपनी मूर्खता का ध्यान आते ही कुछ लिखा ही न जाता था। यह सोचकर कि यदि सच-सच लिखती हूँ तो न जाने तुम मेरा क्या हाल करोगी, और भाई मौलाना क्या कहेंगे। बस इसी भय से अब तक पत्र न लिख सकी। परन्तु यह सोचकर कि आखिर एक दिन लिखना ही है, हिम्मत करके लिखती हूँ। परन्तु देखो नाराज न होना, और न मेरी दिल्लगी उड़ाना।

बहन तुमने लिखा था कि तुम विस्तार-पूर्वक सम्पूर्ण वृतान्त लिखो। अब कान खोल कर अच्छी तरह सुन लो। परन्तु देखो, मेरी दिल्लगी न उड़ाना। बहन, यथार्थ बात यह है कि हम और तुम दोनों मूर्ख थीं। अबुल हसन साहब तो बहुत ही भले आदमी हैं। उनसे अच्छा आदमी तो संसार में मिलना कठिन क्या, बल्कि असम्भव है। उनसे अधिक योग्य पति तो मुझे दिया लेकर ढूँढ़ने पर भी न मिलता। फिर इसके अतिरिक्त उनसे अधिक दिलचस्प और जिन्दादिल आदमी तो संसार में दो ही एक होंगे। फिर प्रेम का यह हाल कि बहन सच मानना कि इनसे अधिक अपनी पत्नी को चाहनेवाला और प्रेम करने वाला पति, मैंने तो सुना नहीं। उनको बस प्रेमासक्त समझो। इनसे अधिक सच्चा प्रेम रखने वाला पति, मेरी समझ में नहीं आता कि मेरे अतिरिक्त किसी दूसरी लड़की को भी मिला है। शायद तुम्हें भी नहीं। या मिला है?

यह सच्चे प्रेम का जीवित चित्र है जो एक पति को अपनी पत्नी की ओर होना चाहिए। बहन, तुम विश्वास करो कि मेरी बुद्धि ही नहीं काम करती कि उनके बिना मेरा जीवन किस

प्रकार सम्भव हो सकता है। एक दिन तो बहुत होता है। यदि एक घण्टे के लिए वह कहीं और होते हैं, तो मेरे लिए यह वियोग प्रलय समान हो जाता है।

यह सब क्यों? केवल इस कारण कि वह प्रेम का अंश मात्र भी मैंने कहीं नहीं देखा जो उनको मुझसे है।

अब जो मैं अपनी बीती हुई घटनाओं पर विचार करती हूँ कि किस प्रकार मैं हीरा को ठुकरा रही थी, तो विश्वास मानो कि मैं काँप जाती हूँ। हे परमात्मा, यदि मुझे यही पति न मिलते, तो मैं क्या करती। किस प्रकार मेरा जीवन अकारथ हो जाता। बल्कि मेरा इस संसार में आना ही अकारथ होता।

ईश्वर को कोटि-कोटि धन्यवाद है कि लोगों ने जबरदस्ती पकड़ कर मेरा ब्याह करा दिया और उसने हमारा और तुम्हारा सबका परिश्रम असफल किया। अरी कम्बख्त, कहीं जो सचमुच मेरा ब्याह न हुआ होता तो गजब ही हो गया होता। मेरे भाग्य जाग उठे, जो परमात्मा की कृपा से मुझे इतना प्रेम करने वाला आसक्त, बुद्धिमान, योग्य और सुशिक्षित पति मिला। लेखनी में शक्ति नहीं है कि मेरे हार्दिक भावों को प्रकट करके उनकी बड़ाई लिख सके। सारांश यह कि अबुलहसन साहब बहुत अच्छे निकले। मुझ कम्बख्त को क्या पता था। यदि मैं यह बात जानती तो आकाश पाताल एक काहे को कर देती। अतः मेरा आशय यह है कि मैं अपने पति से इतना प्रसन्न हूँ कि यदि मेरा बल चलता, तो मैं उसको दिल्ली का बादशाह बना देती। बिना पति के संसार मुझे सूना मालूम होता है। तुम तो खैर जो कुछ कहोगी वह मैं जानती हूँ। परन्तु बहन खातून क्या कहेंगी। उन्होंने मेरे साथ वह उपकार किया है कि मैं कभी न भूलूँगी।

हाँ बहन, एक और बात है। तुमने तो अबुलहसन साहब

को देखा था। अब वह अबुलहसन साहब नहीं हैं। न जाने वह पुराना अचकन और कोट कहाँ गया। यहाँ तो उनके खर्च का यह हाल है कि मेरे संकेत मात्र पर सैकड़ों रुपये लुटते नजर आते हैं। मेरे ख्याल में काश्मीर भर में शायद ही कोई उनसे अधिक सुन्दर और अच्छा वस्त्रधारी हो·····इत्यादि २।"

मैंने कहा—"अरी कम्बख्त तेरा भला हो, देखो तो कम्बख्त ने किस तरह अपने पीछे मेरी अवस्था खराब की, कितनी परेशान हुई। विषपान कर रही थी, छत पर से कूद रही थी, जान दिये देती थी और अब यह लिखती है। ऐसी खबर लूँगी कि अच्छी तरह याद करेगी।"

मैं आप से ठीक कहती हूँ कि इस पत्र के बीस दिन बाद शाहिदा आई और आते ही मारी गई। दौड़ कर मुझसे लपट गई और मैंने कम्बख्त को अच्छी तरह मारा।

अबुलहसन साहब बोले—"बहन तुम देख लो। मैं कहता न था कि मोटी हो जायँगी।"

वास्तव में शाहिदा स्वास्थ्य और प्रसन्नता की प्रतिमूर्ति बनी हुई थी। मैंने कहा कि, "कम्बख्त तू तो कहती थी कि मुझे तपेदिक हो जायगा, परन्तु तू दुगुनी मोटी हो गई।"

मेरी प्रसन्नता का अनुमान लगाना सहज नहीं है। मैंने उसको रात को भी न जाने दिया। बातों में इतनी लीन हो गई कि वह समाप्त ही न होती थी। जिमवाली की बातों से लेकर फीरोजा तक की सारी बातें सुना डाली। यहाँ फीरोजा की बातों से विशेष सम्बन्ध है। शाहिदा ने कहा, "बहन तनिक उन डाक्टरनी को तो बुलाओ, जरा हम भी तो देखें कि वह कैसी हैं। और उनके यूसुफ को भी बुलाओ।"

उसने अपने ऊपर स्वयं यह भार लिया कि यदि दोनों का गठबंधन न करा दिया तो शाहिदा नाम नहीं।

सारांश यह कि फिरोजा को मैंने तार दिया। पत्र पहले ही लिख चुकी थी कि शाहिदा अयेगी तो तुम्हें तार देकर बुला-ऊँगी। वह चली आई और शाहिदा ने उनसे थोड़ी-सी दिल्लगी करने के पश्चात् कहा, "लो बहन, तुम मँगाओ लड्डू। अभी हम तुम्हारा ब्याह रचाये देती हैं। परन्तु सावधान जो तुम दबीं। उसे गरज पड़ेगी तो सौ दफा तुम्हारी जूती पर नाक रखेगा। और सुनो! वह कौन महाशय हैं जो बहकी-बहकी बातें करते हैं। तनिक बुलवाओ तो उन्हें।"

यह कहकर मौलाना से कहा गया कि किसी तरह यूसुफ साहब को इस प्रकार बुला लाओ कि उन्हें पता न चलने पाए कि क्यों बुलाया है। बस किसी बहाने से उन्हें यहाँ बुला लाओ। फिर उन्हें समझ लूँगी। जब मैंने और मौलाना ने शाहिदा से यह पूछा कि उन्हें बुलाकर क्या करोगी, तो उसने उत्तर दिया "अब मैं वह शाहिदा नहीं हूँ। खुलेबन्दी काश्मीर और पञ्जाब की हवा खाकर आई हूँ। ऐसे-ऐसे छोकड़े तो मेरी कोट के जेब में पड़े रहते हैं। जरा उन्हें बुलाकर ठीक करूँगी। मुझे जरा यह देखना है कि वह मुझसे कैसी लाजिक (Logic) बघारते हैं।

दूसरे रोज मौलाना एक और दूसरे महाशय की सहायता से यूसुफ साहब को अनजान में ले आये। उन महाशय को वास्तविक घटना बतला कर सरका दिया और उन्होंने यूसुफ साहब से कहा कि अभी मैं आया। मैं यूसुफ साहब के सम्मुख नहीं होती थी। लेकिन बैठने का एक ही कमरा था। फीरोजा को, यह कह कर कि कोई मिलने वाले आये हैं, मैं पहले ही ले गई थी। मौलाना और युसुफ साहब बैठे तातें कर रहे थे। किसी बहाने से मौलाना अभी आता हूँ, कहकर यूसुफ साहब को कमरा में अकेला छोड़ कर लपक कर भीतर आये

और मुझसे कहा कि अब यूसुफ साहब अकेले बैठे हैं। मैंने शाहिदा से कहा। शाहिदा उठी और मुझे संकेत करके फीरोजा से कहा—"बहन डाक्टरनी, चलो कमरे में चलें। अब वहाँ कोई नहीं है।" पीछे के कमरे में आकर शाहिदा ने दिल्लगी में मेरे दोनों हाथ पीछे से पकड़ कर दिल्लगी-ही-दिल्लगी में रेलना शुरू किया और सर से अलग ढकेला। शाहिदा के इस कार्य पर मुस्कुराती फीरोजा पीछे आ रही थी। मैंने जो शाहिदा को झटका तो उसने "वेल डाक्टरनी" कह कर फीरोज को रेलना शुरू किया। फीरोजा कुलबुलाती, हँसती, तेजी से चली। पलक मारते मैं बरामदा पार हुई और कमरे के द्वार पर पहुँचते ही शाहिदा ने फीरोजा को इस जोर से रेल दिया कि देखते-देखते उनको यूसुफ साहब के ऊपर या उनकी कुर्सी पर गिरना पड़ा। उसके सम्हलने के पूर्व ही शाहिदा सामने का द्वार बन्द करके बाहर से कुण्डी लगा चुकी थी, और मैं अपनी तरफ से बन्द कर चुकी थी।

दूसरे बरामदे से होकर शाहिदा आँखें फाड़े लपकी हुई आई। मैंने कहा—"अब क्या होगा?"

शाहिदा ने कहा—"अब यह होगा कि दोनों की बुद्धि ठिकाने आ जायगी, और क्या होगा।"

इतने में फीरोजा ने अँगुली से दरवाजे को अन्दर से बजाया। इसके उत्तर में शाहिदा दाँतों तले उँगली दाब कर और मेरा हाथ पकड़ कर भीतर ले गई और कहने लगी—"इसी में दोनों को शाम तक बन्द रक्खो।"

पूरे दो घण्टे बाद शाहिदा ने चुपके से द्वार खोला तो फीरोजा कुरसी पर से सीधी उठकर आई। वह अत्यन्त गम्भीर थीं और उनके मुख पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

शाहिदा ने उनसे पूछा, "कहो बहन डाक्टरनी, तुम्हारे रोगी का क्या हाल है।"

यह पूछना ही था कि एक हल्की सी मुस्कुराहट फीरोजा के मुख पर आई और शाहिदा बोली—"निगोड़े को विष दे दिया ?"

वह बिल्कुल चुप होकर उस सन्नाटे में भीतर चली गई और दादी अम्मा से बातें करने लगीं। अब शाहिदा ने बड़े बेतकल्लुफी से भीतर झाँक कर देखा। यूसुफ साहब से जब उसकी चार नजर हुईं तो कम्बख्त बोली—"कहिये महाशय, इलाज करा चुके ?"

उधर से जाकर शाहिदा ने ही द्वार खोला। मौलाना घर में छिपे बैठे थे कि यूसुफ साहब का सामना न हो। कमरा खुलते ही यूसुफ साहब सीधे भागे।

अब यह बात बताने की नहीं कि वहाँ क्या बातें हुईं। फीरोजा शाम ही को चली गई। परन्तु हाँ! इसका परिणाम यह निकला कि युसुफ साहब की कमान ढीली होगई। दो दिन में छः मरतबा दौड़कर आए और बीसियों बार फेरा लगाते रहे। दो-तीन तार अलग घर पर दे चुके थे। सारांश यह कि वह हारे और झख मारे। फीरोजा ने केवल इतना बताया कि उन्होंने अपनी बातों के लिये स्वयम् उल्टे मुझसे क्षमा माँगी।

यह क्यों और कैसे? इसका जितना पूछना बेकार है उससे अधिक बताना। बस इतना ही बता देना पर्याप्त होगा कि जब उन्होंने खुद ब्याह के लिये प्रार्थना की और खुद ही उनसे क्षमा-याचना की, तब कहीं जाकर छः मास की उम्मेदवारी और बीसियों खुशामदें करने के बाद डाक्टरनी उनके हत्थे चढ़ा। इसका जिक्र यहां बेकार है। शायद फिर कभी।

फीरोजा की घटना को कोई पंद्रह दिन हुए होंगे। संध्या का समय था और मैं बरामदे के सामने अपने चबूतरे पर कुरसी पर बैठी मजे में दूसरी कुर्सी पर पाँव रखे हुए पढ़ रही थी, कि सहसा किसी ने पीछे से आकर एकदं मेरी आँखें बन्द कर लीं।

मैं समझी, शायद शाहिदा है और मैंने कहा—"चल मसखरी।" यह कहकर मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और नीचे से ऊपर तक हाथ दौड़ा कर देखा, तो चूड़ियाँ न मालूम पड़ीं। शाहिदा के हाथों में चूड़ियाँ थीं। अब हालांकि मैं अपनी आँखें छुड़ा सकती थी; परन्तु मैंने स्वयं हँसकर कहा,—"ठहरो मैं बताता हूँ।" आह! आज बहन खातून को दिल्लगी सूझी है जो उस तरफ उतरी हैं और भीतर से इस तरह आई हैं। अतः मैंने इतमीनान करके कहा—"क्यों बहन खातून यह चूड़ियाँ आज क्यों उतार दी हैं।" मेरे इस कहने पर कुछ दबा हुई हँसी-सी सुनाई दी और एक मर्दानी आवाज में किसी ने कहा—"बता दो तो दस रुपया इनाम।"

बौखला कर मैंने हाथ हटाना चाहा, परन्तु वहाँ मेरी आखों को और अच्छी तरह दबाया और पूर्व इसके कि मैं हाथ हटा सकूँ मेरे सिर पर मेजपोश डाल दिया।

"कौन है?" बिगड़कर और हाथ छुड़ा कर जो मैंने मेज-पोश फेंका तो मैं सन्न रह गई। जिमवाली का सुन्दर मुख एक ओर गुलाब के फूल की तरह खिल कर रह गया, तो दूसरी ओर मैं सूरत शकल ही से पहिचान गई कि 'नजमी'। इसके पूर्व कि मैं सँभल पाऊँ, जिमवाली मारे प्रेम के मुझसे लिपट गई। उसने बड़े प्रेम और वेग से मुझे भींच डाला।

मुझे छोड़ा तो मेरे विस्मित और झेंपे हुये मुख को उसने बड़े ध्यान से देखा। मैं अजीब चक्कर में थी और कुछ हत-बुद्धि सी हो रही थी। उसने मेरा हाथ लेकर नजमी से परिचय कराया और कहा—"जिम।"

मुख से तो मैंने कुछ न कहा परन्तु मेरी आँखों ने सब कुछ कह दिया तो वह बोले--"घबराइए मत, अच्छा नजमी हो सही।"

"ओहो ! अब मैं समझी" मैंने कहा—"भाई बैठो।"

दोनों को मैंने अच्छी तरह बिठाया। सिर से पैर तक जिमवाली को देखा, और फिर नजमी अथवा जिम को देखा। सबसे पहिले मैंने यही प्रश्न किया कि, 'मेरी समझ में कुछ मामला नहीं आया कि.....'

"कि उन्हें इस प्रकार क्यों पकड़ ले गया था ? यही पूछती हैं न।"

मैंने कहा, "हाँ ! आखिर यह विचित्र ढंग क्यों पसन्द किया गया ?"

'मुझे हैरान करने के लिए' जिमवाली बोलीं। जिम ने कहा—'फिर आप ही बताइये कि दूसरा ढंग कौन था। लाख इनसे कहा कि मैं ही जिम हूँ, परन्तु यह न मानीं तो क्या करूँ। और फिर आप बीती तो आप स्वयं इन्हीं से पूछिएगा, इन्होंने मुझे दिक किया है।'

जिमवाली ने जिम से कहा—"अब आप तो सीधे घर जाइये और मैं अब कल सुबह आऊँगी। खाना जी चाहे यहाँ खा जाइएगा, जी चाहे वहाँ।"

अतः जिम को बिदा करके अब मैं इतमीनान से बैठी, और मैंने कहा कि "बहन, अब तू जरा अपनी कहानी तो सुना।"

जिमवाली ने तो अपनी सम्पूर्ण कहानी आदि से अन्त तक सुनाई परन्तु यहाँ उसके दोहराने की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि जिमवाली के भाई की आज्ञा से जिम ने यह सब कुछ रूप बदला था और वह भला आदमी सब देखता रहा। जिमवाली ने इस प्रकार अपनी कहानी सुनाई—"मुझे मोटर में डालकर और नजमी के वेश पकड़कर सीधे दिल्ली पहुँचे। वहाँ पहिले ही से एक बंगला ले रक्खा था। वहाँ जाकर मुझे उतारा। ईश्वर ही जानता है कि

मैंने किस-किस प्रकार हाथ जोड़े, अनुनय-विनय और कितना रोई। फिर वहाँ दिल्ली में पहुँच कर मुझे मार डालने की धमकी दी। कभी चाकू दिखाए, कभी तलवार दिखाई; परन्तु मैं अपनी हठ पर अटल रही। जब मुझे अपने निश्चय पर इस कदर दृढ़ पाया तो मुझे एक कमरे में बन्द कर दिया और बन्द करने के समय मेरे हाथ में यह पत्र दे दिया:—"पागल लड़की जरा ट्रङ्क तो खोलकर देख। यह सब कुछ और किससे? अच्छा, सच बताना कैसे मिला हूँ?"

बस इतना ही लिखा था। मैं उनकी लिखावट पहचानती थी और इस पत्र को देखकर धक-से हो गई। दौड़ कर ट्रंक खोला तो ऊपर ही पासपोर्ट रक्खा था। उसको जो खोल कर देखा, तो हाथों में कँपकँपी सी आ गई। बस बहन, मैं वर्णन नहीं कर सकती कि मेरी क्या अवस्था हुई। नजमी और जिम एक ही हैं। पासपोर्ट को अच्छी तरह देखा तो सोलह आना तसदीक हो गई।

पासपोर्ट के पास एक और पत्र मिला जिसमें इस विचित्र प्रकार से भेंट करने के कारण लिखे थे। यह भी लिखा था कि तुम्हारे भाई से पूछ लिया था, फिर अपना और जीनत का जो दूर का सम्बन्ध था उसका विस्तार से वर्णन था और यह कि किस प्रकार जीनत को इस काम में भेदिया बनाया था। मेरे पुराने पत्रों का हवाला भी दिया था।

मैं इन्हीं विचित्र विचारों में लीन थी कि कमरा खुला। मैं मारे लज्जा के झुक-सी गई। चुप-की-चुप रह गई। उन्होंने बैठ कर मुझे विस्तार के साथ समझाया कि किस तरह तुमको बेवकूफ बनाया। जब उन्होंने कहा कि मैं अपना चित्र भी तो इसी कारण से नहीं भेजता था, तब सारी बातें मेरी समझ में आ गईं। इसके बाद फिर मुझे अपना सार्टीफिकट दिखाया, जो विलायत में मिला था। कुछ पदक भी दिखाये। सारांश यह कि सैकड़ों प्रमाण दे डाले!

इसके एक सप्ताह बाद का हाल सुनो। मुझसे कहने लगे कि अब तुम मेरी पत्नी तो हो ही गई हो, लाओ अब तुमको वास्तविक बातें बतायें।

मैंने कहा—"वह क्या ?"

वे बोले—"हम वास्तव में जिम-विम कुछ नहीं हैं। हम तो वाकई नज़मी हैं।"

मैंने हँस कर कहा, 'हुआ करो, मुझे मालूम है।'

फिर वे कहने लगे—"अरी लड़की, मैंने बड़ी मुश्किल से जिम को पचास हजार रुपये देकर तुमको लिया है। तुम्हें तो मैं पारसाल ही देख गया था। बड़ी मुश्किल से जिम ने तुम्हारे सारे पत्र इत्यादि दिए हैं।"

मैं मुस्करा रही थी। वे फिर बोले, 'देखो अब जो होना था हो चुका। जिम ने तुम्हें छोड़ ही दिया। मैं तुम्हें सब हाल बताता हूँ।'

यह कह कर उठे और एक दूसरा पासपोर्ट बिल्कुल वैसा ही मेरे सामने डाल दिया। यह नजमी के नाम से था और चित्र भी उन्हीं का। केवल नाम में अन्तर था।

अब मैं जरा चकराई तो बोले, 'क्षमा करो, अब जो कुछ होना था सो हो चुका, अब मुझसे निकाह और कर लो।'

मैंने उनके मुख को बड़े ध्यान से देखा, और इसे दिल्लगी समझ कर, मुस्करा कर कहा—'जाइये भी! और आपके पत्र और आपकी लिखावट ?'

'मुझे यथार्थ मे ध्यान ही न था कि उन्होंने कभी मेरे सामने बैठ कर नहीं लिखा है। वह बोले 'हाँ, ठीक कहती हो यह देखो मेरी लिखावट। मैं लिखता हूँ।' यह कहकर उन्होंने लिखा और कहा—'अब तुम्हें कुछ याद पड़ा कि उस दिन जीनत के यहाँ जो मैंने लिखा था, वह यह पत्र है या जिम का पत्र है।'

मैंने पूछा—'और वह लिखावट जो उस दिन ट्रङ्क में मिली थी ?'

"वह तो जिम से लिखवा लाया था। पचास हजार रुपये

काहे को दिए हैं। और फिर तुम्हें अपने भाई को पत्र नहीं लिखने देता हूँ। यह देखो, सारे-के-सारे पत्र जो तुमने मुझे बीते सप्ताह में लिखे थे, वह यह रहे। मैंने एक भी नहीं डालने दिया।" यह कह कर सब-के-सब पत्र उन्होंने मेरे सामने डाल दिये। "फिर तुम्हारी समझ में यह भी न आया कि आखिर मैं तो तुम्हें पकड़ कर लाया हूँ। जिम को भला इसकी क्या आवश्यकता था।"

यह कह कर उन्होंने इस प्रकार अपना मुख गम्भीर बनाया कि मैं डर कर काँप गई। मैंने हाथ जोड़ कर कहा—"परमात्मा के वास्ते मुझे परेशान न करो। आखिर क्यों दिल्लगी करते हो।"

मेरा यह कहना था कि वह और दूसरे प्रमाण देने लगे। उन्होंने अनेक पत्र खोल कर दिखाये जिनमें इङ्गलिस्तान की मुहरें थीं। वे वहीं के थे। पता पर नजमी लिखा हुआ था और जिम के हाथ के पत्र थे। मैंने पहला ही पत्र जो देखा और पढ़ा उसमें जिम ने मेरे बारे में पचास हजार रुपये का जिक्र लिखा था और यह भी शर्त लिखी थी कि सारे पत्र दे दूँगा और जो पत्र लिखवाओगे सब लिख दूँगा।

मुझे नहीं मालूम कि मेरी क्या अवस्था हुई। मुझे चक्कर सा आता मालूम हुआ। कमरा घूमता दिखाई दिया और मैं वहाँ अचेत होकर गिर पड़ी।

जब मुझे चेत हुआ तो क्या देखती हूँ कि झुके हुए मुझे देख रहे हैं और मुस्कुरा रहे हैं। मेरे चेहरे पर बल पड़ गये। मैं कुछ कहने ही वाली थी कि बड़े प्रेम से हँस कर बोले,—"जिम की दीवानी। मैं जिम ही हूँ। जरा उठ, मैं अभी तुझे सब बताता हूँ।"

मैं एक-दम से प्रसन्नता से विह्वल हो गई। दिल में कहा कि परमात्मा करे यही वास्तविक जिम हों। उन्होंने सहारा दे कर मुझे उठाया।

अब उन्होंने भाईजान के वे पत्र दिखाने शुरू किये जो उन्होंने इस प्रस्ताव के बारे में लिखे थे। उन्होंने सलाह दी थी कि तुम्हारा यह प्रस्ताव कि तुम अपनी स्त्री से इस प्रकार भेष बदल कर मिलो, तुम्हारी राय में ठीक हो तो हो, परन्तु मेरी राय में यह बात ठीक नहीं है। आगे तुम्हें अधिकार है कि जैसा चाहो करो। फिर एक दूसरा पत्र और दिखाया। उसमें भी यही लिखा था। अंत में उसमें यह भी साफ तौर से लिखा था कि स्त्री तुम्हारी है, तुम्हें हर प्रकार का अधिकार है। अब मैं फिर उसी प्रकार आनन्द-विभोर हो गई। बेहोशी का सदमा मुझे मालूम ही न हुआ। घंटे भर बाद ही फिर बिल्कुल दुरुस्त हो गई। शाम को वे बोले—"हमने देखा कि तू मरी जा रही है। इस कारण लाचार होकर तुझे उल्टे-सीधे खत दिखा कर राजी कर लिया। नहीं तो हम तो शर्तिया नजमी हैं। अरा मूर्ख, तूने यह न देखा कि वह पत्र तो जिम को लिखे गये थे, प्रस्ताव अवश्य जिम का था; परन्तु उसे रुपये देकर हमने यह सब खरीद लिये। हमारा ही यह सब काम है।"

अब मैं फिर चकराई, तो एक-दो और प्रमाण दिये। मैं घबड़ा उठी तो फिर मुझसे कहा,—"बड़ी मूर्ख है, अरे मैं ही तो जिम हूँ।" मैंने कहा कि मेरी शङ्का समाधान कर दो, तो कहा कि सुबह कर देंगे।

बहन, मैं क्या बताऊँ कि मुझे कैसा दिक किया है। सुबह साबित कर देते हैं कि जिम हैं और शाम को फिर नजमी। यह तमाम बातें पत्रों और लिखावट के आधार पर प्रमाणित करते हैं। अन्त में मैंने उनसे कुछ लिखवाया तो लिखावट जिम की सी थी। जब मैंने लिखावट देख ली; तब मुझे विश्वास हुआ। परन्तु फिर दूसरे दिन अनेक प्रकार से यह प्रमाणित कर दिया कि मेरी उनकी लिखावट एक-सी है। मैंने उनके ऐसी लिखावट लिखने में बड़ा परिश्रम किया है और यदि तुम ध्यान से देखो तो अंतर मालूम हो जायगा। दिन भर मुझे लिखावट की

जाँच करने के तरीके बतलाए और फिर एक दिन यह भी प्रमाणित कर दिया कि वे जिम नहीं नजमी हैं।

सारांश यह कि कहाँ तक कहूँ। अन्त में तङ्ग आकर मैंने इस पर विचार करना ही छोड़ दिया। जब एक दफा प्रमाणित हो गया कि जिम यही हैं तो मैंने कह दिया कि अब मैं इसके विरुद्ध एक बात भी नहीं सुनूँगी।

आज से पन्द्रह-सोलह दिन पहले का जिक्र है। हम लोग शिमला में थे। वहाँ जब उन्होंने देखा कि मैं अब उनके जिम होने के विरुद्ध में एक बात भी न सुनूँगी, तो एक अजीब तरकीब चली। दो-तीन दिन तक डाक इस प्रकार लेते रहे जिसमें मुझे सन्देह हो कि मुझसे छिपा कर कोई पत्र रख लेते हैं। मैंने पूछा तो टाल दिया। मैं भी भूल गई। दो एक मर्तबा इसी तरह किया और टाल दिया। मुझे रुपए की आवश्यकता थी। जब मैंने कहा कि रुपए चाहिए तो बोले,—'मेरे भूरे कोट की जेब से लेना।'

'मैंने भूरे कोट की जेबें देखीं, तो वहां एक नोट भी नहीं। हाँ एक पत्र निकला जिस पर लाल स्याही से लिखा था—'गुप्त' मैंने जो उसे पढ़ा तो मेरे होश जाते रहे।

उनके किसी मित्र ने दिल्ली से लिखा था, 'तुम जो जिम का पार्ट खेल रहे हो, तो अब तनिक सावधान हो जाओ। जिम बम्बई आ गए हैं और वहीं से उन्होंने पुलीस में रिपोर्ट करादी है और सीधे दिल्ली आ रहे हैं। मैं तुमको तार दे चुका हूँ। दिल्ली से उन्हें पता चल जायगा कि तुम शिमला में हो, इसलिए बेहतर है, तुम तुरन्त नैनीताल चले जाओ या और कहीं छिप जाओ। इससे पहले जो पत्र तुम्हें लिखे थे, उन्हें भी सावधानी से फाड़कर फेंक देना। अब तुम्हें अत्यन्त सतर्कता से काम लेना चाहिए, इत्यादि २।' गरज, इसी प्रकार की बातें लिखी थीं।

अब मुझे फिर बड़ी चिन्ता हुई, और मैंने तमाम ट्रंक और कपड़े ढूँढ़ना शुरू किए, तो एक कार्ड और वही दोनों

पत्र मिल गये। इनमें भी यही सब बातें लिखी हुई थीं। एक पत्र में एक ऐसा वाक्य लिखा हुआ था कि मैं उसे पढ़ कर सन्नाटे में आ गई। लिखा था कि तुम जो कहते हो कि लड़की बहुत भोली और सीधी है, तो क्या इतनी मूर्ख है कि वह समझी ही न होगी। इतनी तो मूर्ख कोई लड़की नहीं हो सकती। गरज इसी प्रकार की बातें लिखी हुई थीं। अब मैं बहुत चकराई। उधर वह बाहर से जो आये तो पूर्व इसके कि मैं कुछ बोलूँ, मुझसे बड़े विचित्र घबड़ाहट में कहा कि—'चलो नैनीताल चलें।'

अब मैं सन्नाटे में आ गई। फिर क्या बताऊँ कि किस प्रकार तङ्ग किया है। बहुत से प्रमाण देने के बाद अपना नजमी होना स्वीकार कर लिया। मेरी अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई। मुझसे कहा कि फिर अब क्या चाहती हो। मैंने उत्तर दिया—'मृत्यु के अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए। परन्तु मुझे मेरे भाई से भेंट करा दो, ताकि मरने से पहले मैं उन्हें तो अच्छी तरह बता दूँ कि जान-बूझकर तुमने मुझे कहाँ झोंका।"

अब यहाँ जो आज आई हूँ तो भाई जान ने गले लगा कर कहा कि—'पागल हुई है?' और फिर जिम से कहा—'अब जो तुमने इसे तङ्ग किया तो हम तुम्हें बहुत मारेंगे।'

उन्होंने मुझसे कह दिया है कि अब सचमुच यदि यह नजमी है तब भी तू न मानना। अतः आज मैंने इतमीनान की साँस ली है।'

जिमवाली ने अपने विचित्र पति की कहानी समाप्त की है और इस कहानी पर मैं अपनी मनोरञ्जक कहानी को भी समाप्त करती हूँ।

नमस्कार

'कोलतार'